Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -I

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -I

1MAHIN2

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MAHIN2

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास

1MAHIN2, आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास – I

Edition: March 2024

Compiled, reviewed and edited by Subject Expert team of University

1. Dr. Anchal Sriwastawa

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Rekha Dubey

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Dr. Shahid Husain

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning:

All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by:

Dr. C.V. Raman University

Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.),

Ph. +07753-253801, 07753-253872

E-mail: info@cvru.ac.in

Website: www.cvru.ac.in

इकाई-एक

स्कंदगुप्त

(1) **'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है, उत्सवों में परिचायक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे है ?(ठहरकर) उंह। जो कुछ हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।"**

संदर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत अंश प्रसाद कृत स्कंदगुप्त नाटक के प्रथम अंक से अवतरित है। उज्जियिनी में गुप्त साम्राज्य के स्कन्धावार में युवराज स्कन्दगुप्त विचारलीन है। उसकी विमाता अनंतदेवी और सौतेला भाई पुरूगुप्त राज्य-वैभव और राज्याधिकार पाने की लालसा से अर्न्तबाह्य षड्यंत्रों, संघर्षों और विकृतियों की ज्वाला प्रज्जवलित करते हैं। यही स्कन्दगुप्त की मनोव्यथा, खिन्नता और विचार-लीनता का कारण है। इसी स्थिति में वे स्वगत कथन के माध्यम से अपने मनोद्वन्द्व को प्रकट करते हुए कह रहे हैं।

व्याख्या - वे कहते हैं कि सृष्टि का प्रत्येक प्राणी अधिकार प्राप्ति हेतु लालायित रहता है। हरेक के मानस में यह लालसा विद्यमान रहती है। इससे मनुष्य अपने अहं को संतुष्ट करता हुआ गर्वानुभव करता है। वास्तविकता यह है कि मनुष्य की यह अधिकार लिप्सा मदिरा का नशा करने के समान खुमार उत्पन्न करने वाली होती है। मदिरा के उशे में उन्मत्त होकर मनुष्य अपने आपको विस्मृत कर देता है, पर जैसे ही उसका नशा उतर जाता है, वैसे ही वह यथार्थ की भूमि पर आकर शिथिलता और उदासी का अनुभव करता है। ठीक यही स्थिति अधिकार के सुख और उससे उत्पन्न नशे की होती है। यह भी जब उतर जाता है, तब उसे वस्तुस्थिति की अवगति होती है। उपभोग का नशा भी सारहीन होता है। इससे मनुष्य मात्र का अहंकार भले ही क्षण भर के लिये तुष्ट हो जाए, किन्तु उसे स्थायी और वास्तविक आनन्द नहीं मिलता है।

अधिकार उपभोग की प्रवृत्ति से मनुष्य अपनी वास्तविकता का विस्मृत कर अहंग्रस्त होता हुआ अपने आपको सब कुछ का नियामक, सृष्टा मानने की भूल कर बैठता है। यहाँ अधिकार लालसा उसको दूसरों के प्रति स्वार्थ-भावना से अभिभूत होकर कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। जिस प्रकार मांगलिक पर्वों और त्यौहारों के समय हम परिवार-सेवा करते हैं और हमारी स्थिति उस समय ऐसे अवसरों पर कार्यरत व्यक्तियों से अधिक मूल्यवान नहीं होती है, वैसे ही अधिकार के मद में निमग्न व्यक्ति की स्थिति होती है अथवा कहें कि ऐसे व्यक्ति की स्थिति उस ढाल के समान होती है, जो युद्ध क्षेत्र में तलवार, भाले आदि शस्त्रों का घातक वार सहन करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि अधिकार-लोलुप व्यक्ति अपने झूठे अहं की तुष्टि के लिये निरर्थक और त्रासदायक कर्मों का जाल अपने चारों ओर फैलाकर स्वयं ही उससे बन्दी हो जाता है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करता हुआ स्कन्दगुप्त उसके प्रति उपेक्षा भाव प्रदर्शित करता है और अपने आपको साम्राज्य का एक सैनिक मानकर ही आत्मसंतोष व्यक्त करता है। इसका कारण है कि वह अधिकार लिप्सा से कर्तव्य पालन को अधिक महत्व देता है।

विशेष- स्कन्दगुप्त के अनासक्त और निष्कामयुक्त व्यक्तित्व को मूर्तित किया गया है। उसकी अधिकारों के प्रति उदासीनता व्यक्त हुई है। प्रथम वाक्य के विरोधात्मक सौन्दर्य को देखा जा सकता है। अधिकार सुख को मादक और साथ ही सारहीन बताकर यही भाव-सौन्दर्य व्यन्जित किया गया है। "उत्सवों में परिचायक मनुष्य है" में प्रतीक अलंकार का सौन्दर्य दृष्टव्य है। भाषा में परिष्कृति व संस्कृतिनिष्ठता है और शैली में सूक्तिपरकता और प्रश्निलता के योग से अतिरिक्त आकर्षण की सृष्टि हो सकी है।

(2) **"युद्ध क्या गान नहीं है? रुद्र का श्रंगनाद, भैरवी का ताण्डव नृत्य और शस्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव-संगति की सृष्टि होती है। जीवन के अन्तिम दृश्य को जानते हुए, अपनी आंखों से देखता, जीवन रहस्य के चल सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर हृदय को होता है। ध्वंसमयी महामाया प्रकृति का वह निरंतर संगीत है। उसे सुनने के लिए हृदय में साहस और बल एकत्र करो। अत्याचार के श्मशान में ही मंगल का, शिव का, सत्य सुन्दर संगति का समारंभ होता है।"**

संदर्भ एवं प्रसंग - स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के सातवें दृश्य से अवतरित यह गद्यावतरण बंधुवर्मा की पत्नी जयमाला का कथन है। बंधुवर्मा की बहन देवसेना विजया से कहती है कि तुम वीणा बजाओ और मैं गाना गाऊंगी। इस पर विजया अपना अभिमत प्रस्तुत करती हुई कहती है कि युद्ध और गान में क्या कोई सम्बन्ध है? इसी स्थिति का निराकरण करते हुए जयमाला कह रही है कि युद्ध और गान का निकटतम सम्बन्ध है। युद्ध भी अपने आपमें मधुर संगीत है। उसमें शिव का आल्हादनाद प्रतिध्वनित होता है, भैरव का ताण्डव नृत्य होता है और सब शस्त्र रूपी वाद्य मिलकर एक भयानक संगीत को जन्म देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ वाद्यों की धुनों पर शिव अपना श्रृंगीनाद छेड़ते हैं और भैरवी अपना ताण्डव नृत्य करती है, वहीं युद्ध क्या किसी गान या संगीत से कम महत्व रखता है? स्पष्ट ही वीरों के लिए युद्ध भी संगीत के समान ही आनंददायक होता है।

व्याख्या - 'जयमाला' 'विजया'को समझाती हुई कहती है कि तुमने केवल धन-वैभवपूर्ण जीवन के कोमल पक्ष को ही देखा है, किंतु वीर पुरुष अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये देश-प्रेम-जनसेवा और लोक कल्याण के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने से तनिक भी नहीं कतराते हैं। जीवन के लिए उच्चतर मूल्यों की प्राप्ति के लिए सच्चे वीर अपने महामरण दृश्य को भी देखने के लिए बड़े आतुर रहते हैं। कर्त्तव्य पथ पर बलि होने के निमित्त उसके हृदय में अपार उत्साह, उमंग और आल्हाद छाया रहता है। इन वीरों को युद्ध की लीला भूमि में ही अपने जीवन के अन्तिम दृश्य को देखने में सृष्टि का पूर्ण सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है। वे विध्वंस में भी सृजन की अनुभूति करके आनन्द का अनुभव करते हैं, किंतु इसके विपरीत कायर पुरुष महामरण के इस महापर्व को देख पाने का साहस नहीं बटोर पाते हैं। केवल सच्चे वीर ही जीवन की इस भयानक सच्चाई को हँसते-हँसते वरण करने हेतु तत्पर होते हैं। जयमाला कह रही है कि युद्ध तो प्रकृति की विनाशलीला की ऐसी गतिशील स्वर लहरी है जो ध्वंस में भी सृजन-संगी की सृष्टि करती है। महामरण के इस महापर्व को देखने के लिए हमारे हृदय में साहस और बल की आवश्यकता है। वस्तुत: विध्वंस में ही निर्माण फलित होता है। अत: वीर पुरुष अत्याचारियों व आततताइयों को दण्ड देने हेतु व लोक-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर युद्ध रूपी ध्वंस की ताण्डव लीला का निर्माण करते हैं। इस विध्वंस की ज्वाला में अत्याचार जलकर भस्म हो जाते हैं और लोक-मंगल का सौन्दर्य निखर उठता है, सृजन का सुमधुर संगीत अनुगुंजित होने लगता है। भाव यह है कि लोक-कल्याण और

लोक हितैषणा से प्रेरित होकर किया गया आत्म बलिदान सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वित रूप होता है।

विशेष- यहाँ सच्चे वीरों की कल्पना, उनके आदर्श वीरत्व तथा युद्ध व संगीत के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। 'जयमाला' का वीरांगना रूप बिम्बमयी भाषा में व्यक्त है। युद्ध का श्रृंगीनाद, भैरवी का ताण्डव-नृत्य व शस्त्रों का वाद्य में रूपक का् प्रभावी नियोजन हुआ है।

(3) **"कविता करना अनंत पुण्यों का फल है। इस दुराशा और अनन्त उत्कंठा से कवि जीवन व्यतीत करने की इच्छा हुई। संसार के समस्त अभावों को असंतोष कहकर हृदय को धोखा देता रहा, परन्तु कैसी विडम्बना ! लक्ष्मी के लालों का भ्रभूंग और क्षोम की ज्वाला के अतिरिक्त मिला क्या - एक काल्पनिक प्रशंसनीय जीवन जो कि दूसरों की दया में अपना अस्तित्व रखता है। संचित हृदय-कोश के अमूल्य रत्नों की उदारता और दारिद्रय का व्यंग्यात्मक कठोर अट्टहास, दोनों की विषमता की कौन-सी व्यवस्था होगी। मनोरथ को - भारत के प्रकांड और बौद्ध पंडित को - परास्त करने में मैं भी सबकी प्रशंसा का भाजन बना। परन्तु हुआ क्या?"**

संदर्भ एवं प्रसंग - स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक के तीसरे दृश्य से अवतरित यह अंश मातृगुप्त का कथन है। मातृगुप्त इस अंश में कवि-कर्म पर विचार कर रहे हैं। वास्तव में वे एक ओर तो कवि जीवन के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं और दूसरी ओर जीवन व्यापी अभावों पर भी दृष्टिपात करते हैं। अन्तर्द्वन्द्व ग्रसित मान लिए मातृगुप्त कह रहे हैं कि -

व्याख्या - मातृगुप्त की धारणा थी कि कवि का जीवन सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही मिलता है। इसका कारण यह है कि वह पूर्वजन्मों के संचित पुण्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। मातृगुप्त सोचता है कि इसी आशा और उत्सुकता से मैंने कवि के रूप में जीवन बिताने का निश्चय किया था, किन्तु अब लग रहा है कि इस जीवन का वरण उचित नहीं हुआ। ठीक भी है उसे इस जीवन में सुख की अपेक्षा दुख, सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति और भार की अपेक्षा अभावों का सामना करना पड़ा। इतने पर भी मातृगुप्त अपने आपको जैसे तैसे समझाता रहा और अपने को प्रवंचना की गोद में धकेलता रहा। भाव यह है कि मातृगुप्त प्रवंचना के लिए जीता रहा कि परिस्थिति कैसी भी हो? - भाव की या अभाव की, मनुष्य को उस अभावमय स्थिति में भी संतोष बनाए रखना चाहिए। सांसारिक प्राणी तो व्यर्थ ही असंतोष प्रकट करते हैं, किन्तु भले ही मातृगुप्त कुछ भी समझता-समझाता रहा हो, उसे जीवन में कोई भी सुख और सफलता नहीं मिल पाई।

मातृगुप्त कह रहा है कि धनिकों से उसे स्नेह के स्थान पर क्रोध मिला, उनके कुटिल कटाक्ष सहने पड़े। इस तरह वह क्रोध से उत्पन्न दुख की आग में जलता रहा। हाँ, प्राप्ति के नाम पर तो उसे मात्र दूसरों की प्रशंसा ही मिली है, अन्य कुछ भी हस्तगत नहीं हो पाया है। मातृगुप्त सोच रहा है कि दूसरों की प्रशंसा में एक काल्पनिक सुख और आनन्द तो मिलता है, किन्तु उससे जीवन के अभाव और रिक्तताएँ भरी नहीं जा सकती हैं। मातृगुप्त सोचता है कि दूसरे व्यक्ति दया करके मेरी प्रशंसा कर दें या मेरे अस्तित्व को स्वीकार कर लें, यही एक काल्पनिक जीवन है। एक ओर तो मातृगुप्त के हृदय-प्रदेश में कविता के अनगिनत रत्न संचित हैं, जिन्हें उसने पूरी उदारता के साथ दूसरों को लुटाया है और दूसरी ओर दरिद्रता है जो उसके कल्पना प्रधान और स्वप्निल संसार पर व्यंग्य करती है और काव्य रत्नों से प्राप्त समृद्धि और आर्थिक दरिद्रता दोनों ही विरोधी वस्तुएँ हैं। भारतवर्ष के प्रकाण्ड विद्वान और बौद्ध-पंडित कवि मनोरथ को परास्त करके मुझे प्रशंसा व स्तवन

तो मिला पर उससे उसके जीवन के अभावों का परिहार नहीं हो पाया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रशंसा से आत्मिक सुख तो मिल सकता है पर भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं हैं।

विशेष - मातृगुप्त के अन्तर्द्वन्द्व का निरूपण कवि जीवन के अभावों और काल्पनिक प्रशंसा की भूमिका पर किया गया है। "कविता करना अनंत पुण्यों का फल है" एक ऐसी सूक्ति है, जो आकर्षक तो है ही, प्रसाद की प्रतिभा और शैल्पिक विशिष्टता को भी उजागर करती है।

दारिद्रय का व्यंग्यात्मक कठोर अट्टाहास में दरिद्रता का मानवीकरण किया गया है। भाषा परिष्कृत, लाक्षणिक और आलंकारिक है।

(4) **"प्रमाण। प्रमाण अभी खोजना है? आंधी आने के पहले आकाश जिस तरह स्तभित ही रहती है, बिजली गिरने से पूर्व जिस प्रकार नील कादंबिनी का मनोहर आवरण महाशून्य पर चढ़ जाता है, क्या वैसी ही दशा गुप्त-साम्राज्य की ही नहीं है ?"**

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रसाद कृत स्कंदगुप्त नाटक से अवतरित इस गद्यांश में साम्राज्य के सेनापति पर्णदत्त व्यंग्य करते हैं कि गुप्त शासक राज्य और आवश्यक कर्तव्यों से उदासीन हो गए हैं। उन्होंने यह समझ लिया है कि राज्य लक्ष्मी उनकी धरोहर है। अत: वह उन्हें छोड़कर कहीं भी नहीं जा सकती है। इस पर युवराज स्कंदगुप्त पर्णदत्त से प्रमाण चाहते हैं।

व्याख्या - जीवन में विलास और व्याख्या करते हुए पर्णदत्त स्कंदगुप्त से कह रहे हैं प्रजा त्रस्त है, जीवन में विलास और विकृतियां घर कर गई हैं और कोई भी उत्तरदायित्व बोध से परिचित नहीं है। फिर ऐसी स्थिति में प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? भाव यह है कि अब तो इतना कुछ विकृत-विगलित हो गया है कि प्रमाण अनावश्यक हो गए हैं। पर्णदत्त कह रहा है कि जब आंधी आने को होती है, तो आकाश में स्तब्धता-एक भयावह ठहराव-सा आ जाता है। ठीक वही स्थिति गुप्त साम्राज्य की है। विद्रोह की आंधी आने से पूर्व की सी स्तब्धता समूचे वातावरण में व्याप्त है। लग रहा है जैसे कुछ अघटित घटित होने को है। पर्णदत्त कह रहे हैं कि जिस प्रकार करका पात अथवा बिजली गिरने से पूर्व पूरा का पूरा आकाश नीले रंग से आच्छादित होकर तद्रूप हो जाता है, ठीक उसी प्रकार की स्थिति गुप्त-साम्राज्य की है। कहने का अभिप्राय यह है कि जब बिजली गिरने की होती है, तो नील वर्णी आकाश पूर्णत: शून्य अथवा महाशून्य जैसा स्थिर और स्तब्ध सा हो जाता है और कुछ समय बाद विद्युत पात से परिवेश भयावह हो उठता है, ठीक वही स्थिति गुप्त-साम्राज्य की है। सारे साम्राज्य में एक अजीब सा ठहराव, एक अद्भुत शून्यता व्याप्त है, जो किसी भावी षड्यंत्र या विस्फोट की सूचक है। समस्त परिवेश में घोर अशांति है, विप्लव का वातावरण व्याप्त है। इससे अनुमानित ही नहीं प्रमाणित भी है कि गुप्त साम्राज्य पर आपत्तियों के धूम भरे बादल मंडराने लगे हैं।

(5) **"अमृत के सरोवर में स्वर्ण कमल खिल रहा था, भ्रमर वंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी। सवेरे सूर्य की किरणें उसे चूमने को लौटती थीं, संध्या में शीतल चांदनी उसे अपनी चादर से ढंक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढ़ाया था, वही-वही स्वप्न टूट गया।"**

संदर्भ एवं प्रसंग - प्रसाद विचरित स्कंदगुप्त के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य से अवतरित इस गद्यांश में मातृगुप्त अपनी प्रिया की कल्पना में निमग्न हैं। वे भावावेश में आकर अत्यंत मनोहारी कल्पना कर रहे हैं।

व्याख्या - वे प्रकृति के माध्यम से अपनी प्रिया को मधुर कल्पनाएं करते हुए कहते हैं कि वह स्थली न केवल मनोरम थी, अपितु सौन्दर्यमयी, आकर्षक और मन को बांधने वाली भी है। उसी सौन्दर्यराशि में मुझे मेरी प्रिया के दर्शन हुए थे। प्रिया का सौन्दर्य ऐसा था मानो अमृत से भरे सरोवर में स्वर्णकमल खिल रहा हो और उसका वैभव पूर्ण प्रस्फुटन पर हो। अमृत के सरोवर से तात्पर्य यौवन रूपी सरोवर से है पूर्णत: विकसित स्वर्णकमल प्रिया का रूप-सौन्दर्य है। उस स्वर्णिम सौन्दर्य वाले कमल पर मनोभावों के भ्रमर गुंजार किया करते थे। उन मधुर गुंजार वाले भ्रमरों की ध्वनि किसी मधुर स्वर वाली 'बंशी' की तरह मादक तान छेड़ा करती थी। मातृगुप्त कह रहा है कि उस मनोरम वातावरण में सुगंधि और पराग अपना मादक प्रभाव फैलाते थे। प्रिया की पूर्ति स्वर्णिम कमल के समान कांतियुक्त, कोमल और रमणीय थी। यही कारण है कि उसे देखकर मन में अनेक प्रकार की भाव लहरियां आंदोलित होती रहती थीं। ऐसी मादक-मनोहर मूर्ति का रससिक्त चुम्बन करने के लिए प्रभातकालीन सूर्य अपनी स्वर्णिम रश्मियां प्रेषित करता था। चंद्रमा भी उस प्रिय को शीतल चांदनी के आवरण से ढंकने के लिए सांध्यकाल में आकाश के नील वृक्ष पर उदित हुआ करता था। इससे लगता है कि वह सौन्दर्य साधारण न होकर असाधारण और अलौकिक था। उसकी असाधारणता ही उसे किसी अलौकिक जगत् का सिद्ध किया करती थी। अंत में मातृगुप्त कहता है कि मैंने ऐसे उदात्त, अनुपम और अलौकिक सौन्दर्य को पाने के लिए कल्पना के हाथ बढ़ाए ही थे कि मेरा जीवन रूपी स्वप्न बिखर गया। टूक-टूक हो गया। भाव यह है कि प्रिय से मिलन नहीं हो सका।

(6) **"नहीं तो क्या रोने से, भीख माँगने से कुछ अधिकार मिलता है? जिसके हाथ में बल नहीं, उसका अधिकार ही कैसा? और यदि माँगकर मिल भी जाय, तो शांति की रक्षा कौन करेगा?"**

सन्दर्भ एवं प्रसंग- प्रसाद कृत स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य से उद्‌भुत यह अंश भटार्क का कथन है।

व्याख्या- नवीन महाबलाधिकृत भटार्क लंका से आए हैं और धातुसेन को समझा रहे हैं कि अधिकार प्राप्त किया जाता है, वह स्वत: नहीं मिलता है। हाँ, उसे पाने की एक प्रक्रिया होती है। उसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं कि अधिकार रोने से या किसी के समक्ष भीख की तरह माँगने से नहीं मिला करता है। अधिकार की याचना करना और दाता के समक्ष जाकर गिड़गिडाना कभी भी अधिकार नहीं दिला सकता है। अधिकार एक अर्थ में शक्ति ही है और शक्ति याचना से नहीं प्रतिशक्ति से मिला करती है। अत: यह मानना किसी भी स्थिति में उचित नहीं है कि अधिकार जैसा शक्ति-भाव याचना से मिल जावेगा। याचना पर करुणा मिल सकती है, सहानुभूति भी मिल सकती है, पर अधिकार नहीं मिला करता है। उसके लिये संघर्ष और शक्ति का प्रयोग अवश्यम्भावी है। जिस व्यक्ति के हाथों में शक्ति नहीं होती है, वह अधिकार न तो पा सकता है और न उसका अधिकारी ही है। कारण स्पष्ट है कि यदि शक्तिहीन व्यक्ति किसी प्रकार यदि अधिकार प्राप्त भी कर लेगा, तो वह उसका उपभोग नहीं कर पाएगा, क्योंकि दूसरे शक्ति-पुरुष उसे अधिकार भोगने ही नहीं देंगे। इस प्रकार अधिकार के पाने और उसे सुरक्षित बनाए रखने के लिए शक्ति आवश्यक है। ऐसा शक्तिहीन व्यक्ति अधिकार-प्राप्ति के संदर्भ में कुपात्र ही कहलाएगा। कुपात्र न तो अधिकार को रक्षित रख सकता है और शांति स्थापना का कार्य ही कर सकता है। ऐसे व्यक्ति से शांति की अपेक्षा करना भी एक भ्रममात्र ही है- छलना मात्र ही है।

विशेष- (1) अधिकार प्राप्ति और उससे रक्षण के लिये शक्ति अनिवार्य बतलाई गई है। (2) भटार्क के व्यक्तित्व की भीतरी पर्तें इस कथन से स्पष्ट हो जाती हैं। शक्तिहीन व्यक्ति को अधिकार का मिलना-न मिलना बराबर है।

(7) **"क्यों? वहीं तो मेरे भूख हृदय का आहार है, कविता वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से जड़ का चेतन से और बाह्य का जगत् का अन्तर्जगत् से सम्बन्ध कौन कराती है? कविता ही न !"**

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रसाद कृत स्कंदगुप्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य से अवतरित यह अंश मातृगुप्त का कथन है।

व्याख्या- मुदगल मातृगुप्त से कवि को छोड़ने का आग्रह करता है मुदगल का विश्वास है कविता से कुछ भी नहीं हस्तगत होता है,उससे जीवन नहीं चल सकता है। मातृगुप्त कवि है और कविता ही उसकी एक मात्र सम्पत्ति है। अत: मुदगल के उपर्युक्त कथन का उत्तर देता हुआ मातृगुप्त कहता है कविता का महत्व किसी भी प्रकार से कम नहीं है। मातृगुप्त कह रहा है कि वह कविता को नहीं छोड़ सकता है। इसका कारण यह है कि कविता के द्वारा ही उसका चिर दग्ध, अति जर्जर और चिर पिपासु हृदय भोजन पाता रहता है। हृदय को रस देने वाली, उसे तृप्ति की बूँदें देकर सुखानुभव कराने वाली शक्ति कविता ही है। जिस कविता धारा में इतनी गति, इतनी शक्ति और इतना आनंद भरा है, उसे मातृगुप्त नहीं छोड़ सकता है।

आगे की पंक्ति में मातृगुप्त अपने कविरूप के सहारे कविता की व्याख्या करता हुआ कह रहा है कि कविता तो सार्थक शब्दों द्वारा विनिर्मित वह आकर्षक चित्र है, जिसमें अलौकिक आनंद देने वाला और भाव-समन्वित सुन्दर संगीत भी विद्यमान रहता है। भाव यह है कि इस शब्द चित्र में संगीत की भावोर्मियाँ तरंगित होती रहती हैं और उनसे मधुर स्वर तरलित होकर मन-प्राण को असीम आनंद देते रहते हैं। कविता में अद्‌भुत शक्ति निहित है। यह वह माध्यम है, जिससे अंधकार का प्रकाश से,असत् का सत् से, अचेतन जगत का चेतन जगत से और मानव के बाह्य जगत् का आंतरिक जगत् से अर्थात् अंतस् का बाह्य से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। एक प्रकार से कविता अन्तर्बाह्य और सत्-असत् का समन्वय करने वाली शक्ति है। मातृगुप्त ने बतलाया कि कविता से विश्व की अचेतन शक्ति में चेतनता का संचार होता है। यह जड़ प्रकृति को चेतन प्रकृति की भाव-सापेक्ष स्थिति में प्रस्तुत करती है। इतना ही क्यों यह भी कविता ही है, जिसके सहारे हम बाह्य संसार से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते है। इस प्रकार कविता समग्र प्रकृति को अपने में समाहित करके उसका वास्तविक, सुन्दर और आकर्षक चित्र प्रस्तुत करती है। यह चित्र संगीत के समान मोहक और स्मरणीय होता है। वास्तव में कवि के लिये तो कविता ही उसका- उसके हृदय का आहार होती है। इस कविता से ही उसकी मन: शक्तियाँ तृप्त, उल्लसित और संतुष्ट होती हुई जीवनदायिनी सिद्व होती हैं।

विशेष- (1) इस अंश में कविता को कवित्व का वर्णमय चित्र कहकर आकर्षक व्याख्या की गई है। साथ ही प्रसाद जी ने कविता के महत् उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला है। (2) कविता और संगीत के शाश्वत सम्बन्ध को भी स्थापित करने का प्रयास स्पष्ट लक्षित होता है। (3) मातृगुप्त के व्यक्तित्व की विशेषता 'कविता के प्रति अनुराग'भी स्पष्ट हुई है। (4) भाषा काव्यात्मक, भावानुरूपिणी और शैली चारुता से युक्त है। (5) रूपक अलंकार के प्रयोग से तो यह अंश और भी चमक उठा है।

(8) **"एक दुर्भेद्य नारी हृदय में विश्व प्रहेलिका का रहस्य बीज है। आह, कितनी सहनशील स्त्री है? देखूँ, गुप्त साम्राज्य के भाग्य की कुंजी यह किधर घुमाती है। परन्तु इसकी आँखों में काम पिपासा के संकेत अभी उबल रहे हैं। अतृप्ति की चंचल प्रवंचना**

कपोलों पर रक्त होकर क्रीड़ा कर रही है। हृदय में श्वासों की गरमी विलास का संदेश वहन कर रही है। परन्तु...अच्छा चलूं यह विचार करने का स्थान नहीं है। "

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रसाद कृत स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य से अवतरित इस गद्यांश में 'भटार्क"अनंतदेवी'साहसिक, छलनामय और महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व के विषय में सोच रहा है।

व्याख्या- 'अनंतदेवी' ने भटार्क को अपनी गुप्त योजना बता दी है जिसे जानकर 'भटार्क' सोच रहा है कि इस नारी का हृदय दुर्भेद्य है। न मालूम यह गुप्त साम्राज्य को किस प्रवाह धारा में डालना चाहती है। 'भटार्क' सोचता है कि इस नारी के रहस्यमय हृदय में भयानक विनाश का ताण्डव नृत्य देखने की आकांक्षा वर्तमान है। तात्पर्य यह है कि यह नारी जिस हृदय को लेकर जी रही है, उसमें विश्व भर की प्रहेलिका-पहेली का रहस्य छिपा हुआ है। यह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए सभी कुछ सहने को तत्पर है। गुप्त साम्राज्य का भविष्य निश्चित रूप् से इसी नारी के हाथों में छिपा हुआ है। देखना यह है कि यह नारी साम्राज्य को उत्थान की ओर ले जाती है या पतन की ओर। आगे की पंक्तियों में भटार्क इसी रहस्यमयी रमणी के सम्बन्ध में कह रहा है कि यह वह नारी है जिसकी आँखों में कामुक संकेत झिल-मिलाते हैं। इसके नेत्रों से कामुकता टपकती है तथा इसके हृदय तल से निकलती हुई उद्दीपक सांसें इसकी विलास जनित अतृप्तियों का संकेत देती है। यही कारण है कि इसके कपोलों की लालिमा पर रक्त की जो छवि है, वह अतृप्ति बनकर नाच रही है। हृदय में विलास, सांसों में विलास की ऊष्मा और मन में महत्वाकांक्षाओं का वेग लेकर यह स्त्री बहुत कुछ एक साथ स्पष्ट कर रही है। यही सब सोचता हुआ भटार्क वहाँ से चलने को उद्यम हो जाता है। इसका कारण यह है कि वह जहाँ खड़ा-खड़ा यह सब सोच रहा है, वहाँ खड़ा रहना वह अधिक देर तक उपयुक्त नहीं समझता है।

विशेष- प्रसाद ने भटार्क के माध्यम से नारी हृदय की रहस्यशीलता को प्रकट किया है। अनंतदेवी के व्यक्तित्व की महत्वाकांक्षाओं से पूरित विशेषतायें यहां संकेतित हैं। भाषा तत्समीकरण और मानवीकरण से युक्त है। अतृप्ति की चंचल प्रवचना कपोलों पर रक्त होकर क्रीड़ा कर रही है। वाक्य में अतृप्ति का मानवीकरण किया गया है।

(9) **"भारत समग्र विश्व का है और सम्पूर्ण वसुंधरा इसके प्रेमपाश में आबद्व है। अनादि काल से ज्ञान की, मानवता ज्योति यह विकीर्ण कर रह है। वसुंधरा का हृदय-भारत किस मूर्ख को प्यारा नहीं है ? तुम देखते नहीं कि विश्व का सबसे ऊंचा श्रृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? एक से एक सुन्दर दृश्य प्रकृति ने अपने इस घर में चित्रित कर रखा है। भारत के कल्याण के लिये मेरा सर्वस्व अर्पित है, किन्तु देखता हूँ बौद्ध जनता और संघ भी साम्राज्य के विरुद्व हैं। महाबोधि बिहार संघ महास्थविर ने निर्माण लाभ किया है उस पद से उपयुक्त भारत भर में केवल प्रख्यातकीर्ति है। तुमसे संघ की मलिनता बहुत कुछ धुल जाएगी।"**

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत नाट्यांश प्रसाद कृत 'स्कन्दगुप्त'नाटक के चतुर्थ अंक से चतुर्थ दृश्य से उद्धृत है। इसमें प्रख्यात कीर्ति धातुसेन से पूछता है कि तुम्हें सिंघल राज्य की तुलना में भारत का भ्रमण करना क्यों प्रीतिकर लगता है ?

व्याख्या- इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए धातुसेन भारत की दिव्यता और महानता को उद्घोषित करता कह रहा है कि भारत का महत्व तथा उसकी महिमा किसी से भी छिपी नहीं है। वह विश्व भर में सभी को विदित है। भारतीय संस्कृति का प्रभाव और गहरा रंग समग्र विश्व में व्याप्त है। इससे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे समस्त विश्व भारत के प्रेम और सांस्कृतिक रंग में डूबा हुआ है। तात्पर्य यह है यह भारत समग्र विश्व को ज्ञान का अतुल भण्डार लुटाता रहा है, मानव को प्रेम और

एकता का पाठ सिखलाता रहा है। इस संसार में ऐसा कौन है, जिसे संस्कृति का पालन और धरती माँ का यह हृदय भारत प्रिय न होता हो। व्यंजना है कि कोई भी नहीं है, सभी को यह देश पूरी तरह मन से प्रिय है। जब ऐसा है तो प्रत्येक व्यक्ति इसका भ्रमण करना चाहेगा ही। यही कारण है कि हिमालय पर्वत के सिर के नीचे विद्यमान है और गंभीर विशाल व अथाह सागर इसके चरणों के ऊपर अठखेलियां कर रहा है। प्रकृति ने अनुपम सौन्दर्यशाली प्राकृतिक दृश्यावली इसी भारत भूमि को अर्पित की है। धातुसेन कहता है कि इन्हीं सब कारणों से मेरा हृदय इस अद्‌भुत आकर्षक धरती के प्रति निरंतर उन्नति के साथ अग्रसर हो रहा है और समग्रत: समर्पित है। धातुसेन कर रहा है कि मैं तो इस धरती के प्रति समर्पित हूँ किन्तु बौद्ध जनता और संघ इसके प्रति विपरीत भाव रखते हैं। महाबोधि स्थायिर-महास्थविर ने इस पर ही तो निर्वाण प्राप्ति का सुख पाया है। वह पद उच्च है,सम्मान्य है और आज उसके लिए उपयुक्त अधिकारी मात्र प्रख्यात कीर्ति है, प्रख्यातकीर्ति जैसे पुनीत व्यक्ति के स्पर्श से संघ की मलीनता कुछ न कुछ कम हो ही जाएगी।

आधे अधूरे

(10) **कैसी बात कर रही हूँ ?..... कि कैसे मैं।**

सन्दर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां श्री मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' से ली गई हैं। पुरुष की भांति स्त्री भी अपने परिवार से खीझ उठती है।

व्याख्या- बड़ी लड़की अपनी माता के व्यवहार पर आश्चर्य व्यक्त करती है। स्त्री खीझ कर कहती है कि तुम्हें ताज्जुब हो रहा है मेरी बातों पर, मैं किस प्रकार की अजीब बातें कर रही हूं? यहाँ इस परिवार के सब लोग मुझे स्थिति की वास्तविकता को न समझकर मुझे अत्यन्त तुच्छ समझते हैं। मेरे विचार से तो वे मुझे केवल कमाने और खाना बनाने की मशीन समझते हैं यानी तुम सब लोगों की नजर में मेरा केवल एक ही काम है- दिन भर कमाऊँ और तुम्हें खिलाती रहूँ। तुम लोग मुझसे केवल यही आशा करते हो कि मैं वक्त-बेवक्त काम करती रहूं- न मेरे आराम का कोई समय है और न काम करने की सुविधाओं का मेरे लिए कोई अर्थ ही रह गया है।

विशेष- (1) आधुनिक युग के बालक अपने माता-पिता को किस उपेक्षा के साथ देखते हैं, यह स्त्री के कथन द्वारा स्पष्ट है। (2) लोकोक्ति का प्रयोग-रात को दिन, दिन को रात करती हूँ।

(11) **दो टकराने..... भूमिका नहीं।**

सन्दर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां श्री मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' से ली गई हैं। पहला पुरुष मानव-जीवन के अनिश्चित क्रम पर प्रकाश डालता है।

व्याख्या- जीवन की समस्याओं से संघर्ष करने वाले दो व्यक्ति जब अनायास मिलते हैं, तब वे प्राय: एक ही कोटि के व्यक्ति होते हैं। इस प्रकार से मिलने वाले प्राय: समस्त व्यक्ति समान होते हैं, क्योंकि वे सबके सब अपनी परिस्थितियों के दास होते है। अत: इस प्रकार मिलने वाले व्यक्तियों में छोटे-बड़े का हिसाब लगाना व्यर्थ है। वैसे हम सब समाज के अभिन्न अंग हैं, परन्तु व्यक्ति होने के नाते समाज में स्वतंत्र रूप में आचरण करते हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र आचरण करता हुआ भी समाज के अन्य व्यक्तियों से सम्बद्ध रहता है, और यही कारण है कि व्यक्ति चाहे स्वतंत्र रहे अथवा समाज का अंग होकर रहे, उसके जीवनक्रम की रूपरेखा निश्चित रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती है।

विशेष- (1) उसमें और इस दूसरे में गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है- ज्यामिति का सिद्धान्त है कि जो दो रेखाएं किसी एक तीसरी रेखा के समान्तर हों, तो वे परस्पर भी समान्तर होती

हैं। इस सिद्धान्त को यदि हम मानवजीवन पर लागू करके मनुष्यों को श्रेणीबद्ध करना चाहेंगे, तो व्यर्थ होगा। मानव-जीवन की समस्याएं गणित की पहेलियों की भांति नहीं सुलझाई जा सकती। (2) यही कारण है... नहीं है- मानव का जीवन दोहरा है- वैयक्तिक एवं सामाजिक, दोनों ही दिशाओं में वह परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार की प्रेरणा ग्रहण करता है। दर्शन की भाषा में वह नियत की डोरी में बँधा रहता है जीवन को नाटक कहना यही घोषित करता है।

(12) **इसलिए..... छोटा नहीं होगा।**

सन्दर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां श्री मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' से ली गई हैं। स्त्री चाहती है कि किसी तरह उसके पुत्र-पुत्री काम में लग जाएं, बच्चों को यह बात नापसंद है। इस पर स्त्री खीझ उठती है।

व्याख्या- मैं समाज के सम्माननीय विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को इस कारण अपने घर आमन्त्रित करती हूँ कि वे हमारी कुछ सहायता कर दें, और हमारे परिवार की स्थिति में सुधार हो जाए। मुझ अकेली के ऊपर ही घर का पूरा खर्च चलाने की जिम्मेदारी है। मैं चाहती हूं कि इसमें और भी कोई मेरा हाथ बंटा सके। यदि मैं कुछ सम्मानीय एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न करती हूं तो इसका उद्धेश्य केवल यह है कि तुम लोगों का भला होगा, तुम्हें कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाए। इससे मेरा तो कुछ होना जाना नहीं है। परन्तु मेरा ऐसे करने से तुम लोगों में हीनता आती है, तो ठीक है, मैं इस प्रकार से तुम्हारे हितार्थ प्रयत्न करना बन्द कर दूं, फिर हाँ, इस अवसर पर मुझे यह अवश्य कहना पड़ेगा कि अब घर का सब खर्च चलाते रहना, मेरे वश की बात नहीं रह गई है। अपने परिजनों की दु:खदायी स्थिति पर प्रकाश डालती हुई वह कहती है कि इस घर के किसी भी व्यक्ति को घर का ख्याल नहीं है। एक मेरे पतिदेव हैं, जिन्होंने घर की समस्त सम्पत्ति बर्बाद कर दी और कई वर्षों से बेकार बैठे हैं, धनोपार्जन के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करते हैं। दूसरा मेरा लड़का है, जिसको नौकरी का तो कोई प्रयत्न ही नहीं है, सब कुछ सहकर यदि मैं उसकी नौकरी की चिन्ता करती हूँ, तो वह इसे अपना अपमान समझता है । इस स्थिति में मैं भी इस अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पाऊंगी। जब परिवार के अन्य किसी सदस्य को घर की फिक्र नहीं है, किसी वस्तु को सुरक्षित रखने की चिन्ता नहीं, तब मुझे ही ऐसी क्या पड़ी है। क्या पड़ी है कि दिन-रात अपने आपको गलाती रहूँ। मैं भी प्रतिष्ठित व्यक्ति की तरह क्यों न बैठ जाऊं एक ओर चुपचाप ? मैं भी क्यों न केवल अपनी नौकरी करूं और लोगों की खुशामद करना बन्द करके एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की भांति जीवन व्यतीत करूं ? ऐसा करने पर न कोई मेरे घर आएगा, न तुम्हें किसी की आवभगत करनी पड़ेगी और न तुमको हीनत्व भावना का शिकार ही होना पड़ेगा।

(13) **"अंतर्राष्ट्रीय संपर्क है कंपनी के सो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं। जापान से तो पूरा एक प्रतिनिधि-मंडल ही आया हुआ था पिछले दिनों... । कुछ भी कहिये, जापान ने इन सबकी नाक में नकेल कर रखी है आजकल। अभी उस दिन में जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था।"**

प्रसंग- पुरुष दो आत्म-श्याला सी करता हुआ है।

व्याख्या- मैं जिस कंपनी में काम करता हूं इसका व्यापार कई देशों के साथ है। अभी कुछ दिन पहले की बात है कि हमारी कंपनी से व्यापार संबंधी वार्तालाप करने हेतु जापान के व्यापारियों के कुछ प्रतिनिधि आए हुए थे। उनकी बातें तथा उनके काम बहुत ही उच्च कोटि के हैं। उन्होंने अन्य देशों के व्यापारियों को नाच नचा रखा है, यानी समस्त व्यापार अपने ही हाथों में ले रखा है। मैं इस निर्णय पर उद्योग संबंधी उन आंकड़ों को देख कर पहुंचा हूं जो मैंने पिछले वर्ष पढ़े थे।

विशेष- विदेशों से संपर्क होना हमारा शिक्षित वर्ग बड़े ही गर्व की वस्तु मानता है। इसी हीन भावना के प्रति संकेत है।

(14) **यूं तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता बात करता है, वह आदमी ही होता है...। पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा अपनी एक शख्सियत हो?**

प्रसंग- जुनेजा के प्रति सावित्री का कथन है। वह अपने पति महेन्द्रनाथ पुरुष एक को लक्ष्य करके कहती है।

व्याख्या- बाहर से देखने में सब आदमी एक से हैं। जो भी प्राणी आदमी की तरह दो टांगों पर चले-फिरे और बात करे उसे आदमी कहना ही पड़ता है, परंतु वास्तव में आदमी कहे जाने के लिए आदमी में आदमियों जैसे गुण होने चाहिए। आदमी का गुण है अपनी समझ और अपना व्यक्तित्व। जब तक मनुष्य में अपनी कतिपय विशेषताएं न हों तब तक उसको हम भीड़ या समूह का अंग ही कहेंगे, व्यक्ति नहीं। व्यक्ति होने के लिए व्यक्तिगत गुण यानी व्यक्तित्व चाहिए और व्यक्तित्व के अभाव में मनुष्य-मनुष्य नहीं है और वह चाहे जो कुछ हो।

(15) **कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ न कुछ होता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही संबंध में निश्चित नहीं हूं, तो और किसी चीज के कारण-अकारण के संबंध में निश्चित कैसे हो सकता हूं?**

संदर्भ- प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा विरचित नाटक 'आधे-अधूरे' से लिया गया है।

प्रसंग- यह एक ऐसे पुरुष का स्वगत कथन है जो नाटक में प्रथम पुरुष के रूप में हमारे सामने आता है।

व्याख्या- काले सूट वाला पुरुष अपने बारे में सोचता है कि असल में क्या है? संसार रूपी इस रंगमंच पर किसी अन्य के द्वारा परिचलित अभिनेता मात्र अथवा इससे अधिक कुछ? क्या इस विश्व-प्रपंच के संचालन में इसका भी कुछ सहयोग संभव है? वह स्वयं उत्तर देते हुए कहता है कि इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। वह इस दुनिया की मशीन का एक पुर्जा मात्र भी हो सकता है और इस दुनिया के नाटक को चलाने में सहायता करने वाले व्यवस्थापक के स्थान पर भी हो सकता है। स्थिति के अनिश्चित होने का कुछ-न-कुछ कारण तो होगा ही। प्रत्येक कार्य का कारण होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक कार्य का कारण बताना चाहता है, मैं भी इस संबंध में कोई न कोई कारण निर्धारित करना चाहूंगा। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि जो भी कारण बता दूं, वही वस्तुतः वास्तविक कारण हो। इस अनिश्चित स्थिति में मैं कारण न बताना ही ठीक समझता हूं और जब मैं अपनी स्थिति के बारे में ही वस्तुस्थिति को बड़ी समझता हूं तब अन्य किसी के विषय में मेरा कुछ भी कहना अनुपयुक्त ही होगा।

विशेष- 1. यह एक ऐसे व्यक्ति का अंतर्द्वंद्व है जो जीवन की लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये है। 2. व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने बारे में गहराई से विचार करे-अन्य लोगों के बारे में कम सोचे।

(16) **"उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार-सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूं जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूं।"**

प्रसंग- बड़ी लड़की की अपने पति के साथ खटपट होती रहती है। उसी का विश्लेषण वह अपनी माता (स्त्री) के सामने करती है।

व्याख्या- हमारे मध्य ऐसी छोटी-छोटी बातों पर रुकावट उत्पन्न हो जाती है, जिनके कारण सामान्यत: कोई दिक्कत होनी नहीं चाहिए, जैसे कभी हाथ में चाय की प्याली का झलक जाना अथवा दफ्तर से आने में आधा घंटा देर हो जाना। पता नहीं क्या बात है, परंतु स्थिति यह है कि मेरे मन में एक प्रकार की परेशानी सदैव घुटन पैदा करती रहती है और मैं इस अवसर की प्रतीक्षा करती रहती हूं जब मुझे अपने मन की भड़ास निकालने का बहाना मिल जाये।

विशेष- वर्णन अत्यंत मनोवैज्ञानिक तथा तथ्यपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष एक, स्त्री और बड़ी लड़की हमारे जाने-पहचाने पात्र हैं। इतना ही क्यों, कहीं हम दोनों इनके माध्यम से तो नहीं बोल रहे हैं?

(17) **वह नफरत करती है इस सबसे-इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक....पूरा....आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इनका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेन्द्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है। सावित्री बेचारे महेन्द्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है। जैसे कि आदमी न होकर बिना हाड़ मांस का पुतला हो वह एक बेचारा महेन्द्र !**

प्रसंग- महेन्द्र अपनी पत्नी से अपेक्षा करता है कि वह इस प्रकार रहे जिससे उसकी मित्र मंडली का अनुरंजन हो। इसके लिए वह पत्नी को दंडित प्रताड़ित भी करता है, परंतु सावित्री कुल-ललना की भांति जुनेजा से इसी विषय स्थिति के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या- मित्रों की इच्छानुसार व्यवहार करने की बात मुझे अरुचिकर लगती है। मैं पति को स्वतंत्र आचरण करने वाले व्यक्ति के रूप में देखना चाहती हूं जो मेरे साथ पूर्णता का अनुभव कर सके। ऐसा करने के लिए कभी मैं पूरी शक्ति के साथ अपने पति को उपदेश देती हूं और कभी उसको इच्छानुसार बनाने का प्रयत्न करती हूं। इस प्रयत्न में अपने आपको असफल होता देखकर दु:खी हो उठती हूं और घर-द्वार छोड़कर चली जाने की इच्छा करने लगती हूं।

मेरे प्रत्यनों के फलस्वरूप महेन्द्र में यदि जरा-सा भी परिवर्तन हो जाता है, तो बस उसके मित्र दु:खी हो उठते हैं। वे शोक-संतृप्त होकर इस प्रकार की बातें कहने लगते हैं कि सावित्री ने तो महेन्द्र को अपने कब्जे में कर लिया है और उसको मनमाने ढंग पर चला रही है। सावित्री तो महेन्द्र के मूल व्यक्तित्व को समाप्त किये दे रही हैं और वह एकदम बेकार हो जायेगा। मेरे प्रति आकर्षित महेन्द्र को उनके मित्र इच्छा शक्ति-विहीन केवल हाड़-मांस का पुतला कहते हैं और उसके प्रति दिखावटी सहानुभूति प्रकट करते हैं।

गोदान

(18) **अज्ञान की भांति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़ इतना सजीव होता है कि वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजे और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न**

रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

सन्दर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां श्री प्रेमचंद कृत 'गोदान' से ली गई हैं। किसी समय प्रो. मेहता, मालवी के साथ होरी के गांव में गए। मालती तो अंदर औरतों से बातें करने में उलझ गयी और प्रो. मेहता, बाहर पुरुषों में, किसानों द्वारा खेला जा रहा कुश्ती का खेल देखने लगे। ग्रामीणों से सहानुभूति रखने वाले प्रो. मेहता के मन में अचानक ही एक प्रश्न उठा कि सुशिक्षित कहलाने वाले शहरी जन इन ग्रामीणों के साथ कठोरता भरा व्यवहार क्यों करते हैं ? इसी प्रश्न का मूल कारण खोजते हुए वे सोचने लगे-

व्याख्या- अज्ञान की तरह ज्ञान भी एकदम सरल, छलहीन तथा सुन्दर सुखद कल्पनाएं करने वाला होता है। वह इतना अधिक मानवता प्रेमी होता है कि इसके विपरीत किए गए व्यवहार को एकदम अमानवीय (और फलत: त्याज्य) मान बैठता है। आदर्श भरी कल्पनाओं में खोया हुआ उसका मानस जीवन के कड़वे यथार्थ को जान या समझ नहीं पाता। भेड़िया कभी भी भेड़ की निरीहता पर दया नहीं करता वरन् अपने स्वाभावानुकूल, प्रतिक्रिया स्वरूप, हिंसा का ही प्रदर्शन करता है। कटु सत्य को वह समझ नहीं पाता या अनदेखा कर देता है। कारण यह है कि वह तो जीवन-यथार्थ को मूल, अपने कल्पना के आदर्श भरे लोक में ही विचरण करता रहता है, उसी में खोया रहता है और उसी में मग्न बना रहता है। फलत: उसके लिए इस बात पर सोच-विचार करना मुश्किल हो जाता है कि जीवन के यथार्थ को जानना-समझना तथा तदानुकूल व्यवहार करना कितना अधिक मुश्किल है, उस तक पहुंचना कितना मुश्किल है और उसका पालन करना कितना अधिक अप्राकृतिक है। आशय यही है कि नगर का सुशिक्षित जन भेड़िए वाली प्रवृत्ति का होता है जो अज्ञान में रमे ग्राम्य जन रूपी भेड़ों की निरीहता को देख लसीजता नहीं वरन् उसके साथ हिंसा भरा, निर्दयी व्यवहार करता है।

हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी, उसके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है तो हम क्षुब्ध होते हैं और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।

(19) **किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेतों में अनाज होता, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान? होरी किसान था और किसी जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।**

संदर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- स्वभाव के भावुक पर व्यवहार-कुशल होरी द्वारा विवाह करा देने में यथाशक्ति सहायता करने की बात ने विधुर भोला को भाव-विभोर कर दिया था। यहां तब कि वह (भोला) होरी की शर्तों पर ही तथा उसी की सुविधा के अनुसार होरी को अपनी गाय तक देने के लिए तैयार हो गया। दोनों ही किसान थे। अतएव, किसान वाले चातुर्य भरे गुण-अवगुणों से भी दोनों ही भरपूर

थे। इन्हीं के चारित्रिक विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीय किसान की विशेषताओं का अंकन करते हुए लेखक ने कहा है।

व्याख्या- निःसंदेह, अपने स्वभाव से (भारतीय) किसान पक्का स्वार्थी होता है। प्रायः निर्धन-विपन्न होने के कारण उसके लिए स्वार्थी होना स्वाभाविक भी है और विवशता भी अतएव वह किसी को रिश्वत बड़ी मुश्किल से देता है, सौदे का क्रय-विक्रय करते समय बड़ी सावधानी के साथ भाव-ताव करता है, लिये गए ऋण के ब्याज से छोटी से छोटी कटौती कराने हेतु (वह स्वाभिमान को त्याग) ऋणदाता 'महाजन की डटकर खुशामद करता है, पूर्णतया संतुष्ट हुए बिना वह किसी के बहकावे में नहीं आता, क्योंकि अति की निर्धनता उसको पैसे का महत्व समझा देती है, तो जीवन का व्यवहार उसको जरूरत से ज्यादा चतुर बना देता है। इस पर भी वह क्योंकि जीवन भर उदारता तथा परोपकार की भावना से भरी-पूरी प्रकृति के सन्निध्य में रहता है, अतएव स्वयं भी (मानो इसी कारणवश) स्वभाव से उदार और परोपकारी बन जाता है। जिस प्रकार वृक्षों के फल स्वयं नहीं खाते, अन्य जन खाते हैं, खेतों में उत्पन्न होने वाला अनाज संसार के प्राणियों का पेट भरता है, गाय के थन का दूध स्वयं गाय नहीं, दूसरे पीते हैं और मेघों के वर्षा-जल से स्वयं मेघ नहीं वरन् पृथ्वी संतुष्ट होती है, इसी भांति, प्रकृति के इन तत्वों के सान्निध्य में रहने वाला किसान स्वयं दुःखी रहकर भी दूसरों को सुख प्रदान करता है। प्रकृति की सत्संगति में ही आजीवन रहने वाले किसान में भला घृणास्पद स्वार्थ-भावना रह भी कैसे सकती है?

होरी तथा उसका हृदय भी इसी का साक्षी है। वह भी किसान था-पैसे की कीमत समझने वाला, किन्तु साथ ही उदारमना भी। वह दूसरे के जलते हुए घर में हाथ नहीं सेंकता था। इसी से भोला की बातों को सुनकर वह तुरंत द्रवित हो उठा और बिना गाय के लिए ही उसको दो-चार मन भूसा मुफ्त देने को तैयार हो गया।

विशेष- 1. यहां पर भारतीय किसान और उसके प्रतिनिधि होरी के माध्यम से लेखक ने उसका सच्चा मित्र उपस्थित किया है। यह इस सत्य का भी साक्षी है कि लेखक की कृषक जीवन विषयक जानकारी अत्यंत गहन और सूक्ष्म थी। 2. सरल-सामान्य शब्दावली तथा मुहावरों का समावेश लेखक की समर्थ भाषा के उद्घोषक हैं।

(20) **तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो। हमारे नाम बढ़े हैं, पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है, तो स्वार्थ के लिए अथवा पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या या बैर को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में ऊंगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या तथा बैर केवल आनंद के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनंद मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुंच गए हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हंसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो।**

संदर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- अवध प्रांत का ही एक गांव था-सेमरी। इसी में रहते थे-राय-साहब अमरपाल सिंह जो जमींदार थे तथा इसी नाते बेलारी ग्राम निवासी होरी के स्वामी भी थे। इन्हीं के यहां जेठ के महीने में, दशहरा पर्व पर प्रतिवर्ष 'धनुष लीला' आयोजित की जाती थी, किन्तु इसका व्यय उठाना पड़ता था-भूखे मरते किसानों को, जमींदार की प्रजा को। इस बार भी जमींदार राय साहब ने घर आए होरी को चेताया और शकुन एकत्र करने-कराने का मीठा और उपदेशामृत दिया। कारण? किसान-किसान की सलाह मानता है, गुमाश्ता का कहना नहीं। अपने इसी मीठे उपदेशामृत के अंतर्गत तथा होरी द्वारा गरीबों का संदर्भ दिये जाने पर अपनी वास्तविकता भरी स्थितियों को प्रकट करते हुए राय साहब ने होरी से कहा।

व्याख्या- (आश्चर्य है कि) तुम हमें बड़ा व्यक्ति समझते हो, क्योंकि वस्तुत: तो हम जमींदार (जैसे धनी वर्ग के) लोग एकदम "ऊंची दुकान फीका पकवान" वाली कहावत को ही सत्य चरितार्थ करने वाले हैं। कारण ? हम लोगों में अनेकानेक अवगुण हैं। यूं अवगुण (किसान जैसे) दरिद्र लोगों में भी होते हैं, पर दोनों वर्गों के लोगों के अवगुणों के मूल कारणों में पर्याप्त अंतर होता है। प्रमाणस्वरूप ईर्ष्या या शत्रुता जैसे अवगुणों को ही लो। दरिद्र लोग दूसरों से द्वेष या शत्रुता करते हैं, अपनी स्वार्थ-पूर्ति या मुख्यत: रोटी की जुगाड़ करने हेतु जबकि हमने तो अपना धर्म ही यह बना रखा है कि दूसरे के हाथ की रोटी छीनी-येन केन प्रकारेण यानी हर संभव उपाय से। निश्चयतया मैं समझता हूं कि निर्धनों की विवशताजन्य ईर्ष्या या शत्रुता क्षमा कर दिये जाने योग्य होती है (क्योंकि वह विवशता वश होती है या फिर पापी पेट भरने के लिए) दूसरी ओर, हम धनी लोग समस्त सुख-सुविधा संपन्न होने पर भी, केवल इस आशंका मात्र पर उतारू हो जाते हैं और अमर कभी नहीं होते तो दूसरे लोग हमको देवता समान मानने-बताने लगते हैं। सच तो यह है कि ईर्ष्या या शत्रुता जैसे अवगुण रख कर और इनको भी व्यवहार में प्रयुक्त करके ही हमको मजा आता है, पर-पीड़ा से ही मानो हमारा मनोरंजन होता है। इतना ही नहीं वरन् एक से बढ़कर एक नीच और कुटिलता भरे काम करके ही हम आनंदित होते हैं और इसी को 'परोपकार' करना समझते हैं। हम इतने महान् (वास्तव में तुच्छ) बन चुके हैं कि दूसरे को अधिकाधिक कष्ट देकर उसको पीड़ावश रोते-बिलबिलाते देखकर भी हम प्रसन्न होते हैं हंसते हैं। यही हमारा देनत्व (वस्तुत: दानवत्व) है, यही हमारी महानता (तुच्छता) है। निश्चय ही, मानवता को एकदम त्याग कर इतना अध:परित बन जाना भी एक साधना है, वह भी छोटी सामान्य नहीं, (क्योंकि अपना इस प्रकार पतन कर लेना हर मानव के लिए संभव नहीं है।)

विशेष- 1. राय साहब के दोगले और कुटिलता भरे व्यक्तित्व का सूचक प्रस्तुत कथन उनके चरित्रांकन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। 2. यहां पर, राय साहब के माध्यम से लेखक ने अपने समकालीन जमींदार वर्ग का एकदम सच्चा और प्रभावोत्पादक चित्रण किया है।

(21) **मन पर जितना ही गहरा आघात होता है, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्ति तथा कलंक ने गोबर के अंत:स्थल को मथकर वह रत्न निकाल लिया जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उससे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम से कम काम करता तथा ज्यादा से ज्यादा खाना अपना हक समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा कि घर वालों के साथ उसका भी कुछ कर्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया।**

प्रसंग- गोबर की आशा के विपरीत, घर पर वधू रूप में अकेली आयी झुनिया को, धनिया और होरी ने तुरंत स्वीकार ही नहीं कर लिया था वरन् उसको पूरा-पूरा अपनत्व भी दे दिया था। माता-पिता के इस महत्व कार्य ने गोबर को अत्यंत भावाविभूत बना दिया तथा वह पुन: आत्म-मंथन में डूब गया। गोबर की इसी मन:स्थिति और तद्जन्य प्रतिक्रियाओं का विवरण देते हुए उपन्यासकार ने बताया है-

व्याख्या- यह एक सामान्य तथा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति के मन पर किसी कर्म या घटना की क्रिया से जितनी ज्यादा चोट पहुंचती है, उसका परिणाम भी इतना ही ज्यादा तथा गहरा हुआ करता है। नि:संदेह, होरी धनिया द्वारा झुनिया को तुरंत तथा अत्यधिक स्नेहपूर्वक अपना लिया जाना भी एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना थी-मुख्यत: गोबर की दृष्टि में। परिणामस्वरूप गोबर की मानसिक प्रतिक्रियाएं भी महत्वपूर्ण तो होनी ही थीं-थी भी। झुनिया से प्रेम, गुप्त विवाह और चुपचाप अकेली को घर में भेज, स्वयं ग्लानि या आशंका ग्रस्त हुए, गोबर को प्राप्त होने वाले अपयश तथा उसके अपराध-दोष ने उसके मन-मस्तिष्क को आंदोलित कर दिया-ठीक दूध की भांति मथ कर रख

दिया। जिस तरह मथे जाने पर भी दूध में छिपा हुआ, घी या मक्खन निकल आता है, ठीक उसी प्रकार गोबर के अंतर्मन से भी वह माखन-रत्न तुल्य दायित्व-बोध निकल पड़ा जो अभी तक मन में ही छिपा पड़ा था। प्रमाण? आज, पहली बार उसको अपनी जिम्मेदारियों का बोध हुआ और उनकी अधिकाधिक पूर्ति करते रहने का दृढ़ निश्चय भी उसके मन से उठ बैठा। प्रमाण? अब तक तो एक सामान्य औसत ग्रामीण युवा की भांति वह घर के काम कम से कम करता था और उसका सारा ध्यान केवल अधिकाधिक खाने-पीने या मौज मजा उड़ाने तक ही लगा रहता था। उसको ही वह अपना अधिकार तक समझता था। इसके पूर्व उसने कभी सोचा भी नहीं था कि अपने घर वालों के प्रति उसके कुछ कर्तव्य भी हैं, लेकिन आज, माता-पिता (धनिया और होरी द्वारा, अपनी आशा के एकदम विपरीत पुत्र को उदारतापूर्वक क्षमा कर दिये जाने और झुनिया को सस्नेह स्वीकार कर लिये जाने की घटना ने ही मानो उसके हृदय में ज्ञानालोक भर दिया था।

(22) **जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य रूप तथा बल विद्या और बुद्धि ये विभूतियां संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहां जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आनंद की वस्तु को बुझी हुई आशायें और मिटी हुई स्मृतियां तथा टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।**

प्रसंग- खन्ना की नितप्रति की बढ़ती हुई विलासिता, घर और घरवालों की उपेक्षा और मुख्यतः मालती के साथ उसके उन्मुक्त संबंधों का एक प्रभाव पड़ा खन्ना के दांपत्य जीवन में उभरती, बढ़ती दरार के रूप में। सीधी-सादी मिसेज खन्ना अर्थात् गोविंदी इस सबको अधिक नहीं सह सकी और एक दिन घर छोड़ कर चल दी। दुविधा और चिंता से ग्रस्त बनी वह जा पहुंची थी एक चिड़िया-घर में जहां अचानक ही उसकी भेंट प्रो. मेहता से हो गयी। बातों ही बातों में, गोविंदी उनसे कह बैठी कि मेहता को तो कवि होना चाहिए था, दार्शनिक नहीं, यद्यपि कवि को संसार में प्रायः दुःख ही मिला करते हैं। इसी के प्रत्युत्तर में, कवि की दुःख को ही सुख मानने की विशेषता तथा काव्य-सृजन में इस दुःख के महत्व को प्रतिपादित करते हुए प्रो. मेहता ने गोविंदी से कहा-

व्याख्या- संसार जिन उपलब्धियों को दुःख मानता है, कवि उसी में सुख के दर्शन करता है। धन, ऐश्वर्य, शरीर-शक्ति, विद्या और बुद्धि आदि सांसारिक वस्तुओं में सामान्य जन ही उलझता है तथा उनकी प्राप्ति-कामना से इन पर मोहित या लुब्ध होता है जबकि कवि के लिए ये सब एकदम अनाकर्षक होती हैं। दूसरी ओर, असफल आशायें, समाप्त हो चुकीं यादगारें तथा टूटे हुए हृदय का दुःख (भरा रुदन) ही उसको आकर्षित-आनंदित करते हैं। आशय यही है कि कवि प्रदानता वेदना तथा करुणादि का उपासक होता है, भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐश्वर्यादि का नहीं। कारण? वेदनादि से प्रेम करने पर ही उसकी संवेदनाएं जागृत होती हैं जिनकी अभिव्यक्ति करने हेतु वह काव्य-सृजन करता है और कवि बना रहता है। तात्पर्य यही है कि वेदनादि की काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा या आलंबन होती हैं। दूसरी ओर, दर्शन शास्त्र और उसका उपासक दार्शनिक तो जीवन की मर्मसूचक इन संवेदनाओं का केवल विश्लेषण मात्र ही करता है जबकि कवि इससे तादात्म्य स्थापित करके तल्लीन हो जाता है।

(23) **हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी, उसके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं और वह त्याग प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।**

प्रसंग- पिता की इच्छा के विपरीत, रायसाहब के इकलौते पुत्र रुद्रपाल ने चुपचाप प्रेम-विवाह कर लिया था। इधर रायसाहब अपने पुत्र का विवाह जमींदार सूर्यप्रतापसिंह की पुत्री के साथ तय कर चुके थे जिसको पुत्र ने स्वीकार नहीं किया। फलत: रायसाहब भड़क उठे। उनकी इसी समय की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने टिप्पणी की है-

व्याख्या- रायसाहब सोच रहे थे-जीवन में हम जिन लोगों के भले के लिए कई प्रकार के त्याग किया करते हैं, बेशक उनसे (अपनत्व के कारण) बदले में वैसा ही त्याग किये जाने की कामना नहीं करते किन्तु फिर भी इतनी कामना अवश्य रहे, चाहे यह प्रभाव उन लोगों के भले के लिए ही हो। (अत्यधिक अपनत्व भरे समत्व कारण) अपने माने जाने वाले लोगों के हित को हम अपना ही हित मान बैठते हैं। त्याग की मात्रा वृद्धि के साथ-साथ यह प्रभाव-भावना (और स्वहित मान बैठना भी) बढ़ती ही जाती है। दूसरी तरफ जब दूसरी तरफ से (हमारी बात को न मानते हुए हमारी किसी भी बात या कार्य का) विरोध किया जाता है तो हम क्रोधित हो जाते हैं। इस तरह हमारा पूर्वकालीन त्याग ही मानो प्रत्युत्तर-स्वरूप क्रोधादि हिंसा का रूप धारण कर लेता है।

विशेष- 1. मनोविज्ञान सम्मत प्रस्तुत दृष्टांत यथार्थ और सूक्ति-परक है।

2. यहां पर रायसाहब के पितृ रूप की मन:स्थिति का सांकेतिक शैली में चित्रण है।

(24) **"मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं।....जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, जहां कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिंता नहीं करता, मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है।...ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुस्कराहट न आये, आंखों में आंसू न आये, मैं कहता हूं, अगर तुम हंस नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है।"**

संदर्भ- इस गद्यांश में डॉ. मेहता का कथन गोविन्दी के प्रति है। वे अपने जीवन का आदर्श करते हुए कहते हैं-

व्याख्या- मैं प्रकृति का पुजारी हूं इसलिए मनुष्य की बनावट तथा उसके ढंग से मुझे घृणा है। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने इस प्राकृतिक रूप में रहे, जो प्रसन्नता में हंसे और दु:खी होने पर रुदन करे तथा क्रोध करने पर क्रोध के आलंबन को मार डाले। दु:ख और सुख का दमन करने वाले मनुष्य अपने प्राकृतिक रूप में नहीं होते। ऐसे लोग रोने को दुर्बलता और हंसने को हल्कापन समझते हैं। इस प्रकार के प्राकृतिक लोगों से मेरी प्रकृति नहीं मिलती। मैं जीवन को आनंदमय क्रीड़ा मानता हूं। मेरी दृष्टि में सरल और प्राकृतिक जीवन में कुत्सा, ईर्ष्या तथा जलन के लिए कोई स्थान नहीं है। वह सर्वथा सरल और स्वच्छंद है।

मैं वर्तमान को ही सब कुछ समझता हूं, जो कुछ व्यतीत हो चुका है, उसकी मुझे चिंता नहीं होती और भविष्य की भी मैं परवाह नहीं करता। भविष्य सर्वथा अनिश्चित होता है। उसकी अनिश्चयजनित शंका हमें कायर बना देती है। भूतकाल में जो कुछ व्यतीत हो चुका है, उसकी चिंता करना व्यर्थ है, उसकी चिंता के भार से कमर तोड़ना कोई महत्व नहीं रखता। अत: मनुष्य के लिए वर्तमान ही सब कुछ होना चाहिए। उनके जीवन की शक्ति इतनी कम है कि उसको भूतकाल से लेकर भविष्यकाल तक फैला दिया जायेगा, तो वह और अधिक क्षीण हो जायेगी। वर्तमान में भूतकाल की रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के जाल में उलझने से मनुष्य की शक्ति क्षीण होती है और वह पस्तहिम्मत हो जाता है। मनुष्य की जो शक्ति मानव धर्म के उत्कर्ष, सहयोग, भाई-चारा, आदि के विकास में लगनी चाहिए वह बाप-दादों के ऋण के चुकाने एवं पुरानी अदावतों का बदला लेने में क्षीण हो जाती है।

मेहता आगे ईश्वर एवं मोक्ष का विवेचन करते हुए कहते हैं कि हमारे यहां ईश्वर और मोक्ष की जो मान्यता है, उस पर हंसी आये बिना नहीं रहती। हमारी उपासना तथा मोक्ष के अहंकार की आज पराकंठा हो गई है और उसके द्वारा मानवता नष्ट होती जा रही है। यथार्थ में ईश्वर जीवन, क्रीड़ा, जिंदादिली और प्रेम है। जीवन को सुखी बनाना ही ईश्वर और सच्ची उपासना है। ज्ञानी ओठों पर मुस्कराहट और आंखों में आंसू न आने की बात कहता है, परंतु मेरी दृष्टि से मनुष्य के लिए हंसना और रोना तो उसके ऐसे गुण हैं, जिनको पृथक नहीं किया जा सकता और यदि वह हंस नहीं सकता तो वह मनुष्य न होकर पत्थर है। इस प्रकार का ज्ञान जो मनुष्यता को ही पीसकर नष्ट कर दे, वह ज्ञान न होकर कोल्हू के समान विनाशक होता है।

विशेष- प्रेमचंद ने मेहता के शब्दों में रूढ़ियों व अंधविश्वासों का विरोध करते हुए ईश्वर की मोक्ष, ज्ञान और मानव-जीवन की उपयोगितावादी दृष्टिकोण से यथार्थ व्याख्या की है। यहां मेहता के रूप में प्रेमचंद का ही व्यक्तित्व सजीव हो उठा है।

(25) **"अब वह प्रेम नहीं श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्बल हो गयी थी और दुर्बलता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग मंत्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा और स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है, और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनंद अपना समर्पण, जिसमें अहमण्यता का ध्वंस हो जाता है।"**

संदर्भ- प्रारंभ की तितली मालती आदर्श सेवाव्रती नारी बन जाती है। पहले जहां डॉ. मेहता उससे दूर भागते थे, वे स्वयं उसकी तरफ आकर्षित हैं। उनके सिर में भयंकर दर्द होता है, जो मालती के हाथ रखते ही दूर हो जाता है। मेहता उसे मालती की तपस्या और सेवा-व्रत का प्रभाव मानते हैं। मालती के प्रति उनकी श्रद्धा उमड़ पड़ती है।

व्याख्या- मेहता अब मालती से विवाह करने के लिए आतुर थे, लेकिन मालती के तपस्वी और सेवाव्रती रूप को देखकर समझ जाते हैं कि मालती अब प्रेम की वस्तु न रहकर श्रद्धा की वस्तु बन चुकी है। श्रद्धा में उद्देश्य को प्राप्त करने की कामना नहीं रहती। प्रेम और श्रद्धा में अंतर है। प्रेमास्पद पर प्रेमी जहां अपना एकाधिकार चाहता है, वहां श्रद्धेय सबकी श्रद्धा का अधिकारी बन जाता है। वह अपने श्रद्धेय पर दूसरों की श्रद्धा देखकर प्रसन्न होता है। प्रेम व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, लेकिन प्रेम जब श्रद्धा का रूप ग्रहण कर लेता है, तब उसमें सामाजिकता आ जाती है, मालती अब मेहता के लिए श्रद्धा की वस्तु बन गई है, अब उसके लिए प्रेम दुर्लभ है। मेहता मालती के प्रेम की प्राप्ति में जिस सुख की कल्पना करते थे, उसमें श्रद्धा भाव आ जाने पर अब उनमें स्फूर्ति का संचार हो गया था। श्रद्धा का चरम आनंद समर्पण में होता है। श्रद्धा में अहं नहीं रहता। मेहता के हृदय में मालती के प्रति अब प्रेम का स्थान श्रद्धा ने ले लिया था।

विशेष- यहाँ मेहता की मनःस्थिति के विश्लेषण में श्रद्धा और प्रेम का अंतर स्पष्ट किया गया है।

इकाई-दो

स्कंदगुप्त

स्कंदगुप्त

पाश्चात्य नाटककारों ने नाटक के छः तत्व माने हैं-1. कथावस्तु, 2. पात्र, 3. कथोपकथन, 4. देशकाल, 5. शैली तथा 6. उद्देश्य। नाटक दृश्य काव्य है। उसका संबंध रंगमंच से है। अतः नाटक की सफलता के लिए उसमें अभिनेयता का गुण होना अनिवार्य है। भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन तत्व माने हैं-वस्तु, नाटक या पात्र और रस। भारतीय आचार्यों ने कथोपकथन और देशकाल का समावेश नायक तत्व के ही अंतर्गत किया है और उद्देश्य के स्थान पर रस को प्रमुखता दी है। हम पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों को समन्वित करते हुए 'स्कंदगुप्त' नाटक की समीक्षा करेंगे।

कथावस्तु- 'स्कंदगुप्त' नाटक का कथानक भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग-गुप्तकाल से संबद्ध है। उसमें वर्णित घटनाओं का आधार इतिहास के विभिन्न स्रोत हैं, जिनमें तत्कालीन शिलालेख, इतिहास एवं साहित्य ग्रंथ तथा सिक्के आदि शामिल हैं। इतिहास के रिक्त स्थलों की पूर्ति प्रसाद ने अपनी मौलिक खोज, जन-विश्वास तथा कल्पना द्वारा की है। नाटककार के अपने शब्दों में, "पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि जहां तक संभव हो सका है, न होने दी गई है, फिर भी कल्पना का अवलंबन लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परंपरा ठीक करने के लिए।" असल में इस नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों और मानवीय संवेदनाओं का नीर-क्षीण मिश्रण हुआ है। आंतरिक कलह तथा हूणों के आक्रमण से विचलित गुप्त-राज्य लक्ष्मी को पुनः स्थिरता प्रदान करना आधिकारिक वस्तु और मालव, देवसेना और विजया से संबद्ध कहानी प्रासंगिक है। इन दोनों घटना समूहों का अच्छा संघात नाटक में हुआ है। प्रासंगिक घटनाओं के फेर में पड़ कर कथावस्तु को जटिल नहीं बनाया गया। वस्तु के विकास में भारतीय एवं पाश्चात्य कार्यावस्थाओं का समन्वय हुआ है। अर्थ प्रकृतियों और संधियों के निर्वाह के प्रति जागरूक रह कर भी नाटककार ने संघर्ष, नाटकीय सक्रियता तथा कौतूहल पूर्ण घटनाओं को स्थान देकर पाश्चात्य-विधि का समन्वय किया है।

कुछ आलोचक नाटक के पहले दृश्य, चौथे अंक में काश्मीर के न्यायाधिकरण, उससे आगे प्रख्यात कीर्ति वाले तथा ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष संबंधी दृश्य तथा पांचवें अंक के पहले और अंतिम दृश्य को अनावश्यक मानते हैं। इसी प्रकार वस्तु-बाहुल्य के कारण कुछ अंशों की पुनरावृत्ति भी हुई है। जैसे पांचवें अंक का आरंभ सारे कथानक पर सिंहावलोकन करता हुआ दिखाई देता है। लेकिन वास्तव में नाटक का पहला दृश्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचायक है तो बौद्ध ब्राह्मण संघर्ष संबंधी दृश्य में भारत के तत्कालीन शोचनीय दशा का चित्रण है। मुद्गल का सिंहावलोकन यद्यपि कलात्मक नहीं तथापि घटनाओं की एकसूत्रता की दृष्टि से उपयुक्त है।

'स्कंदगुप्त' में कार्य तत्व सम्यक् वेग से आगे बढ़ता है। घटनाओं में प्रवाह है, लेकिन दर्शक की विचारशक्ति को पीछे जाने वाली द्रुतता नहीं। अतः कहा जा सकता है कि 'स्कंदगुप्त' का कथानक बहुत सुगठित तथा श्रृंखलाबद्ध है। संयोजन आद्यंत प्रभावपूर्ण और प्रसाद की संगुफन कुशलता का द्योतक है।

पात्र और चरित्र-चित्रण- स्कंदगुप्त नाटक में व्यापक पात्र-योजना है। समस्त पात्रों को युद्ध-मानव, राक्षस तथा देवता प्रकृति के पात्रों में विभाजित किया जा सकता है। शुद्ध-मानव प्रकृति के पात्र अपने अच्छे तथा बुरे दोनों रूपों में आते हैं। राक्षस पात्र अत्याचार, षड्यंत्र और आसत् की मूर्ति दिखाई पड़ते हैं। देवता पात्र-आदर्श के सच्चे प्रतिनिधि हैं, प्रसादजी भारत की शुद्ध आध्यात्मिकता के पक्षपाती हैं अत: दानव वृत्ति के पात्र कभी प्रबल नहीं होने पाते। स्नेह, प्रेम और आत्मशोधन से उनके चरित्र में परिवर्तन होता है। यथार्थ मनुष्यों के रूप में जयमाला और शर्वनाग की सृष्टि सुंदर है। उसमें अच्छाइयां होते हुए मानवोचित दुर्बलताएं भी हैं। देवसेना, स्कंदगुप्त, पर्णदत्त तथा बंधुवर्मा उदात्त चरित्र के देवता-चरित्र पात्र हैं। वे आदर्श रूप होते हुए भी मानव-जीवन से दूर नहीं होते। वे हृदय में द्वंद्व लेकर मर्मक्षेत्र में चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत नाटक के कथानक का प्रारंभ स्कंदगुप्त की विराग भावना से होता है। स्कंदगुप्त के सभी उदात्त चरित्र के पात्र मर्यादा पालन करते हैं। स्कंदगुप्त नाटक उद्देश्य प्रधान है। अत: पात्रों के दो वर्ग हो गये हैं। स्कंदगुप्त, पर्णदत्त, बंधुवर्मा, देवसेना आदि जहां उद्देश्य के साधक हैं, वहां अनंतदेवी, भटार्क, पुरगुप्त, प्रपंचबुद्धि आदि इष्ट के विरोधी हैं। स्कंदगुप्त के पात्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे द्वंद्व की पृष्ठभूमि में ही अपने चरित्र का विकास करते हैं। नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से होता है- 1. पात्र के आचरण द्वारा, 2. उसके स्वयं के कथनों द्वारा और 3. उसके संबंध में अन्य पात्रों के कथनों द्वारा। प्रसादजी ने स्कंदगुप्त के पात्रों के चरित्र-चित्रण में तीनों ही रूपों में अपनाया है।

कथोपकथन- कथोपकथन की दृष्टि से स्कंदगुप्त सफल नाटक है। कथोपकथनों की पहली विशेषता यह है कि कथावस्तु के विकास में सहायक है। दूत और पर्णदत्त निम्न कथोपकथनों में आगे की कथावस्तु तथा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का स्पष्ट परिचय मिल जाता है-

दूत- शंकराष्ट्र चंचल हो रहा है। नवागत म्लेक्ष-वाहिनी से सौराष्ट्र भी पदाक्रांत हो चुका है इसी कारण पश्चिमी मालव भी सुरक्षित न रहा।

पर्णदत्त- वलभी का क्या समाचार है?

दूत- वलभी का पतन अभी रुका है। पर बर्बर हूणों से उसका बचना कठिन है।

कथोपकथन पात्रों के चरित्र को प्रकाशित करने में भी सफल है। दूत और स्कंदगुप्त के निम्न कथोपकथन में स्कंद के चरित्र की उदात्त-भावना अभिव्यक्त होती है।

"दूत ! केवल संधि-नियम से ही हम लोग बाध्य नहीं हैं किन्तु शरणागत की रक्षा भी क्षत्रिय का धर्म है। एक-स्कंद के जीते जी मालव का कुछ न बिगड़ सकेगा।"

स्कंदगुप्त के तुरत-बुद्धि प्रकाशन कथोपकथन भी हैं। इसके द्वारा पात्रों की सूझ-बूझ और वाक् कुशलता का परिचय मिलता है। बंधुवर्मा और विजया के कथोपकथन देखिए-

बंधुवर्मा- देवसेना, तुझे गाने का भी विचित्र रोग है।

देवसेना- रोग तो एक न एक सभी को लगा है, लेकिन यह रोग अच्छा है इससे कितने रोग अच्छे किये जा सकते हैं।

'स्कंदगुप्त' नाटक के कथोपकथन पात्रों की मानसिक स्थिति को प्रकट करने में भी सहायक हुए हैं। इस श्रेणी में मातृगुप्त, स्कंदगुप्त और देवसेना के कथन को लिया जा सकता है।

स्कंदगुप्त नाटक के कथोपकथनों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सजीवता और छोटा होना है, वे बातचीत का स्वाभाविक रूप उपस्थित कर देते हैं। निम्न कथोपकथन में देखिए-

शर्व- तुमको रानी बना दूंगा।

रामा- क्या?

शर्व- तुम्हें सोने से लाद दूंगा।

रामा- किस तरह ?

स्कंदगुप्त नाटक के कथोपकथन प्रसादजी के अन्य नाटकों की अपेक्षा ज्यादा सजीव, प्रभावशाली और संक्षिप्त हैं।

देश-काल-योजना- देश-काल की योजना की दृष्टि से स्कंदगुप्त नाटक सर्वथा सफल है। देश के राजनैतिक दशा और पुष्यमित्रों और हूणों के आक्रमणों से अस्त-व्यस्त हो रही थी। इधर राज-परिवार में आंतरिक कलह चल रहा था। सामाजिक दशा भी अच्छी नहीं थी राजधानी विलासिता में डूबी हुई थी। बौद्ध और ब्राह्मणों का विरोध सांप्रदायिकता का विष फैलाकर समाज को दुर्बल बना रहा था। स्कंदगुप्त नाटक तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्था का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

रस-योजना- स्कंदगुप्त नाटक में आदि से लेकर अंत तक स्थायीभाव उत्साह बना रहने से वीर रस प्रधान है। साथ में प्रासंगित रूप में प्रणय-कथा भी चलती है अत: वीर के साथ श्रृंगार-रस सहायक बन कर उपस्थित हुआ है। नाटक के अंत में स्कंदगुप्त तथा देवसेना की वीतराग की स्थिति नाटक का अंत प्रसादांत करती है।

उद्देश्य- स्कंदगुप्त के कथानक का अंत जहां शास्त्रीय दृष्टि से वीर-रस की निष्पत्ति करता है, वहां पाश्चात्य नाट्य-कला की दृष्टि से उसका उद्देश्य भी है। नाटक का मुख्य उद्देश्य हूणों को निकाल कर देश की निरापद करना और आंतरिक संघर्ष को शांत कर स्थायी शांति की स्थापना करना है। इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कथावस्तु नायक स्कंदगुप्त कटिबद्ध होता है। जहां वह हूणों को पराजित करके देश को आक्रमणकारियों से निरापद बनाता है वहां, रण-क्षेत्र में ही पुरगुप्त का तिलक कर आंतरिक कलह को भी शांत कर देता है।

भाषा-शैली- स्कंदगुप्त की भाषा साहित्यिक है। मानसिक-द्वंद्व का चित्रण करते समय भाषा संस्कृत-बहुला और समास-प्रधान हो जाती है। निम्न उदाहरणों में देखिए-

"एक दुर्भेद्य नारी-हृदय में विश्व-सेहेलिका का रहस्य-बीज है।"

"परंतु महादेवी क्या युद्ध गान नहीं है। रुद्ध का श्रृंगीनाद, भैरवी का तांडव-नृत्य तथा शास्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव संगीत की पुष्टि करता है।"

स्कंदगुप्त में यथास्थान दार्शनिक विचारों की छाप है। यही कारण है कि शैली में गंभीरता और गूढ़ता आ गई है। प्रसादजी पहले कवि हैं तथा पीछे नाटककार। स्थान-स्थान पर उनका कवि-हृदय प्रतिबिम्बित हो उठता है। निम्न उदाहरण में देखिए-

"अमृत के सरोवर में स्वर्ण-कमल खिल रहा था। भ्रमर वंशी बजा रहा था, सौरभ तथा पराग की चहल-पहल थी।"

इस प्रकार की साहित्यिक, कवित्तमयी और दार्शनिक विचारों से बोझिल भाषा नाटक की अभिनेयता को ठेस पहुंचाती है।

गीति-योजना- प्रसादजी के नाटकों में अवश्य ही कोई न कोई ऐसा स्त्री-पात्र होता है जो बहुत गाता है। 'स्कंदगुप्त' की देवसेना को भी गाने का रोग है। स्कंदगुप्त नाटक में कुल मिलाकर 17 गीत हैं। इनमें कुछ मनोव्यथा को व्यक्त करने वाले, कुछ ईश प्रार्थना संबंधी, कुछ प्रेम-गीत और कुछ राष्ट्रीय भावनाओं से भी पूर्ण हैं। इनमें विजेता के गीत सर्वथा अनुपयुक्त हैं। युद्ध के समय देवसेना का गाया हुआ गीत भी इसी प्रकार का है। 'स्कंदगुप्त' के प्राय: गीत, अभिनेयता और साहित्यिकता दोनों की श्रीवृद्धि करते हैं।

पाश्चात्य और पौर्वात्य शैलियों का समन्वय- स्कंदगुप्त नाटक में भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही शैलियों का समन्वय है भारतीय शास्त्रीय दृष्टि से कथानक जहां पूर्ण है वहां पाश्चात्य ढंग की 'चरम सीमा' का भी समावेश है। पाश्चात्य नाटकों में कार्यशीलता तथा द्वंद्व को प्रधानता दी गई है। 'स्कंदगुप्त' नाटक में दोनों तत्व मिलते हैं। युद्ध चेष्टा, प्रयत्न, षड्यंत्र, विरोध, दमन आदि व्यापार कार्यशीलता के परिचायक हैं। स्कंदगुप्त और देवसेना के प्रसंग के अंतर्गत व्यक्तिगत द्वंद्व का सुंदर रूप मिलता है। स्कंदगुप्त के विरोध में किये गये षड्यंत्र में वर्गगत द्वंद्व का सजीव रूप है।

अभिनेयता- अभिनेयता की दृष्टि से 'स्कंदगुप्त' नाटक पर दोषारोपण किये जाते हैं, उसका कथानक इतना लंबा है कि पांच छः घंटे में भी उसका अभिनय नहीं हो सकता। कुछ स्थलों के लंबे कथोपकथन भी अभिनेयता में बाधक हैं। गानों को इतना अधिकृत्य है कि उनको गवाने में बहुत अधिक अपेक्षित होगा। कुछ स्थलों पर कथोपकथन में कवित्व तथा दार्शनिक विचारों का इतना अधिक बोझ है कि दर्शक रसास्वादन में असमर्थ रह जाते हैं। दृश्य-योजना भी सदोष है। ब्राह्मण बौद्धों का प्रसंग सर्वथा निरर्थक है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि स्कंदगुप्त रंगमंच का गौरव भले ही न हो परंतु काव्यनिधि का अमूल्य रत्न अवश्य है।

स्कंदगुप्त में नाटकीय शिल्प की दृष्टि से त्रुटियां- स्कंदगुप्त नाटक भारतीय नाट्यशास्त्र और पाश्चात्य नाट्यकला दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है, पर कुछ शास्त्रीय त्रुटियां भी हैं। अंकों की दृष्टि से बड़ा होने के साथ-साथ दृश्यों का संतुलन भी ठीक नहीं रह सका है। सामान्यतः पहले अंक के बाद के अंकों में क्रमशः दृश्य कम होते चले जाने चाहिए परंतु ऐसा नहीं हुआ है। दृश्यों की संख्या कम की जा सकती थी। कम-से-कम चतुर्थ अंक में से तीन दृश्य सरलता से कम किये जा सकते थे। न्यायाधिकरण में मातृगुप्त तथा मालिनी के वार्तालाप का कथानक से कोई संबंध नहीं है। पांचवें दृश्य में ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष बिल्कुल व्यर्थ का है। इसी प्रकार से पांचवें अंक का प्रथम दृश्य अनावश्यक है। इस अंक के चतुर्थ दृश्य में नाटक अपने आप उद्देश्य में पूर्ण होकर समाप्त हो जाता है। पुरगुप्त में राज्याभिषेक होने के पश्चात् नाटक की दृष्टि से फल-प्राप्ति के रूप में कुछ भी शेष नहीं रहता। पांचवां दृश्य बिल्कुल व्यर्थ-सा है। देव सेना के चरित्र का विकास द्वितीय दृश्य में ही कुछ वाक्य जोड़कर सरलता से दिखाया जा सकता था।

चमत्कार के प्रति प्रसादजी का मोह विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। अतः वे स्थान-स्थान पर आकस्मिक घटनाओं को ले आते हैं। प्रथम अंक में अनंतदेवी के प्रकोष्ठ में प्रपंचबुद्धि सहसा प्रवेश करता है। अगले दृश्य में इसी प्रकार पुरगुप्त और भटार्क सहसा उपस्थित हो जाते हैं। अवंत के दुर्ग में स्कंदगुप्त सहसा प्रवेश करता है, मानो वह इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हो। श्मशान में प्रपंचबुद्धि से देवसेना की रक्षा के लिए स्कंदगुप्त इसी प्रकार निकल पड़ता है। चमत्कार-प्रियता का सबसे बड़ा उदाहरण उस समय मिलता है जब कि विजया के शव के लिए भूमि खोदते हुए भटार्क को रत्नगृह मिल जाता है।

निष्कर्ष

कतिपय दोषों को छोड़कर स्कंदगुप्त नाटक पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों ही दृष्टियों से सफल है। इतना आवश्यक है कि 'स्कंदगुप्त' में अभिनेयत्व के स्थान पर कवित्व अधिक है।

स्कंदगुप्त प्रस्तुत नाटक का नपायक और प्रमुख चरित्र है। उससे प्राप्त कुछ चांदी के सिक्के से ज्ञात होता है कि उसकी उपाधि विक्रमादित्य थी। उसने हूणों के रूप में आई हुई विपत्ति से ही

देश को निरापद नहीं बनाया अपितु, अपने महान् त्याग से ग्रह-कलह को भी शांत किया। प्रस्तुत नाटक में अन्य पात्रों के कथन से स्कंदगुप्त महान् व्यक्तित्व तथा महत्व स्पष्ट है-

गोविन्दगुप्त- *"आर्य चंद्रगुप्त की अनुपम प्रतिकृति गुप्त कुल-तिलक।" "गुप्तकाल के अभिमान का चिन्ह।"*

बंधुवर्मा- *"उदार, वीर-हृदय, देवोपम सौंदर्य इस आर्यवर्त का एकमात्र आशा-स्थल"...."आर्यावर्त का जीवन केवल स्कंदगुप्त के कल्याण से है।"*

मातृगुप्त- *"प्रवीर, उदार-हृदय स्कंदगुप्त"।*

रामा- *"रमाणियों का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धों का आश्रय और आर्यावर्त की छत्रछाया।"*

धातुसेन- *"आशा का केन्द्र ध्रुवतार"।*

भटार्क- *"वीर, उपयुक्त और परोपकारी सम्राट है।"*

'स्कंदगुप्त' नाटक का नायक स्कंदगुपत वीर, निर्भीक, स्वावलंबी-उदार, कर्तव्य-परायण, प्रेमी-हृदय, देश-प्रेमी, राष्ट्र का उद्धारक तथा त्यागी है। उसके चरित्र का विश्लेषण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है।

1. **प्रारंभ में विरक्ति मूलक भावना-** कथानक का प्रारंभ स्कंद के स्वगत कथन से होता है। यह उसके हृदय की उदासीनता को अभिव्यक्त करता है-

"अधिकार-सुख कितना मादक और सार-हीन है। अपने को नियामकम और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है।"

दार्शनिकता के आवरण में छिपी हुई उसकी उदासीनता सामाजिकों पर स्पष्ट होने लगती है। पर्णदत्त के कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि स्कंदगुप्त अपने अधिकारों तथा कर्तव्य पालन के प्रति उदासीन है। इस समय यह पर्णदत्त के उत्तेजित करने पर ही कर्तव्य पथ पर आता हुआ दिखाई पड़ता है। वह अपने उत्तरदायित्व को पर्णदत्त पर डालता हुआ कहता है-

"राष्ट्रनीति, दार्शनिकता तथा कल्पना का खेल नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठिन होती है। गुप्त साम्राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ उसका दायित्व भी बढ़ जाता है, पर उस बोझ को उठाने हेतु गुप्त कुल के शासक प्रस्तुत नहीं, क्योंकि साम्राज्य-लक्ष्मी को वे अब अनायास और अवश्य अपनी शरण में आने वाली वस्तु समझने लगे हैं।"

स्कंदगुप्त स्वयं भी कहता है- इस साम्राज्य का बोझ किसके लिए...केवल गुप्त सम्राट के वंशधर होने की दयनीय दशा ने मुझे इस रहस्यपूर्ण क्रियाकलाप में संलग्न रखा है।"

स्कंदगुप्त के चरित्र में उदासीनता उस समय चरमसीमा को पहुंच जाती है जबकि वह भटार्क के विश्वासघात के कारण हूणों से पराजित होता है और चाहता है-"बौद्धों का निर्माण, योगियों की समाधि और पागलों की सी संपूर्ण विस्मृति।" वह सब कुछ भूल कर अपने कर्तव्य से छुट्टी ले लेना चाहता है तथा चाहता है कि देवसेना के साथ जीवन व्यतीत करना-"एकांत में किसी कानून के कोने में तुम्हें देखता हुआ जीवन व्यतीत करूंगा।" यहां पर यदि देवसेना में देश के प्रति कर्तव्य की सजगता न होती, तो स्कंद का अवश्य ही पतन हो जाता।

प्रसादजी ने स्कंदगुप्त की इस उदासीनता में उनके महान् व्यक्तित्व में अनाशक्तिमय प्रत्यक्ष कर्मवाद की संयुक्त झांकी प्रस्तुत की है। वह निष्काम भाव से जीवन के कठोर कार्यक्षेत्र में अवतरित होता है। जल में कमल-पत्र की भांति निर्लिप्त भाव से वह जीवन के विभिन्न व्यापारों के संघर्ष

करते हुए आगे बढ़ता है। वह तितक्षा तथा विराग की अविरल धारा में संवरण करता हुआ आर्य-साम्राज्य के संगठन, रक्षा और उद्धार में साहस, धैर्य और पराक्रम से प्रवृत्त होता है।

2. **स्कंदगुप्त महत्वाकांक्षी नहीं है-** स्कंदगुप्त आसक्ति-हीन कर्तव्य-पालन के रूप में पुरुषार्थ और उद्योग करता हुआ दिखाई पड़ता है। उसकी दृष्टि में अधिकार सुख, मादक तथा सारहीन है, पर उसका यह विराग व्यक्तिगत और एकांतिक है। उसे युवराज होने का किंचित भी अहंकार नहीं है। वह तो अपने को साम्राज्य का सैनिक मात्र समझता है।

3. **स्कंद का चरित्र-आत्मविश्वास, क्षात्र तेज और सक्रियता से परिपूर्ण है-** दूत के मुख से मानव पर हूणों के आक्रमण की सूचना पाकर तथा बंधु वर्मा की सहायता मांगने का संदेश पाकर वह क्षात्र-धर्म और आत्म-विश्वास की उदात्त भावना से युक्त होकर कहता है-

"दूत ! सिर्फ संधि-नियम ही से हम लोग बाध्य नहीं है, किन्तु शरणागत की रक्षा ही क्षत्रिय का धर्म है। तुम विश्राम करो। अकेला स्कंदगुप्त मालव की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। जाओ निर्जव निद्रा का सुख लो। स्कंदगुप्त के जीते जी मालव का कुछ भी न बिगड़ सकेगा।"

4. **वीरता और साहस-** स्कंदगुप्त में वीर नायक के समस्त गुण विद्यमान हैं। वह स्वावलंबी और साहस से ही मालव की रक्षा करने को प्रस्तुत हो जाता है। वह भली-भांति जानता है कि राजधानी से अभी कोई सहायता नहीं मिलेगी। आसन्न विषद में वह अपने स्वावलंब, साहस और वीरता से ही खड़ा हो जाता है। इसके बाद वह तत्काल ही विद्युत वेग से अवंती दुर्ग में ठीक अवसर पर पहुंच कर निर्भीकता और पौरुष से शक और हूणों को पराजित करता है। परिस्थितियां और विरोध कुछ क्षणों को उसमें विराग की भावना अवश्य ही भर देते हैं, पर वह तत्काल ही संभल जाता है और अंत तक देश को निरापद बनाने की भावना लेकर हूणों को पराजित करता है। स्कंद की सी वीरता और साहसपूर्ण त्याग अन्यत्र खोजने पर भी नहीं मिलेगा। वह महान् कठिनाइयों से प्राप्त साम्राज्य को रण क्षेत्र में ही अपने विमाता-पुत्र पुरुगुप्त को सौंप देता है।

5. **शील और व्यवहार-कुशलता-** उदारता, परमार्थ की भावना, क्षमाशीलता और उदात्त वृत्तियां शील का अंक है। इतना सम्यक, प्रस्फुटन स्कंदगुप्त के चरित्र में मिलता है। प्रथम परिचय में ही वह परम विनीत तथा शालीन युवक के रूप में सामने आता है। पर्णदत्त के द्वारा अधिकार के प्रति उसकी उदासीनता का संकेत करने पर वह नम्रता से कहता है-"चिंता क्या ! आर्य ! अभी तो आप हैं। तब भी मैं ही सब विचारों का भार वहन करूं, अधिकार का उपयोग करूं"। पित्रव्य गोविन्दगुप्त को दीर्घकाल के पश्चात् देखकर अनुराग पूर्ण वाणी में कह उठता है-"तात ! कहां थे। इस बालक पर अकारण क्रोध कर कहां छिप गये ?"

स्कंद में क्षमाशीलता, त्याग-भावना तथा विशालता पग-पग पर मिलती है। बंधुवर्मा उसके संबंध में भीमवर्मा से कहता है-"नहीं भीम, युवराज स्कंद ऐसे क्षुद्र हृदय के नहीं, उन्होंने पुरगुप्त को इस जघन्य अपराध पर भी मगध का शासन बना दिया है। वह तो सिंहासन भी लेना नहीं चाहते।" इतना ही नहीं स्कंदगुप्त आततायी हूण सम्राट खिंगिल को भी क्षमा करता हुआ कहता है-"इस हूण को छोड़ दो, और कह दो कि सिन्धु के इस पार के पवित्र देश में कभी आने का साहस न करें।"

6. **नारी-सम्मान का रक्षक-** स्कंदगुप्त का हृदय नारी के प्रति सम्मान की भावना से भरा हुआ है। नारियों के सतीत्व की रक्षा करना वह अपना प्रमुख कर्तव्य समझता है। वह समझता है कि नारी का युद्ध क्षेत्र में जाना पुरुष की नपुंसकता तथा कायरता की घोषणा है। वह मालव के दुर्ग में जयमाला आदि को हूणों से रक्षा करने में संलग्न देखकर कहता है-"स्कंद के रहते स्त्रियों को शस्त्र नहीं चलाना पड़ेगा।"

7. **देश-प्रेम की भावना-** स्कंदगुप्त के हृदय में देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वह अपनी जन्मभूमि को स्वर्ग के समान मानता है। वह देश के लिए प्राणों का बलिदान करने को सदैव प्रस्तुत रहता है-"शस्त्र बल से शरीर देकर भी यदि हो सका तो जन्मभूमि का उद्धार करूंगा।" भटार्क आत्मघात करना चाहता है। स्कंद अपने शब्दों से उसमें देश-प्रेम की अदम्य भावना भरता हुआ कहता है-"तुम वीर हो, इस समय देश को वीरों की आवश्यकता है।...रणभूमि में प्राण देकर जननी-जन्मभूमि का उपकार करो। भटार्क ! अगर कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के ही नहीं-जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला ही युद्ध करूंगा।...आत्महत्या के लिए जो अस्त्र तुमने ग्रहण किया है, उसे शत्रु के लिए सुरक्षित रखो।"

8. **पृथ्वी का हितेषी-** स्कंदगुप्त के जीवन का उद्देश्य पृथ्वी को स्वर्ग बनाना है। मृदुलता तथा कठोरता के सामंजस्य में उसके जीवन का कर्म-सौंदर्य खिल पड़ा है, जिसकी ओर हृदय स्वयं ही आकर्षित हो जाता है। उसका विरोधी भटार्क तक उसके लिए कहता दिखाई पड़ता है-"ऐसा वीर, ऐसा उपयुक्त और परोपकारी सम्राट ! परंतु गया-मेरी भूल से सब गया।"

9. **स्वाभिमान की भावना-** स्कंदगुप्त केवल आदर्श का देवता-मात्र नहीं है, उसमें स्वाभिमान की भावना है। जीवन-व्यापी वैराग्य की भावना से आक्रांत होकर भी वह बंधुवर्मा को अपने सच्चे मित्र के रूप में पहचान लेता है। उसके अंत:करण में सर्वत्र ही विराग की भावना के साथ में स्वाभिमान मिलता है। वह विजया के रत्नागरों के प्रलोभन को ठुकरा देता है। यद्यपि वह इस समय असहाय अवस्था में है तथा उस धन-राशि से सैन्य-संगठित कर राज्य का उद्धार करने में भी समर्थ हो सकता है, पर उसका स्वाभिमान उसे ऐसा करने को रोकता है। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है-"साम्राज्य के लिए मैं अपने को बेच नहीं सकता।" वह अर्थ-लोभी हूणों को घूस देकर मालव और सौराष्ट्र को स्वतंत्र कराने की इच्छा नहीं करता। वह कहता है-"सुख के लोभ से मनुष्य के भय से मैं उत्कोच देकर क्रीत साम्राज्य नहीं चाहता।"-स्कंदगुप्त का यह कथन प्रकृत गर्व और आत्म-सम्मान के भाव से प्रकट हुआ है जो उसको यथार्थ की भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है।

10. **माता से अनन्य प्रेम-** स्कंदगुप्त सर्वत्र ही अपनी माता के प्रति प्रेम तथा भक्ति का परिचय देता है। ठीक अवसर पर पहुंचकर वह षड्यंत्री वर्ग से माता की रक्षा करता है। माता की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी दशा विक्षिप्त के समान हो जाती है। वह कनिष्क-स्तूप के पास उसकी समाधि पर जाकर रहने लगता है।

11. **प्रेमी हृदय स्कंदगुप्त-** स्कंदगुप्त का हृदय-प्रेम के कोमलतम भावों से भरा हुआ है। मालव की रक्षा के लिए आकर वह वहां के धनकुबेर की कन्या विजया की ओर आकृष्ट होता है। बंधुवर्मा की बहन देवसेना और विजय पारस्परिक स्पर्द्धा में पड़कर एक-दूसरे को नीचा दिखाना चाहती है। विजया इसी प्रसंग में भटार्क को वरण करने की घोषणा करती है। इससे स्कंदगुप्त के कोमल हृदय पर आघात होता है। उनका हृदय कुछ समय को अशांति और वेदना से भर जाता है। आगे चलकर वह देवसेना की ओर आकृष्ट होता है देवसेना तो प्रारंभ से ही उसको प्रेम करती थी, पर स्कंदगुप्त के विजया का स्वप्न देखने के कारण अपने पर कठोर संयम और नियंत्रण कर लेती है। बंधुवर्मा की मृत्यु और हूणों से पराजय मिलने पर स्कंदगुप्त केवल शांति की चाहना में देवसेना को लेकर सांसारिक संघर्षों से पृथक होकर एकांत-जीवन व्यतीत करना चाहता है। देवसेना अपने प्रियतम की अकर्मण्य बन जाने की आशंका से भयभीत होकर उसके प्रस्ताव को सविनय अस्वीकार कर देती है। स्कंदगुप्त निराश होकर आजीवन कुमार-वृत्त पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। यह विजया का प्रेम ही नहीं अपितु अतुल संपत्ति से पूर्ण उसके रत्नग्रहों को भी ठुकरा देता है।

स्कंदगुप्त का प्रणय-भाव संयम और गंभीर है, यह उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है।

निष्कर्ष

स्कंदगुप्त के उपर्युक्त चरित्र के विश्लेषण करने के उपरांत हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वह त्याग तथा कर्मयोग का समन्वित रूप है। उसमें उदासीनता की भावना है, किन्तु वह स्वयं के लिए। वह राज्य के हित के लिए अपने प्रयत्नों से प्राप्त राज्य का अधिकार रण-भूमि में ही पुरगुप्त को सौंप देता है। सामूहिक रूप से उसका हृदय देश-प्रेम, त्याग, वीरता, साहस, क्षमा, उदारता आदि की आदर्श भावनाओं से भरा हुआ है। वह अकेले ही मालव की रक्षा तथा हूणों से देश को निरापद करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। संक्षेप में उसका चरित्र आदर्श और यथार्थ का अनुपम समन्वित रूप है।

हिन्दी नाटक-साहित्य के इतिहास में प्रसाद का प्रमुख स्थान है। श्री जयशंकर प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एक उत्कृष्ट साहित्यकार थे। काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि साहित्य की विविध विधाओं में आपने अपनी लेखनी का अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया है। हिन्दी नाटक साहित्य को तो आपकी अमर देन है ही। हिन्दी नाटक साहित्य को भारतेन्दु काल की पुराणपंथी नाट्य शैली से बाहर निकालकर उसका साहित्य कायाकल्प करने वालों में प्रसादजी का प्रमुख स्थान है। उन्होंने अपनी नाट्य शैली में पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों शैलियों का कलात्मक समन्वय करके हिन्दी- नाटक लेखन को एक नवीन मोड़ दिया है। भारत के सांस्कृतिक अतीत की पृष्ठभूमि में युगीन समस्याओं का चित्रण आपके नाटकों की विशेषता है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों के द्वारा पाठकों को भारत के गौरवमय अतीत से परिचित कराया है तथा भारतीय जीवन का सारल्य, दर्शन का गाम्भीर्य और अध्यात्म "उन्मेष" जनता तक पहुँचाया। उन्होंने तत्कालीन नाट्य रचना विधान की अर्निर्दिष्टता को समाप्त कर उसे कलात्मक संगीत प्रदान किया। प्रसाद जी के नाटकीय विधान में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के दर्शन होते है। विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, आदि नाटक तो उन्होंने लिखे ही। करुणालय एक गीति नाट्य है, "कामना"रूपक है और उनके "एक घूँट में आधुनिक सांकेतिक या प्रतीकवाद की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। प्रसादजी के नाटक इस प्रकार हैं- स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु,चन्द्रगुप्त, धुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित और एक घूँट।"प्रसाद के नाटकों में उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, दार्शनिक चिन्तना, स्वाभाविक चरित्र कल्पना, राष्ट्रीयता के प्रति प्रयत्न आदि ऐसी बातें हैं जो कि उन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ नाटककार घोषित करती है और उनके नाटक को स्थायी साहित्य की वस्तु बनाती हैं।

प्रसादजी का अभ्यान्तर नाटककार तीन स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ है, वे प्रेरणायें हैं-

(1) **भारतेन्दुकाल का प्रभाव-** भारतेंदु से पूर्व नाटक रचना में विषय चयन की बड़ी संकीर्णता देखने को मिलती है। इस काल में रचना विधान की प्राचीन मान्यताओं के साथ नये प्रयोगों का भी सही स्वागत हुआ। इस स्वागत का प्रसादजी ने विश्लेषण किया और साथ ही बंगला से अनुदित नाटक शैली का पर्यायलोचन किया और रंगमंच पर दिखाई जाने वाली कुछ कृतियों का मनन किया। इनका सफल परिणाम प्रसाद के व्यक्तित्व में दिखाई देता है।

(2) **संस्कृति के प्राचीन नाटककारों और शास्त्र निर्माताओं का प्रभाव-** अध्ययनशील प्रसाद में सांस्कृतिक चेतना का अपूर्व प्रभाव है। उन्होंने नाट्यशास्त्र सम्बन्धी संस्कृत के ग्रन्थों के

अध्ययन के साथ ही संस्कृत के नाटकों का अध्ययन किया एवं उसके मर्यादा-निर्वाह को भी देखा। इसी के परिणामस्वरूप उनमें युग निर्माता का स्वरूप प्रतिष्ठित हो सका।

(3) **अपने युग की राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव-** भारत में विदेशी शासन सत्ता के विरोध में असंतोष की भावना तो भारतेंदु से पूर्व ही होने लगी थी। यह विरोधी भावना प्रच्छन्न रूप से तो सभी लेखकों और कवियों में दृष्टिगत होती है। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना तथा 1905 में बंग-भंग के रूप में उक्त विरोध सक्रिय रूप से सामने आया। इस प्रकार की स्रोतास्विनी प्रेरणा थी प्रसाद की पृष्ठभूमि में। इसी राष्ट्र-चेतना का प्रभाव पड़ा युगदृष्टा प्रसाद पर, भारतीय संस्कृति के प्रति उन्हें अगाध श्रद्धा थी तो साथ ही नवोदित राष्ट्र चेतना के प्रति उन्हें दृढ़ विश्वास भी था।

प्रसाद की नाट्य-कला

उपरिनिर्दिष्ट तीनों प्रभावों का प्रसाद की नाट्य - कला पर अमिट प्रभाव पड़ा। भारतेंदु काल की प्रतिक्रिया प्रसाद में यह हुई कि उन्होंने विषय-चयन की संकीर्णताओं से बाहर निकलकर सुन्दर अतीत को असीमता में देखा। उन्होंने भारत के अतीत को नवीन एवं आकर्षक परिणाम से आवृत करके उसे भव्य एवं सांस्कृतिक गरिमा से युक्त स्वरूप प्रदान किया। नाटकों के संविधान में भी प्रसाद शास्त्रीय एवं स्वाभाविक रसात्मकता लाए हैं। काव्य सृजन के क्षेत्र में देशी विदेशी अनेक साहित्यिक गतिविधियों का समन्वित प्रभाव प्रसाद में देखा जाता है, पर प्रभाव की स्वस्थ्यता यह है कि उनके नाटकों में क्रिया वेग, जटिल वस्तु विन्यास, व्यक्ति विलक्षणता से पुष्ट पात्रों की सृष्टि व संवादों का परिष्कार है। साथ ही कुछ अस्वस्थताएँ भी उनके नाट्य साहित्य में प्रविष्ट हो गयीं, यथा-आत्महत्याओं की बाढ़, लम्बे-लम्बे स्वागत कथन। दूसरा प्रभाव उनकी नाट्यकला पर पड़ा संस्कृत साहित्य के अनुशीलन का, जिसने उनमें पदावली प्रयोग का परिष्कार, उक्ति भंगिमा और अलंकारिकता भर दी। उनके नाटकों में काव्यत्व की अधिकता का मुख्य कारण यही है कि वह उनके व्यक्तित्व को अन्यों से पृथक करने वाला सिद्ध हुआ है। संस्कृत नाटकों की काव्य पद्धति की आधिकारिक भित्ति जिसमें वे अमृत के सरोवर में स्वर्ण कमल का खिलना बताते हैं, और कराते हैं, अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्र-मालिनी निशा में विहार, असंस्कृत लोगों को दुरूहता के कारण दोष दिखाई देता है। प्रसाद में "युग धर्म" के रूप में तीसरा प्रभाव प्रस्फुटित हुआ। उनके सभी नाटकों में अपने युग की आकांक्षाओं का प्रस्फुटन और प्रेयश्रेय दोनों का सम्मिलन है। कहा जा सकता है कि उनके नाटकों का भवन-निर्माण समसामयिक समस्याओं की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है।

इस प्रकार पूर्व पीठिका का विवेचन करने पर हम देखते हैं कि प्रसाद की नाट्यकला की विशेषताएं ये हैं-

(1) नाटकों की सीमाएँ यद्यपि इतिहास से ली हैं फिर भी वे इनमें बंधे नहीं रह सके है। ऐतिहासिक सीमाओं की कड़ियों को मिलाने के लिये उन्होंने स्वतंत्र अनैतिहासिक घटनाओं और पात्रों की सृष्टि की है। भटार्क और अनंतदेवी का सम्बन्ध स्थापन, तक्षशिला के गुरूकुल में चन्द्रगुप्त और चाणक्य का सानिध्य, कल्याणी के द्वारा पर्वतेश्वर का वध और स्वयं की आत्महत्या, कार्नेलिया का नामकरण आदि ऐसी घटनाएं है जिनका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। साथ ही देवसेना, विजया, जयमाला, मंदाकिनी, सिंहरण आदि पात्र ऐसे ही हैं।

(2) अपने नाटकों में प्रसादजी सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रबल समर्थक रहे हैं। उनके नाटकीय सांस्कृतिक चरित्रों में वर्तमान और भविष्य के लिये पर्याप्त जीवन दायक प्रेरणा है। भारतीय संस्कृति का विभिन्न संस्कृतियों के साथ संघर्ष एवं वैषम्य दिखाते हुए भी भारतीय संस्कृति की धारा अबाध गति से प्रवाहित दिखाई है, पर कहीं भी संस्कृति के प्रति अन्ध श्रद्धा का समावेश नहीं होने दिया है।

(3) शैलीवैशिष्टय उनकी नाट्यकला की प्रधान विशेषता है। उन्होंने एक ओर प्राचीन और नवीन शैलियों का समन्वय किया तो दूसरी ओर पाश्चात्य और पौर्वात्य शैलियों का। उनके नाटकों में अतीत की झांकी के साथ अतीत की गरिमामयी शैली का प्रयोग दिखाई देता है तो नवीन के जागरण के साथ नूतनता का सफल प्रवेश भी। एक ओर उन्होंने नान्दी पाठ, भरत-वाक्य सूत्रधार की परम्परा का त्याग कर नयी शैली को अपनाया है तो दूसरी ओर गीत योजना, पात्रों का आधिक्य, स्वगत कथन आदि द्वारा प्राचीन शैली को बनाये रखा है और तो और उनके कुछ नाटकों में विदूषकों तक की योजना है।

(4) चरित्र चित्रण के क्षेत्र में प्रसादजी ने अपनी अनुपम कलात्मकता का परिचय दिया है। चरित्र चित्रण के वैशिष्ट्य से ही उन्होंने रस प्रधान नाट्य धारा को चरित्र प्रधानता की ओर मोड़ा है। पुनश्च प्रधानता रस की ही रही है। उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में पर्याप्त मानवीयता का परिचय दिया है। पात्रों को गढ़कर तैयार करने की अपेक्षा उन्हें परिस्थितियों के बीच डालकर तथा उन्हें यथा सम्भव विकसित दिखाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि यह बात दूसरी है कि वे सर्वत्र ही अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक विकास नहीं दिखा पाये हैं, किंतु उन्होंने अर्न्तद्वन्द्वों और परिस्थितियों के मध्य में पात्रों को रखकर उनका क्रमिक चरित्र विकास दिखाने का प्रयास किया है।

(5) यद्यपि प्रसादजी ने सामयिक परिस्थितियों को प्रत्यक्ष स्थान नहीं दिया, किन्तु अपने नाटकों में राष्ट्रप्रेम को बहुत सुंदर ढंग से उभारा है। उनके नाटकों में हिन्दू सम्राट किसी जातीय संकीर्णता से बन्धे नहीं दिखाई देते, अपितु राष्ट्रकल्याण की कामना से आकुल दिखाई देते हैं। डॉ. दशरथ ओझा ने लिखा है- "नाटककार ने मुस्लिम युग की सामग्री को विद्वेषक सूचना मानकर त्याग दिया था और यह बात उनकी राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट करती है।"

(6) यद्यपि "प्रसाद" की भाषा उनके नाटकों पर बड़े-बड़े आक्षेपों का आधार रही है किन्तु उसमें जो मार्मिक माधुर्य कोमलता और आवश्यकता का जो स्रोत प्रभावित है, उसने हिन्दी साहित्य जगत के एक बड़े समुदाय को आकर्षित किया है। भाषा की ओजस्विता और सुमधुर प्रांजलता ने "साहित्य प्रेमियों" पर कुछ ऐसा जादू सा कर दिया कि सैकड़ों नाटकों की भाषा के मध्य "प्रसाद" की भाषा को पहचान लेना उन्हें कठिन नहीं लगता है। सुगठित शब्दावली, अवसरानुकूल ओज और माधुर्यपूर्ण प्रवाह, सुतार्किक स्थापना और मर्मस्पर्शी भाव भंगिमा प्रसाद के कथोपकथन को चित्त पर इस प्रकार उतार देती है कि उनकी एक अनुगूंज सी छा जाती है और वे भुलाए नहीं भूल पाते।

(7) अवसरानुकूल गीतों की योजना प्रसाद की नाट्यकला की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रसाद मूलतः कवि हृदय थे। गद्य भाषा की काव्यात्मकता से सन्तोष न करने वाले हृदय ने स्थान-स्थान पर गीतों की योजना की और वे उत्कृष्ट श्रेणी के गीत बन पड़े। अजातशत्रु में पद्मावती का 'छेड़ मन हृदय बीन के तार', स्कन्दगुप्त में देवसेना का 'आह। वेदना मिली बिदाई', चन्द्रगुप्त में 'सुधा सीकर में नहला दो'आदि अनेक गीत अत्यन्त माधुर्यपूर्ण व हृदयस्पर्शी हैं।

(8) वातावरण और प्राकृतिक सूक्ष्म चित्रों को रंग देने में प्रसाद बेजोड़ हैं। 'प्रसाद'के नाटक एक युग विशेष को प्रस्तुत करते हैं और ऐतिहासिक नाटकों का यह एक प्रकार से अनिवार्य गुण माना जाता है कि उनमें वर्णित युग का अध्ययन रखा जाए। इतिहास विरोधी और काल विरोधी तत्वकृतियों को अस्वाभाविक और व्यर्थ बना सकते हैं। प्रसाद के नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें तत्कालीन वातावरण को सजीव उभार दिया गया है। पाठक और दर्शक नाटकों के दृश्य खुलते ही अपने आपकों मौर्य काल या गुप्त काल में पाते हैं। भाषा की सुष्ठु पदावली और शैली की गम्भीरता ने ऐसे वातावरण के निर्माण में पूर्ण योग दिया है।

(9) पाश्चात्य पण्डितों ने नाटक में संघर्ष को बहुत ही महत्व दिया है। यह संघर्ष बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का हो सकता है, बल्कि होता है। वस्तुतः नाटक की गत्यात्मकता का

मापदण्ड यह संघर्ष ही है। शेक्सपीयर के नाटकों में संघर्षों की इसी पीठिका ने उन्हें बहुत ऊंचा उठा दिया है। प्रसाद के नाटकों की भी यह विशेषता है कि उनमें दोनों प्रकार के संघर्षों की मुखरता दिखाई देती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद की नाट्यकला एक उच्चकोटि की नाट्यकला है और प्रसाद हैं मूर्धन्य नाटककार। इनके नाटक नेक विशिष्ट गुणों से पूरित हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण हिन्दी नाट्य साहित्य में वे अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। इनके नाटकों में वह सब है जो उन्हें एक श्रेष्ठ नाटककार के पद पर आसीन कराने के लिए चाहिए। इनके नाटक, वस्तुतः हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। प्रसाद के नाटकों का प्रभाव प्रसादोत्तर सभी नाटकों पर भरपूर है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के आधार पर प्रसाद की राष्ट्रीय भावना का विवेचन यह है-

(1) **प्रसाद का दृष्टिकोण** - साहित्य मानवी-सृष्टि है। अतः वह सोद्धेश्य और मनुष्यता के प्रति उत्तरदायी है। प्रसाद ने प्राचीन भारतीय इतिहास को लेकर अपने नाट्य-साहित्य की रचना की, इसमें उनका एक निश्चित लक्ष्य और सुस्पष्ट दृष्टिकोण था। वर्तमान से पलायन या अतीत के प्रति रोमांस के कारण इतिहास को नहीं अपनाया, बल्कि उन्होंने स्पष्ट कहा है 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।...क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने में हमारी जलवायु के अनुरूप जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर उपयुक्त कोई आदर्श हमारे अनुकूल होगा या नहीं, इसमें मुझे संदेह है।'

उनके उपर्युक्त कथन से निष्कर्ष निकलता है कि प्रसाद अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा निम्नलिखित उद्धेश्यों को पूरा करना चाहते थे- (1) अतीत के महत्वपूर्ण प्रसंगों के साथ महान व्यक्तियों एवं भव्य वातावरण को प्रस्तुत करना। (2) इस बात को स्पष्ट करना कि अतीत का वर्तमान में क्या हाथ है, और (3) अतीत से अनुभव और प्रेरणा लेकर वर्तमान तथा भविष्य के लिए आदर्श संगठित करना।

(2) **अतीत का गौरव-** आत्म गौरव, आत्म निषेध और विश्व-प्रेम भारतीय संस्कृति के मूल-तत्व हैं। प्रसाद के नाटकों का निर्माण इसी त्रिवेणी तीर पर हुआ है। भारत की प्राचीन संस्कृति के गौरव की स्थापना के प्रति वे सदा जागरूक रहे हैं। 'स्कंदगुप्त नाटक के सभी पात्र भारतीय स्वाभिमान और गर्व-गौरव का परिचय देते हैं।"भारत समग्र विश्व का है, सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश में आबद्ध है। अनादिकाल से ज्ञान की, मानवता की ज्योति वह विकीर्ण कर रहा है। भारत के कल्याण के लिये मेरा सर्वस्व समर्पित है।'तथा 'आर्यसैनिक। तुम्हारे शस्त्र ने बर्बर हूणों को बता दिया है कि रण-विद्या केवल नृशंसता नहीं है।'...इत्यादि कथन भारत के अतीत गौरव का परिचय देते हैं। त्याग,दान,क्षमा,शौर्य और स्वाभिमान आदि के भाव भारतीय गौरव के कारण रहे हैं।

(3) **अतीत का अनुभव-**'स्कंदगुप्त'नाटक में राष्ट्र की मंगल-कामना के साथ एक संदेश यह निहित है कि हम उन भूलों को बार-बार न दुहरायें जो हमारे पतन और सुदीर्घ पराधीनता का कारण बनी हैं। नाटक में स्पष्ट किया गया है कि विदेशी आक्रांताओं के समक्ष भारत के गौरव की पताका किसी भी समय गिर सकती थी। एक ओर धन-लोलुप हूण और शक भारत भूमि को पदाक्रांत और जनता को पीड़ित कर रहे थे। दूसरी ओर अनन्तदेवी और भटार्क जैसे लोग उनके साथ मिलकर देश की पराजय का मार्ग बना रहे थे। सम्राट कुमार गुप्त कादम्ब और कामिनी के नशे में सराबोर

था। आसन्न संकट की चिन्ता से दूर। देश पर प्रलय की मेघमाला घिर रही थी। ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष ने स्थिति को और भयंकर बना दिया था। यह तो स्कंद, पर्णदत्त, चक्र बंधुवर्मा और देवसेना आदि ने स्थिति को संभाला, अन्यथा परिणाम कुछ और ही होता। इस प्रकार की घटनाएं भारतीय इतिहास में दुहराई जाती रही हैं और नाटककार उनके अनुभव ग्रहण करने का संदेश देना चाहता है।

(4) **अतीत में वर्तमान-** 'स्कंदगुप्त'में न केवल अतीत का चित्रण है, बल्कि इतिहास के माध्यम से लेखक ने वर्तमान को प्रस्तुत करके उसकी समस्याओं का समाधान भी खोजा है। राष्ट्र-स्वांतत्र्य की भावना स्कंद के चरित्र में साकार हो उठी है। आर्य साम्राज्य के नाश से वह व्यथित और अधीर है। वह अपने सुख और आनन्द के लिए चिंतित न होकर नीति और सदाचार की रक्षा के लिए आर्य-साम्राज्य की रक्षा करना चाहता है- "आर्य साम्राज्य का नाश इन्हीं आँखों से देखना था। हृदय कांप उठता है, देशाभिमान गरजने लगता है। मेरा स्वत्व न हो, मुझे अधिकार की आवश्यकता नहीं। यह नीति और सदाचार का महान् आश्रय वृक्षगुप्त साम्राज्य हरा-भरा रहे और कोई इसका उपयुक्त रक्षक हो।"

प्रसाद ने जहाँ अधिकारों के प्रति जागरूक होने की प्रेरणा दी, वहां उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि रोने या भीख मांगने से अधिकार नहीं मिलता। जिसके हाथों में बल नहीं उसका अधिकार ही कैसा? और यदि भीख मांगकर मिल भी जाय, तो शांति की रक्षा कौन करेगा? स्वातंत्र्य यज्ञ में बड़ी से बड़ी आहुति डालने को सदा उद्यत रहना चाहिये। इस बात को प्रसाद ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- '....एक नहीं ऐसे सहस्त्र स्कन्दगुप्त, ऐसे सहस्त्रों देव तुल्य उदार युवक इस जन्मभूमि पर उत्सर्ग हो जाएं..।'

राजनीति को धर्म के प्रभाव से मुक्त रखना आज के युग की मांग रही है। इस बात को प्रख्यात कीर्ति के शब्दों में लेखक ने इस प्रकार कहलाया है..बौद्ध धर्माचरण करेंगे, राजनीति में भाग न लेंगे। "अन्न पर स्वत्व है भूखों का और दान पर स्वत्व है देश वासियों का।...वह थाती है..विलास के लिये उनके पास पुष्कल धन है, और दरिद्रों के लिये नहीं ?"तथा "विश्व प्रेम, सर्वभूत हित कामना परम धर्म है।" आदि कथन प्रसाद पर मार्क्स अथवा थियोसाफिकल सोसायटी आदि के प्रभाव को तो व्यक्त नहीं करते, परंतु युग चेतना को अवश्य व्यक्त करते हैं जिसे प्रसाद ने अपने अध्ययन, अनुभव तथा चिन्तन से पहचाना था।

(5) **अखण्ड राष्ट्रीयता का संदेश-** 'स्कंदगुप्त'में अखण्ड राष्ट्रीयता का भी दिव्य सन्देश है। बन्धुवर्मा द्वारा स्कंद को मालव राज्य का समर्पण इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। इस दिशा में झिझक प्रकट करने वाली जयमाला से अनुरोध करते हूए भीम वर्मा ने कहा है- "....समस्त देश के कल्याण के लिये, एक कुटुम्ब ही नहीं, उसके क्षुद्र स्वार्थों की बलि होने दो भाभी।..हमारा आर्यावर्त विपन्न है, यदि हम मर मिटकर भी इसकी कुछ सेवा कर सके... और अंततोगत्वा स्वयं जयमाला ने सिंहासन त्याग करके स्कंद से उसे ग्रहण करवाया। निःसंदेह एक राष्ट्र के लिये "इनका स्वार्थ त्याग दधीचि से कम नहीं.."विश्व का सबसे ऊंचा श्रृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है।" इसी अखण्ड भारत का प्यार नाटक के प्रत्येक पात्र के मन में समाया है। जयमाला इसी भारत के लिये अपना राज्य त्याग कर संतुष्ट है। वह कहती है...."आज हमने जो राज्य पाया है, वह विश्व साम्राज्य से भी ऊंचा है..महान है..।"

'स्कंदगुप्त' के प्रमुख पात्रों का चरित्रांकन भी इस अखण्ड राष्ट्रीय भावना के आधार पर ही हुआ है। स्कंद,पर्णदत्त, बंधुवर्मा, चक्रपालित और देवसेना के चरित्र इसके प्रमाण हैं। ये चरित्र अपने आप में राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं। प्रसाद की राष्ट्र भावना आग्रह विहीन है। उसमें न अनुकरण की प्रवृत्ति है न आबद्धता की। मुक्त हृदय से नाटककार ने देवसेना और पर्णदत्त जैसे चरित्रों का निर्माण किया है, जो प्रत्येक अवस्था में अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं। युद्ध के समय वे अपने शौर्य

का चमत्कार दिखाते हैं और संकट के समय भीख माँग कर, अपमान सहकर भी देश-सेवा के पावन कार्य में लगे रहते हैं।

राष्ट्रीयता के क्षेत्र में प्रसाद ने क्षमा और उदारता को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रसाद द्वारा स्थापित राष्ट्रीयता साधारण प्रचलित अर्थ से अधिक व्यापक और प्रशस्त है। शत्रु पर अस्त्र द्वारा विजय प्राप्त कर लेने मात्र से राष्ट्रीय आदर्श की रक्षा नहीं होती। सबके अधिकारों की रक्षा का भाव राष्ट्रीय आदर्श की सीमा के अंदर है। इसीलिये स्कंद केवल भटार्क,शर्वनाग और पुरगुप्त आदि को क्षमा करके उन्हें भी अधिकार प्रदान नहीं करता, बल्कि हूण सेनापति को भी इस आदेश के साथ छोड़ देता है कि वह "सिंधु के पार के पवित्र देश में कभी आने का साहस न करे।"

इस सारे विवेचन के प्रकाश में कहा जा सकता है कि 'स्कंदगुप्त में प्रसाद का राष्ट्रीय आदर्श और राष्ट्र यज्ञ में सब कुछ होम कर देने का भाव पूर्ण वैभव के साथ चित्रित हुआ है।'और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार 'उनके पात्र मृत अतीत के दिग्दर्शक नहीं हैं, वर्तमान के लिये भी वे संदेश लाये हैं।'

अभिनेयता (रंगमंच) की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त'नाटक की विवेचना इस प्रकार है-

(1) **नाटक और रंगमंच-** नाटक दृश्य काव्य है। उसकी दृश्यमानता ही उसे साहित्य की दूसरी विधाओं से अलग करके विशिष्टता प्रदान करती है। नाटक कल्पना की नहीं, बल्कि रंगमंच की वस्तु है। अत: उसे अभिनेय होना ही चाहिए। प्राचीन नाट्य-शास्त्र में बहुत से नियमों का विधान रंगमंच की सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही हुआ था। यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि अभिनेयता के बिना किसी श्रेष्ठ नाटक की रचना नहीं हो सकती तो प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं प्रसाद ने लिखा है..."रंगमंच की बाह्य बाधकता का जब हम विचार करते हैं तो उसके इतिहास से यह प्रकट होता है कि काव्यानुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिये काव्य बाधित नहीं हुए। अर्थात् रंगमच को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा तथा प्रत्येक काल में माना जायेगा कि काव्यों अथवा नाटकों के लिये ही रंगमंच होते हैं।"

(2) **अपने नाटकों के विषय में-** स्पष्ट है कि प्रसाद ने अपने नाटक वर्तमान रंगमंच की सुविधाओं को ध्यान में रखकर नहीं लिखे, बल्कि आज के वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से नाटकों के योग्य रंगमंच के निर्माण पर बल दिया है। ऐसी स्थिति में उनके 'स्कंदगुप्त'आदि नाटक सुरुचि सम्मान प्रेक्षकों के सामने मंच पर प्रस्तुत किये जा सकते हैं और किये भी गये हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों के अभिनय के सम्बन्ध में कहा है..."मेरी रचनायें तुलसीदास शैदा और आगाहश्र की व्यावसायिक रचनाओं के साथ नहीं नापी तोली जानी चाहिए। मैंने उन नाटक कम्पनियों के लिए नाटक नहीं लिखे। चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर, कुछ पैसा जुटा कर, चार पर्दे मांग लेती हैं और दुअन्नी अठन्नी के टिकट पर इक्के वाले, खोंचे वाले और दुकानदारों को बटोर कर जगह-जगह प्रहसन करती फिरती हैं। 'उत्तर रामचरित' 'शकुन्तला'और 'मुद्रा राक्षस' नाटक न कभी ऐसे अभिनीत हो सकते हैं और न जन साधारण में रसोद्रेक के कारण बन सकते हैं। उनकी काव्य प्रधान शैली कुछ चाहती है। यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचि-सम्पन्न सामाजिक हों, पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाये तो नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।"

(3) **विस्तृत कथानक-** प्रसाद के उर्पयुक्त दृष्टिकोण को जान लेने के बाद उन आरोपों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, जो उनके नाटकों की अभिनय सम्बन्धी दुर्बलता पर लगाये जाते हैं। फिर भी उनको जान लेना आवश्यक है। उनके नाटकों पर सबसे पहला आक्षेप किया जाता है कि वे घटना बहुल और दीर्घकाय हैं। 'स्कन्दगुप्त' में पांच अंक और बत्तीस दृश्य हैं जिनमें काफी समय की घटनाओं को ही मंच पर एक ही समय में देखकर दर्शक न तो स्मरण कर सकता है और अभिनेताओं को भी असुविधा होगी। इस नाटक के अभिनय में समय भी बहुत लगेगा।

(4) **कठिन दृश्य-योजना-** अभिनय की दृष्टि से नाटकों की दृश्य-योजना बड़ा महत्व रखती है। 'स्कन्दगुप्त में वर्जित और कठिन दृश्यों की भरमार है। भयानक युद्ध, नदी, बांध सेना, सेनाओं का परिचालन, दुर्ग द्वार और बांध का टूटना तथा जलप्रवाह में सैनिकों का बहना आदि ऐसे दृश्य हैं, जिन्हें आधुनिक और अत्यन्त विकसित रंगमंच पर भी दिखा पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। सबसे बड़ी बाधा एक के बाद दूसरे बेमेल दृश्यों की योजना है। उदाहरण के लिये एक दृश्य सैनिक स्कन्धाकार का है तो दूसरा राजमहल में परिषद का, एक राजकीय उपवन का दृश्य है तो दूसरा रणक्षेत्र का। दृश्यों में इस प्रकार की विषमता सारे नाटक में है और आजकल 'सैट'बनाकर इस प्रकार के नाटक को प्रस्तुत कर पाना बड़ा कठिन है।'

(5) **पात्र संख्या-** 'स्कन्दगुप्त'में पात्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। बत्तीस पात्रों की सूची तो नाटककार ने पात्र-परिचय में ही प्रस्तुत कर दी है। इनके अतिरिक्त भी चर,दूत, सैनिक और दास-दासियों को मिलाकर पात्रों के एक बहुत बड़े दल की आवश्यकता नाटक के लिये होगी। यह संख्या निश्चित रूप से नाटक की अभिनेयता में बाधा डालती है। इतनी भीड़-भाड़ में रंगमंच पर अव्यवस्था और पात्र प्रवेश आदि में तो असुविधा होगी ही, दर्शक द्वारा पात्रों को पहचान कर याद रखना भी कठिन होगा।

(6) **लम्बे और दुरूह कथोपकथन-** 'स्कन्दगुप्त'के संवाद बड़े होने से भी नाटक के अभिनय में बाधा पड़ती है। यह बाधा दो प्रकार से आती है, एक तो अभिनेताओं को याद रखने में असुविधा होती है, दूसरे दर्शक ऊबने लगता है। लम्बे संवादों को याद करने वाले अभिनेता का ध्यान संवादों की शब्दावली में ही लगा रहता है, वह मुक्त भाव से अभिनय नहीं कर पाता, उस दिशा में अधिक ध्यान नहीं दे पाता। नाटकों में लम्बे-लम्बे स्वगत कथन हैं। ये बड़े अस्वाभाविक लगते हैं। रंगमंच पर अकेला पात्र खड़ा होकर हवा से बातें करे यह अच्छा नहीं लगता। इसके अतिरिक्त दार्शनिक विवेचन और काव्यमयता भी 'स्कन्दगुप्त के अभिनय में बाधक हैं।'इसमें भावों का संवेदन कम हो जाता है और सामाजिक रसास्वादन में असमर्थ रह जाते हैं। संवादों में सजीवता नहीं रहती। नाटकीय क्रिया-व्यापार में बाधा पड़ती है।

(7) **संकलनत्रय का अभाव-** 'स्कन्दगुप्त' में संकलन - त्रय का पालन भी नहीं हुआ। घटनाओं के बीच समय का अन्तर तो है ही, नाटक काल-क्रम दोष से भी सर्वथा मुक्त नहीं है। उदाहरण के लिये कुमारगुप्त के समय में हूणों के आक्रमण की बात ही लीं जा सकती है जो सर्वथा अनैतिहासिक है। भारत में सुरापान की प्रथा को अत्यन्त प्राचीन मानकर भी यह कहना पड़ेगा कि नाटक में 'प्याला और सुराही' प्रयोगों के अतिरिक्त विजया द्वारा पुरगुप्त को प्याले भर-भरकर देने आदि के दृश्य "साकी और जाम"का-सा प्रभाव उत्पन्न करते हैं तथा नाटक के वातावरण को क्षति पहुंचाते हैं। विजया मातृगुप्त के साथ उद्‌बोधन गीत गाती हुई सैन्य-संग्रह करती है यहां वह आधुनिक स्वतंत्रता संग्राम की नारी की प्रतिच्छाया-सी लगती है। नाटक का घटना-स्थल भी बिखरा हुआ है। वह अयोध्या और पाटलिपुत्र से लेकर गान्धार और सिन्धु तक तथा काश्मीर से लेकर मालव तक फैला हुआ है।

(8) **गीतों की अधिकता-** गीतों की अधिकता भी नाटक के अभिनय में एक बड़ी बाधा है। नाटक में स्कन्द, देवसेना, मातृगुप्त और विजया के अतिरिक्त, सखियाँ, नर्तकियाँ इतना गाती हैं कि

संगीत भी अप्रिय हो जाता है। स्वयं नाटककार के शब्दों में देवसेना को तो 'गाने का रोग' ही है। नाटक में सोलह गीत हैं। यदि एक गीत में छः मिनट भी लगे तो लगभग पौने दो घण्टे का समय गीतों में ही निकल जायेगा जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सारे नाटक के अभिनय में कितना समय लगेगा।

(9) **अभिनय संभव -** इन बाधाओं के रहते भी 'स्कन्दगुप्त' में अभिनय की विशिष्टताएँ विद्यमान हैं। इस नाटक का क्रिया-व्यापार वेगमय है। सामाजिक और वैयक्तिक संघर्ष अलग-अलग नहीं चलते। नाटक का आरम्भ आकर्षक और अन्त प्रभावशाली है। इस नाटक का अमिट प्रभाव दर्शक पर पड़ता है। कथा में जो संघर्ष है, वह भी दर्शक की उत्सुकता को बनाये रखता है। वीर और श्रृंगार रस इस नाटक में जिस प्रकार साथ मिलकर चले हैं, वह अद्‌भुत है। थोड़े से परिवर्तन और कुशल निदर्शन से इस नाटक का अभिनय सर्वथा सम्भव है।

स्कन्दगुप्त ऐतिहासिक नाटक है

प्रसादजी के प्रायः समस्त नाटक ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित हैं। उनके नाटकों में भारतीय स्वर्णयुग साकार हो उठा है। बिम्बसार से लेकर हर्ष तक का समय भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक का कथानक गुप्त-काल के अन्तिम युग से सम्बन्धित है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के पौत्र कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने 455 ई. से 467 ई. तक शासन किया। यह समय भारत के इतिहास में अशान्ति का युग था। देश पर बर्बर हूणों के आक्रमण हो रहे थे। स्कन्दगुप्त का समस्त जीवन हूणों को पराजित करने में व्यतीत हुआ। हूणों से युद्ध करने के साथ-साथ स्कन्दगुप्त को पारिवारिक षडयंत्र ओर विरोध का भी सामना करना पड़ा। प्रसादजी ने प्रस्तुत नाटक के कथानक की सृष्टि अपनी कल्पना से इसके बिखरे हुए घटनाचक्र को एक सूत्र में पिरोकर की है। स्कन्दगुप्त नाटक की घटनाएं और पात्र प्रायः ऐतिहासिक ही हैं। अनुमान और कल्पना पर आधारित बहुत कम पात्रों और घटनाओं को स्थान दिया गया है। जहाँ भी ऐसा हुआ है, वहा पर कथानक की श्रंखला जोड़ने के लिए ही हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में कल्पना और इतिहास का मणिकांचन संयोग है। स्कन्दगुप्त के ऐतिहासिक कथानक की घटनाओं के साथ-साथ उनकी कल्पना का पुरुष सदैव सचेष्ट रहता है, जो विषमता में समता लाने का उद्योग करता रहता है। वह कथानक को एक सूत्र में बाँधने के लिए तथा नाटकीय पूर्णता के लिए अनैतिहासिक पात्रों और घटनाओं की सृष्टि करता है। पं.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है- "कल्पना का प्रयोग दो प्रकार से दिखाई पड़ता है। पहले तो इतिहास की जो-जो बातें विकीर्ण होकर एक-दूसरे से दूर पड़ गई हैं उन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिए और दूसरा नाटकीय पूर्णता के निमित्त कोरे अनैतिहासिक पात्रों की सृष्टि के लिए।....स्कंदगुप्त में भटार्क का योग अनंतदेवी के साथ स्थापित करके विरोध मण्डली बलिष्ठ बना दी गई है। स्कंदगुप्त के मालव में राजधानी स्थापित करने की बात इतिहास से सिद्ध न होने पर भी जो स्वीकृति की गई है, वह वस्तु-स्थिति को देखते हुए तर्क-विहीन नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार भीमवर्मा के सम्बन्ध की स्थापना भी है। भीमवर्मा बन्धुवर्मा का भाई था या नहीं इस विषय में कोई प्रमाण नहीं, फिर भी वह स्कंदगुप्त के एक प्रान्त का शासक अवश्य था। इसी को आधार मानकर प्रसादजी ने दोनों को मिला दिया है और जो बहुत असंगत नहीं मालूम पड़ता। खिंगिल इतिहास का हूण-नेता अवश्य है, परन्तु वही खिंगिल स्कंदगुप्त से पराजित भी हुआ था,

ऐसा इतिहास ने स्वीकार नहीं किया है। शर्वनाग, चक्रपालित और मातृगुप्त की नाटकीय स्थिति का अनुमोदन भी कल्पना के आधार पर ही आश्रित है।"

'स्कंदगुप्त नाटक इतिहास की कसौटी पर कहाँ तक खरा उतरा है'

इसका निश्चय करने के लिए निम्न तत्वों पर विचार करना आवश्यक है-

1. *कथानक के पात्रों में ऐतिहासिकता।*
2. *घटनाओं में ऐतिहासिकता।*
3. *तत्कालीन देश काल का चित्रण।*

इनका विवरण इस प्रकार है-

(1) **पात्रों में ऐतिहासिकता-** कुमारगुप्त दुर्बल और विलासी शासक था। कुमारगुप्त की वीरता और पराक्रम का कोई राजनैतिक प्रमाण नहीं मिलता, फिर भी वह यथासाध्य राज्य का नियंत्रण करता रहा। कुमारगुप्त के अन्तिम काल में ही राज्य पर हूणों के आक्रमण आरम्भ हो गये थे, उनके उपद्रवों से गुप्त साम्राज्य की दशा विचलित हो गई थी। 'स्कन्दगुप्त'नाटक में प्रसादजी ने कुमारगुप्त को एक विलासी व्यक्ति के रूप में ही चित्रित किया है, जिसका प्रमाण इतिहास में खोजने से मिल जाता है।

(2) **घटनाएं-** स्कन्दगुप्त नाटक की प्रमुख घटनायें स्कन्दगुप्त द्वारा पुष्यमित्रों की पराजय और हूणों का भारत से निकलना है। स्कन्दगुप्त को राज-परिवार के षडयंत्र को भी तोड़ना पड़ता है। गृह-कलह को शान्त करने के लिए ही स्कन्दगुप्त युद्ध-क्षेत्र में ही विमाता-पुत्र पुरूगुप्त को सम्राट बना देता है। नाटक का समस्त कथानक इन्हीं घटनाओं के ताने-बाने में बुना हुआ है, जो प्राय: सभी दृष्टि से ऐतिहासिक है। नाटकीयता की रक्षा तथा कथानक सूत्र से सम्बन्ध की स्थापना के लिए नाटककार ने घटनाओं की कल्पना भी की है, किंतु वे समस्त घटनाएं और पात्र इतिहाससम्मत ही प्रतीत होते हैं। देवसेना, विजया, कमला आदि काल्पनिक स्त्रियां हैं। देवसेना और विजया के स्कन्द से तथा विजया का भटार्क के प्रति प्रणयानुभूति आदि प्रसंग कल्पना पर ही आधारित हैं। इसी प्रकार प्रपंचबुद्धि और उसका षडयंत्र तथा विजया की आत्म-हत्या भी काल्पनिक हैं।

(3) **देश-काल-योजना-** ऐतिहासिक नाटकों में देश-काल योजना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सफल देश-काल के चित्रण के अभाव में ऐतिहासिक नाटक अपना महत्व खो देता है। स्कदंगुप्त नाटक इस दृष्टि से पूर्णरूप से सफल है। 'स्कन्दगुप्त'नाटक में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के स्पष्ट चित्र मिलते हैं। स्कन्दगुप्त के समय में राजनैतिक स्थिति अस्त-व्यस्त हो रही थी। हूणों ने उत्तरी-पश्चिमी भारत कुचल डाला था। शक राज्य चंचल हो रहा था। सौराष्ट्र भी पदाक्रांत हो चुका था। काश्मीर-मण्डल में हूणों का आतंक था। गुप्त युग के शासक साम्राज्य को गले पड़ी वस्तु समझने लगे थे। स्कन्दगुप्त इन समस्त विरोधी परिस्थितियों का सफलता से सामना करता है।

स्कन्दगुप्त के समय में सामाजिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। समाज में विलासिता का साम्राज्य था। राजधानी विलासिता का केंद्र बन रही थी।

राजनीति की तरह ही धार्मिक स्थिति भी द्वन्द्वात्मक हो रही थी। ब्राह्मण और बौद्ध एक-दूसरे के विरोधी बन रहे थे, धार्मिक भावनाएं धन के हाथ बिक चुकी थीं। कर्मकाण्ड का बोलबाला था। बौद्ध गुप्त शत्रु का काम कर रहे थे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक देश-काल की दृष्टि से सफल है। उसकी प्रमुख घटनाएं तथा समस्त प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं। कथा-संयोजन और नाटकीयता के लिए ही प्रसादजी ने काल्पनिक पात्रों और घटनाओं की सृष्टि की है, परन्तु उनकी कल्पना सर्वत्र ही इतिहास सम्मत रही है। इस प्रकार स्कन्दगुप्त में इतिहास और कल्पना का सफल समन्वय हो गया है। स्कन्दगुप्त, बंधुवर्मा,चक्रपालित, पर्णदत्त, शर्बनाग, भटार्क, पृथ्वीसेन, खिंगिल, प्रख्यात कीर्ति, भीमवर्मा, गोविन्दगुप्त आदि सभी पात्र पूर्णरूप से ऐतिहासिक हैं। देवकी स्कन्दगुप्त की माता अवश्य थी, परंतु उसका देवकी नाम अनुमान पर आधारित है, देवसेना जो जयमाला भी है, अनुमानित ही है। पुरुष पात्रों में प्रपंचबुद्धि और मुद्गल भी काल्पनिक पात्र हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्र और घटनाएं मूलत: ऐतिहासिक और इतिहास-सम्मत हैं। कथावस्तु को रोचकता प्रदान करने के लिए प्रसादजी ने प्रेम-कहानियों का समावेश किया है। कथावस्तु को सुसंगठित करने के लिए प्रसादजी ने अन्य कल्पित बातें भा जोड़ी हैं, परन्तु कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पायी है। प्रस्तुत नाटक में इतिहास और कल्पना का समन्वय करते हुए प्रसादजी ने स्वयं लिखा है- "पात्रों की ऐतिहासिकता के विरूद्ध चरित्र की सृष्टि जहाँ तक सम्भव हो सकी है, न होने दी गयी है फिर भी कल्पना का अवलम्बन लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक रखने के लिए।"

प्रसादजी के नाटकों की सुख-दुख की भावना को समझने के लिए प्रसाद का व्यक्तित्व समझना अनिवार्य है। प्रसाद गहरे जीवनदृष्टा थे। जीवन की विभीषिकाओं को उन्होंने निकट से देखा और सहा था। किशोरावस्था प्राप्त होते-होते उनके सभी आत्मीय स्वजन एक-एक कर असमय में ही विदा हो गये प्रसादजी को अपनी गृहस्थी तीन बार बसानी पड़ी थी। प्रसाद का संवेदनशील भाव-प्रवण मानस इन सभी घटनाओं से झकझोर उठा था। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी प्रधान रूप से बौद्ध और शैव दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित थे। बौद्ध दर्शन के करूण और शैव दर्शन का आनन्दवाद उसके समूचे साहित्य पर प्रतिबिम्बित हो उठा है। डा. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार - 'प्रसाद ने बौद्ध दर्शन का गहरा ज्ञान प्राप्त किया था और उस ज्ञान को अपने चिन्तन द्वारा उन्होंने पुष्ट किया था। साथ ही वे शैव दर्शन के भी श्रद्धालु पाठक थे। यही क्यों, शैव दर्शन के आनन्दवाद के तो वे पक्के उपासक थे।'उनके नाटकों में यही दो तत्व हैं - करुणा और आनन्द - जिन्होनें उनके नाटक को न सुखान्त होने दिया न दुखान्त, बल्कि वे प्रसादान्त हो गये हैं। नाटक के पात्र दुखों और कठिनाइयों में होकर गुजरते हैं, परन्तु वे अन्त में सन्तोष प्राप्त कर लेते हैं। सुख-दुख के ऊपर उठकर जीवन का आनन्द प्राप्त करना ही प्रसाद की काव्य साधना का मूल है।

स्कन्दगुप्त नाटक सुखान्त है या दुखान्त, इस प्रकार का विवेचन करने के पूर्व संक्षेप में भारतीय तथा पाश्चात्य नाटक पद्धतियों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होता है। भारतीय नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने दृश्य काव्य के विवेचन में तत्वों की प्रधानता स्वीकार की है - 'वस्तु', 'नेता' और 'रस' - इसके अतिरिक्त दृश्य काव्य अभिनेय होना चाहिए तथा उसका अंत सुख - शांतिपूर्ण वातावरण में होना चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण भारतीय विद्वानों से कुछ भिन्न प्रकार का है। वस्तु और चरित्र-चित्रण की महत्ता तो उन्होंने भी चित्रित की है, किन्तु विभिन्नता है उद्देश्य की। उनके अनुसार करुणा और भय आदि के भावों द्वारा भी मानवीय चित्त वृत्तियां परिष्कृत हो सकती हैं, अत: वे नाटकों के सुखान्त की अपेक्षा दुखान्त को ही विशेष महत्व देते हैं। उनके अनुसार काव्य या साहित्य का

लक्ष्य रस आदि नहीं, वरन् भावों का परिष्कार मात्र करना है। इस लक्ष्य की सिद्धि दुखान्त नाटकों द्वारा अधिक सफलता से हो सकती है।

प्रसाद की नाट्य कला पर और विशेष रूप से स्कन्दगुप्त में भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्रों का समन्वय हुआ है। यही कारण है कि स्कन्दगुप्त में सुख में दुख का भी हल्का सा आवरण विद्यमान है। स्कन्दगुप्त नाटक प्रारम्भ से अन्त तक सुख-दुख के मधुर मिलन से वेष्ठित है। नाटक के प्रधान पात्र स्कन्दगुप्त और देवसेना दोनों आजीवन देश सेवा में जुटे रहे, किन्तु अपने वैयक्तिक जीवन को संतुष्ट न बना सके। दोनों परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करते रहे - मानसिक आत्म समर्पण रहा, शारीरिक मिलन न हो सका - इसे विधि का विधान या प्रसाद की भाषा में 'नियति' या जो चाहे कह लें।

इसी प्रकार स्कन्दगुप्त के ये कारण व्यंजक शब्द - 'जीवन के शेष दिन कर्म के अवसाद में बचे हुए हम दुखी लोग एक दूसरे का मुंह देखकर काट लेंगे।' तथा देवसेना का स्कन्दगुप्त को दिया हुआ उत्तर - 'सब क्षणिक सुखों का अन्त है। जिसमें सुखों का अन्त न हो इसलिए सुख करना ही न चाहिए। मेरे इस जीवन के देवता ! और उस जीवन के प्राप्य ! क्षमा' - अवसादार्पण करुणा से पाठक के मानस को भर देता है। समग्र रूप से नायक-नायिका के जीवन में सुख की अपेक्षा दुख की मात्रा ही अधिक है। स्कन्दगुप्त और देवसेना के अतिरिक्त नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक कितनी ही हत्याएं प्रदर्शित की गई हैं। मालव-वीर बन्धुवर्मा को युद्धस्थल में वीरगति प्राप्त होती है किन्तु क्या इससे स्कन्द, जयमाला और देवसेना दुखानुभव नहीं करते? उसी प्रकार मातृगुप्त को अपनी प्रेयसी मालिनी के वियोग का दुख है तो शर्वनाग को अपने सुकुमार पुत्रों के निर्मम अंत का। किन्तु उपर्युक्त सभी कारणों के होते हुए भी स्कन्दगुप्त नाटक शास्त्रीय कसौटी पर दुखान्त नहीं, सुखान्त सिद्ध होता है क्योंकि नायक अपनी लक्ष्य-सिद्धि या फल-प्राप्ति में पूर्ण सफल होता है।

नाटक का नायक स्कन्दगुप्त विख्यात राजकुल से सम्बन्धित है। उसमें धीरोदात्त नायक के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सीता की भांति स्कन्द और देवसेना आजीवन विघ्न बाधों को सहन करने के बावजूद भी वैयक्तिक जीवन में किसी प्रकार का आनन्दानुभव नहीं कर पाये। रावण जैसे वीर योद्धा को परास्त करने वाले राम को लोकनिन्दा के कारण सीता परित्याग करना पड़ा। स्कन्द भी लोकमर्यादा के भयवश देवसेना को प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार दोनों आनन्द की साधनावस्था तक ही पहुंच सके, सिद्धावस्था तक नहीं। परन्तु फिर भी नाटक को सुखान्त ही अधिक माना जाएगा, क्योंकि नायक को अपने उद्देश्य की पूर्ण सिद्धि हो जाती है। वह एक ओर आर्यावर्त को बाहरी शक्तियों से निरापद बनाता है और दूसरी ओर पुरूगुप्त को रक्त का टीका लगाकर अन्त में कलह को भी शान्त करता है।

नायक-नायिका का चिर वियोग बना रहने के कारण कुछ विद्वान नाटक को दुखान्त मानते हैं किन्तु वस्तुतः दोनों का वियोग है नहीं। देवसेना के शब्द - 'मेरे इस जीवन के देवता ! और उस जीवन के प्राप्य ! रघुवंश की सीता के शब्दों के समान हैं - मन जन्मानतरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग' और भी भारतीय दृष्टि से मनसा, वाचा, कर्मणा से एक होने पर भी पति पत्नि भाव होता है। देवसेना मन-वचन से तो स्कन्द की थी, कर्म से चाहे जो कुछ भिन्न-भिन्न हो। भारतीय मान्यतानुसार पति-पत्नी का जन्मान्तर का सम्बन्ध है व इस नाटक में भी यही है।

नाटक में निर्मम हत्याएं और विपत्तियां नायक स्कन्दगुप्त की धैर्य मति के परीक्षण हेतु ही हैं। यद्यपि अपनी माता और प्रिय सखा बन्धुवर्मा की मृत्यु तथा भटार्क के विश्वासघात से उसका चित्त दुखी हो उठता है, तथापि वह धैर्यपूर्वक विषम-परिस्थितियों का सामना करता है। इस प्रकार दुखपूर्ण स्थिति स्कन्द के धैर्य की कसौटी है।

नाटक के अन्त में परिणाम भोगने के उपरान्त नीच वृत्ति के पात्र सन्मार्ग पर आते हैं। विजया आत्मग्लानि से बोझिल होकर आत्महत्या कर लेती है। युद्ध में स्कन्द विजयी होता है और फल प्राप्ति करता है और नाना कष्टों से अर्जित राज्य तृणवत् पुरूगुप्त के लिए त्याग देता है। इससे उनका चरित्र देवत्व की कोटि का सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में डा. नगेन्द्र ने लिखा है - 'उनके नाटकों में बौद्ध और शैव दर्शन का संघर्ष और समन्वय वास्तव में दुखवाद और आनन्दमार्ग का ही संघर्ष और समन्वय है, जो उनके अपने अन्तर में सबसे बड़ी समस्या थी। इसी समन्वय के प्रभाववश उनके नाटक न पूर्णत: सुखान्त हैं और न दुखान्त। उनमें सुख-दुख जैसे एक-दूसरे को छोड़ना नहीं चाहते।' अत: स्कन्दगुप्त न तो सुखान्त हैं और न दुखान्त। वह तो प्रसाद के अनुरूप प्रसादान्त ही है।

मालव कुमारी देवसेना का पावन चरित्र प्रसादजी की अमर कल्पना है। डॉ. जगन्नाथ शर्मा के मतानुसार- "देवसेना का चरित्र आदर्श होने पर भी व्यक्तित्व से आपूर्ण है। उसकी सारी आलौकिकता त्याग, देशप्रेम, सेवा, सहिष्णुता, और रहस्योन्मुखी भावनाएँ गाम्भीर्य से आच्छादित दिखाई पड़ती हैं। गाम्भीर्य की सहयोगिनी दृढ़ता भी उसमें उच्च कोटि की है।"प्रसाद के नाटकीय पात्र नामक पुस्तक में श्री जगदीश नारायण दीक्षित ने देवसेना के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "देवसेना का पावन चरित्र प्रसाद की उर्वर कल्पना है। उसके चरित्र में नारी जीवन की आदर्श सहिष्णुता, त्याग, उदारता, समरसता और भावुकता-गंभीरता आदि इस भांति प्रतिष्ठित है कि वह काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होती है। वह दूर की रागनी सुनती हुई भाव-विभोर सी... जीवन के संघर्ष में अपनी सहज उदारता, साहस एवं सहानुभूति से अपने युग पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप डाल देती है।" वस्तुत: देवसेना के चरित्र में उसकी पावन प्रेम व्यंजना और संगीत प्रियता के दोनों विशिष्ट गुण हैं।'

(1) **आदर्श प्रेमिका-** वह एक निश्छल, पावन एवं आदर्श प्रेमिका है। उसके प्रेम में सम्पूर्ण रूप से समर्पण का भाव है, प्रतिदान की आकांक्षा कहीं नहीं है। वह अपना प्रणय मूल्य देकर नहीं खरीदना चाहती है। जब स्कन्दगुप्त उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है, तब देवसेना यह कहकर इंकार कर देती है कि - मालव ने जो देश के लिए उत्सर्ग किया है, उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा का अपमान करने की कोई इच्छा नहीं है। उस समय आप विजया का स्वप्न देखते थे, अब प्रतिदान लेकर मैं उस महत्व को कलंकित न करूंगी।'' प्रतिदान की बात सोचना ही वह अपने लिये अपमान समझती है। वह तो अपने पावन प्रेम में एकान्तिक भावना से समर्पित है। कामना के भँवर में फँसना उसे स्वीकार नहीं। तभी तो वह स्कन्द से कहती है- " मैं आपकी हूँ मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले में कुछ लेना नहीं चाहती। वह तो अभिमानी भक्त की भाँति निष्काम भाव से स्कन्द की उपासना करना चाहती है। वस्तुत: देवसेना का प्रेम विशुद्व प्रेम है, उसमें वासना की तनिक भी गंध दृष्टिगोचर नहीं होती।"

(2) **कर्त्तव्य बोध-** प्रेम में उसे निरन्तर अपने कर्तव्य का बोध बना रहता है। उसके भाई बंधुवर्मा ने स्कन्द को मालवा का राज्य दिया है। इस लोकोपवाद के भय से कि लोग कहेंगे कि मालवा का राज्य देकर देवसेना का विवाह किया जा रहा है तथा इस लोकोपवाद में उसके दिवंगत भाई की आत्मा को कष्ट पहुंचने की आशंका है, देवसेना स्कन्दगुप्त द्वारा रखे गए विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है और स्पष्ट रूप से कह देती है- 'सो न होगा सम्राट ! मैं दासी हूँ। मालव

ने जो देश के लिये उत्सर्ग किया है, उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा का अपमान न करूंगी। देवसेना की कर्तव्य बुद्धि इतनी सजग है कि वह प्रेमोन्माद में फँसकर यह नहीं चाहती कि उसका प्रणयाधार स्कन्दगुप्त उसके वशीभूत होकर देश और समाज के प्रति अपना कर्तव्य भूल बैठे। अत: स्कन्दगुप्त जब उसके समक्ष एकान्त जीवन व्यतीत करने का प्रस्ताव रखता है, तब उसका सहज उत्तर होता है- "तब तो और नहीं। मानव का महत्व तो रहेगा ही, परन्तु उसका उद्देश्य भी सफल होना चाहिये । आपको अकर्मण्य बनाने के लिये देवसेना जीवित न रहेगी ! क्षमा हो। "

(3) **दूषित प्रवृत्तियों से दूर-** देवसेना के प्रेम में असूर्या, ईर्ष्या आदि दूषित प्रवृत्तियों के लिये कोई स्थान नहीं है, जब उसे विजया के प्रति स्कन्दगुप्त के आकर्षण भाव का पता चलता है तब भी वह अपनी स्त्रियजनोचित दुर्बलता से ऊपर उठकर अपनी गम्भीर और उदार मनोवृत्ति का परिचय देती है। देवसेना ने अपने जीवन के बसंत में जिस व्यक्ति की मन्मथ-मूर्ति को अपने मानस मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था, जिसके चरणों में अपने प्रणय प्रसून चढ़ाये थे वही व्यक्ति यदि भ्रान्तिवश किसी नारी की ओर आकर्षित है तो देवसेना के लिए एक मर्मांतक दु:ख का कारण हो सकता है और एक सामान्य नारी तो अपने प्रेम के बीच में आने वाली अन्य नारी के प्रति ईर्ष्या की ज्वाला में धधक उठती है, किन्तु देवसेना अपनी आदर्श प्रेम निष्ठा के कारण अपना दिल छोटा नहीं करती। वह विजया से केबल यही कहती है- "विजया आज तू हार कर भी जीत गयी" और जब शमशान भूमि में प्रपंच बुद्धि से मिलकर विजया उसकी हत्या के षड्यन्त्र में सम्मिलित होती है, इसे जानकर भी देवसेना अपनी हृदय की विशालता का परिचय देती हुई यही कहती है कापालिक ! विजया के स्थान को मैं कदापि नहीं ग्रहण करूंगी। "वह अपने हृदय के आराध्य की मनोकामना के मार्ग में रोड़ा बनकर नहीं आती। देवसेना असाधारण गम्भीरता और सहिष्णुता से अपने नारी हृदय की सहज दुर्बलताओं को अपने पैरों के नीचे दबाकर मानव जीवन के अति उच्च स्तर पर स्थित होती है। यही तो उसके चरित्र की महानता है।

(4) **मानवी हृदय-** देवसेना केवल देवी ही नहीं, वह मानवी भी है। उसके हृदय में भी कभी-कभी मनावोचित दुर्बलताएँ क्षणिक रूप में रह-रहकर उभर पड़ती हैं। स्कन्दगुप्त के प्रति उसका प्रणय कितना प्रबल था, वह देवसेना के इस कथन से प्रकट होता है- "कूलों के ऊफन कर बहनेवाली नदी तुमुल तरंग ,प्रचण्ड पवन और भयानक वर्षा।"नारी हृदय की प्रणय सम्बन्धी सामान्य अनुभूतियों के इस कथन में ही हम उसका मानवीय रूप पहिचान कर उसे ग्रहण कर सकते हैं। अद्भुत चरित्रवती देवसेना एक बार अपने हृदय की दुर्बलता को अपनी सखी के समक्ष इस प्रकार प्रकट करती है- "मेरा हृदय मुझ से अनुरोध करता है, मचलता है, रूठता है, मैं उसे मनाती हूँ आंखें प्रणल-कलह उत्पन्न करती हैं, चित्त उत्तेजित करता है। बुद्धि भड़कती है, कान कुछ सुनते ही नही। मैं सबको समझाती हूँ, विवाद निपटाती हूँ सखी। फिर भी मैं इस झगडालू कुटुम्ब में गृहस्थी सम्हाल कर स्वस्थ होकर बैठती हूँ, देवसेना का यह अन्तर्द्वन्द्व ही उसके देवत्व दैदीप्यमान व्यक्तित्व में मानवीय कोमल अनुभूति का स्फुरण कर पाता है, अन्यथा तो वह आकाश-कुसम सा एक अलौकिक व्यक्तित्व बन जाती है। "

(5) **संगीत प्रिय-** देवसेना की चरित्रगत विशेषता का एक प्रमुख पक्ष उसकी संगीत प्रियता है। संगीत के प्रति उसका इतना अनुराग है कि वह मालव पर हूणों के आक्रमण के अवसर पर भी अपनी भाभी जयमाला से अपने गीत गाने की बात कहती है- "एक बार गा लूं हमारा प्रिय गान, फिर गाने को मिले या नही। " संगीत के प्रति प्रेम देवसेना में जन्मजात है। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों एवं विषम घड़ियों में भी वह स्वर लहरियों में भूलकर अपना हृदय हल्का कर लेती है। उसकी इस अतिशय संगीत प्रियता को बन्धु वर्मा रोग की संज्ञा देता है तथा विजया उसकी इस सनक से चिढ़ती है। बंधु वर्मा का कथन है- देवसेना तुझे गाने का भी विचित्र रोग है, किन्तु देवसेना के विचारानुसार संगीत एक महौषधि है, जो अनेक रोगों का अचूक उपचार है। इस संबंध में बंधु

वर्मा को जो वह प्रत्युत्तर देती है, वह उल्लेखनीय है- रोग तो एक न एक सभी को लगा है, परन्तु यह रोग अच्छा है, इससे कितने रोग अच्छे किये जा सकते हैं। देवसेना का यह संगीत प्रेम केवल उसी भौतिक मनोवृत्तियों की तृप्ति का ही माध्यम नहीं वरन् उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी प्राप्त करने का एक आदर्श माध्यम है। वह संगीत की आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक व्यवस्था करके उसे आध्यात्मिकता के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठापित करती है। उसके कथानुसार संगीत ब्रह्म की सत्ता के समान सर्वत्र व्याप्त है- अणु-अणु में कणकण विजया को संगीत का महत्व बतलाते हुए उसका कथन है- विजया प्रत्येक परमाणु मिलन में एक सम है प्रत्येक हरी-भरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रखा है, इसी से तो उसका स्वर विश्व वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पक्षियों में देखो, उनकी चह-चह कल-कल, छल-छल, में काकली में रागिनी है। डॉ. जगन्नाथ शर्मा देवसेना के इस संगीत प्रेम का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि- उसके जीवन की एकान्तिकता और निरालापन अन्यत्र दुर्लभ है। वह अपने आन्तरिक अद्वैत की मधुर अनूभूति से ही प्रेरित हुआ करती है। इसलिए बाह्य जगत में भी वह उसी एकरस संगीत का प्रसार पाती है। इसी आन्तरिक समत्व के कारण वह विश्व के प्रत्येक कम्पन में एक ताल देखती है, युद्व और प्रेम में संगीत का योग चाहती है। शम्शान में भी भयभीत नहीं होती, उसमें अभी तो सत् एवं सुन्दर का ही दर्शन करती है, देवसेना की इस रहस्य भावना में उसके हृदय पक्ष की प्रधानता ही दिखलायी पड़ती है। प्रेम के निश्छल क्षेत्र में पहुंचकर यह भावुकता ही गाम्भीर्य, संयम, त्याग और दृढ़ता का मंगलकारी रूप खड़ा करती है।

(6) **सामान्य स्त्रियोचित गुण-** देवसेना केवल प्रणय की अधिष्ठात्री देवी, संगीत की अनन्य साधिका का एक अलौकिक व्यक्तित्व रखने वाली नारी ही नहीं जो केवल आदर्शवादी कपोलकल्पना में ही डूबी रहती हो, वरन् उसके चरित्र में सामान्य नारी जीवन की अन्य विशेषताएं हैं, जो उसके आदर्शवादी व्यक्तित्व को यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करती हैं। साहस, कर्तव्यपरायण, देश सेवा आदि विविध समाज सापेक्ष, सात्विक भावों से वह अलंकृत है। देश सेवा जैसा सात्विक भाव उसके हृदय में प्रारम्भ से ही विद्यमान दिखलाई पड़ता है। नाटक के प्रथम अंक में ही देश के मान और स्त्रियों की प्रतिष्ठा के लिये हम उसे विदेशियों के आक्रमण काल में अन्तःपुर की रक्षा करते हुए देखते हैं। वह एक वीर क्षात्राणी बाला के रूप में अनुरूप शस्त्र संचालन द्वारा अपने असीम साहस का परिचय देती है। देश की सम्मान रक्षा में जिस सहिष्णुता, सेवा, त्याग और निष्ठा की आवश्यकता रहती है, उसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं। आत्म-सम्मान पूर्ण उदारता की भी उसमें कमी नहीं है। देश कल्याण के निमित्त राज्य त्याग के समय जयमाला को हिचकते देख कर वह उसे उत्साहित करती है- "क्षुद्र स्वार्थ ,भाभी जाने दो, भइया को देखा। कैसा उदार, कैसा महान् और कितना पवित्र। देश की रक्षा में सन्नद्व वीरों की सेवा करने में कार्य के लिये वह तत्पर रहती है। वह बंधुवर्मा से कहती है-चलो भाई मैं भी तुम लोगों की सेवा करूंगी। युद्व-काल के अवसर पर देवसेना अपनी देशभक्त पूर्ण ओजस्विनी संगीत लहरों से मृतकों में भी उत्साहपूर्ण जीवन का संचार करती है। सैनिकों के बच्चों के भरण-पोषण के लिये वह नागरिकों से भिक्षा मांगते हुए भी नहीं हिचकतीं। उसकी सहिष्णुता की पराकाष्ठा का तो उस समय पता चलता है, जब उसे भिक्षा मांगते समय कुछ-कुछ कुत्सित मनोवृत्ति वाले व्यक्ति उस पर कुत्सित कटाक्ष करते हैं और इस पर पर्णदत्त उत्तेजित होकर उन्हें फटकारता है। वह पर्णदत्त की उत्तेजना को शांत करती हुई कहती है- "क्या है बाबा ! क्यों चिढ़ रहे हो, जाने दो, जिसने नहीं दिया,वह अपना कुछ तुम्हारा तो नहीं ले गया।, वे अपने लिए तो मांगती नहीं, मांगती हैं साम्राज्य के निरवलम्ब बिखरे हुए रत्नों की रक्षा के निमित्त। वह देश के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

वस्तुतः देवसेना का चरित्र आदर्श एवं अलौकिक होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में प्रतिष्ठित होने के कारण व्यक्तित्व से आपूर्ण, परम लोकोपयोगी एवं मंगलमय है।

आधे-अधूरे

देश और काल, इन दो शब्दों से मिलकर बने हुए 'देशकाल' शब्द में देश स्थान का सूचक है और काल समय का। निःसन्देह प्रत्येक कृति की घटनाएं उसके पात्रों द्वारा किसी स्थान विशेष पर और काल विशेष में घटित हुआ करती हैं। दूसरे, कभी-कभी रचना विशेष का एक उद्देश्य विशेष स्थान, काल खण्ड और उनकी विभिन्न स्थिति-परिस्थितियों का चित्रण करना भी बताया जाता है। तीसरे, मनोवैज्ञानिकता या रसोत्प्रेरकता की दृष्टि से देखें तो मानव मन में स्थित स्थायीभाव, जो रचना को पढ़ सुन या देखकर जागृत होते हैं और फलस्वरूप सामाजिक को रसाप्लावित किया करते हैं, एक देशकालगत स्वरूप धारण करके ही मन में स्थित रहा करते हैं और जो घटना चक्र उनके इस विशिष्ट रूप के अधिक अनुकूल जान पड़ता है, उसी से वे तुरन्त और तीव्रतम रूप में जागृत हुआ करते हैं। देशकाल की इसी कथागत, पात्रगत, उद्देश्यगत और रसगत महत्ता को देखते हुए प्रत्येक देशकाल का रचनाकार अपनी रचना में 'देशकाल' तत्व को किसी न किसी रूप मान में अवश्य स्थान दिया करता है। शास्त्रीय दृष्टि से और विशेषतः नाट्य रचना के सन्दर्भ में भी देखें तो भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा में कथा पात्र और रस के अंतर्गत तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र की परंपरा में कथा, पात्र और रस के अंतर्गत तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र की परंपरा में संकलनत्रय के अन्तर्गत एवं आज के मान्य समग्रतः छह तत्वों के अन्तर्गत 'देशकाल' का महत्व स्वीकार किया गया है तथा इसको नाट्यरचना का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण आवश्यक तथ्य माना जाता है। रचना में अंकित 'वातावरण' भी वस्तुतः इसी का पर्याय है जिसमें अन्तर्बाह्य दोनों ही पक्ष आ जाते हैं। गहराई से विचार करें तो आधुनिकता या समकालीनता और समसामयिकता से लेकर युगचित्रण तक देशकाल तत्व के अंग हैं।

मोहन राकेश और देशकाल चित्रण - कालक्रम से, श्री मोहनराकेश भारत के स्वातन्त्र्योत्तर काल के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार थे। यह वह युग है जबकि विज्ञान, मनोविज्ञान, औद्योगिक परिवर्तन तथा भारत विभाजनादि के विभिन्न तत्वों ने साहित्य और साहित्यकार दोनों को ही हर प्रकार से प्रभावित-परिचालित किया। राकेश तो इसके दृष्टा और भोक्ता दोनों ही थे। निःसन्देह, वैचारिक स्तर पर वे आधुनिकता और समकालीनता के पक्षधर थे और वैयक्तिक स्तर पर 'अतीत' को भी आधुनिकता या समकालीन संदर्भों में ग्रहण करते थे। देशी-विदेशी साहित्य और नाना नयी विचारधाराएं उनकी प्रेरक स्रोत थी। यही कारण है कि उनके कृतित्व का मूलस्वर 'आधुनिकता' और समकालीनता का अंकन करता है। 'आधे-अधूरे' नाटक भी इसी का सशक्त प्रमाण है।

'आधे-अधूरे' का देशकाल चित्रण - रचनाक्रम से 'आधे-अधूरे' यदि राकेश जी की अन्तिम नाट्य रचना है तो विषय की दृष्टि से 'वैयक्तिक स्तर पर भोगा हुआ यथार्थ' भी है। इसका सृजन यूं तो राकेशजी की पत्नी श्रीमती अनीता औलक की एक कहानी पर हुआ है किन्तु साथ ही साथ इसमें राकेश और उनका पारिवारिक जीवन तथा 'सही घर' पाने की छटपटाहट भरी वैयक्तिक कामना भी अभिव्यक्त हुई है।

'आधे-अधूरे' अर्थ के दो आयाम प्रस्तुत करती है। 'घर-परिवार के विघटन की समस्या इसके यथार्थवादी स्वर को उद्घाटित करती है और पात्रों का अधूरापन आधुनिक भावबोध को।'

नि:सन्देह इन दोनों का ही मूलभूत कारण है - आज की परिस्थितियां, विशेषत: 'मध्यवित्तीय स्तर से ढह कर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आये हुए एक घर की। यह घर है - महेन्द्रनाथ और सावित्री का जो सम्बन्ध की दृष्टि से पति-पत्नी हैं यानी घर रूपी रथ के दो पहिये। परिवार की अभावग्रस्तता और उस समय पर भी 'घर से बाहर निकली' और अधिकाधिक वैभव प्राप्ति की ऐषणा से ग्रस्त बनी सावित्री की यथार्थपरक स्वार्थमयी दृष्टि उसको क्रमश: महेन्द्र से दूर ही नहीं करती जाती नये-नये पर पुरुषों तक से उलझती, जोड़ती चली जाती है और अपने परम्परागत नामार्थ के एकदम विपरीत वह 'परपुरुषगामिनी' तक बन जाती है। नि:सन्देह, उसकी ये हरकतें पति महेन्द्र को तो तोड़ती ही हैं, पूरे परिवार को भी विभिन्न कुण्ठाओं, प्रतिक्रियाओं, विद्रोह, आक्रोशादि से भरते हुए अस्त-व्यस्त कर देती हैं। परिणाम यह होता है कि सभी एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हुये परस्पर छत्तीस बनते चले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, अस्तित्ववादी मान्यता के अनुकूल, सावित्री 'पूर्ण पुरुष' की असफल खोज में भी उलझती है और साथ ही साथ 'स्व' की सन्तुष्टि में भी। वस्तुत: वह 'उस मध्यवित्तीय मानसिकता का शिकार है जो धन को जीवन में अतिरिक्त महत्व देती है' और क्रमश: आक्रामक बनते-बनते स्वयं को छलती जाती है या सह में भ्रमित होकर टूटती जाती है। यही टूटन, छलना, आक्रामकता और सबसे अधिक वैयक्तिक स्वार्थपरक एकाकीपन इस घर के सभी सदस्यों में घर कर जाता है। सत्य तो यह है कि ये सभी चरित्र मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के विभिन्न सच्चे रूपों को उजागर करने वाले बन पड़े हैं - विशेषत: आज के पाश्चात्य भौतिकवादी परिवेश में।'

प्रस्तुत नाटक केवल मध्य या निम्नमध्य वर्ग तथा उसकी आर्थिक काम विषयक परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं हैं। दूसरी और कहीं-कहीं पर जीवन के कुछ अन्य क्षेत्रों और उनकी सच्ची परिस्थितियों को भी यह बड़े समर्थ और यथार्थ रूप में उभारता व अंकित करता है। आज के युग में प्राय: सर्वव्यापी का दुरुपयोग अधिकारी वर्ग का अधीनस्थ नारी - कर्मचारी को दिल बहलाव का साधन और अधीनस्थ नारी का अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसको रिझाना, खुशामद करना, युवा वर्ग में व्याप्त विरोध, विद्रोह का भाव, हरामखोरी, एकांकीपन, बड़ों का मजाक उड़ाना, अशिष्टता आदि, नौकरीपेशा नारी और उसकी घर-बाहर की स्थिति, पाश्चात्य वातावरण, विसंगति भरा अंधानुकरण, विद्यालयों का प्रतिकूल वातावरण, पड़ौसी-सम्बन्ध, व्यक्तिगत और पारिवारिक दोनों ही स्तरों पर जिया-भोगा जाने वाला कुण्ठामय वातावरण आदि इस के कुछ सशक्त प्रमाण हैं।

कुछ विशेषताएं - 'आधे-अधूरे' का देशकाल नि:सन्देह आज का है, लेखक के अपने समकाल का है। यूं समस्त कथा और पात्र अपने आप में एकदम विशिष्ट हैं और उनका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है। फिर भी इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इसका समस्त तथ्य समस्त चित्र आज के, तथा-कथित वैभवेच्छुक और इसके लिए सब कुछ करने वाले विशेषत: मध्यम वर्ग का है, वह भी एकदम सच्चा और यथार्थ। लेखक ने ऐसा लगता है कि आज के मध्यम वर्ग में तेजी से बढ़ती हुई इस मानसिकता विशेष को अत्यन्त निकट से देखा है। यह सच भी है कि उसने जितना ध्यान बाह्य वातावरण पर दिया है, उससे भी कहीं अधिक वह पात्रों के अन्तर्मन में यानी आन्तरिक वातावरण में रमा है। सावित्री, महेन्द्रादि सभी पात्र कुण्ठायें, द्वन्द्व, टूटन, बिखराव, स्त्री-पुरूष और घर-परिवार के टूटते बदलते संबंध, वैयक्तिकता का बढ़ता हुआ दुष्प्रभावादि सभी कुछ न कुछ केवल आधुनिक या समकालीन भारतीय समाज, विशेषत: आम समाज का सच्चा दस्तावेज है वरन् वह एक दम मनोविज्ञान सम्मत और समाजशास्त्रीय दृष्टि से शिक्षाप्रद भी बन पड़ा है। एक-दम सच बात तो यह है कि आधे-अधूरे, अपने नाम के अनुरूप ही, आज के व्यक्तिमानस, उसके 'घर' और सच्चे घर की तलाश तथा मध्यवर्गीय समाज का आधा-अधूरा चित्र होने पर भी सही मायनों में 'युग का सही प्रतिनिधि' बन पड़ा है। जहां प्रश्न है इसमें नाट्य तत्वों (यथा भाषा, मंच, प्रस्तुतीकरण आदि) का तो वे सब भी नि:सन्देह युग-प्रभावित और आज के हैं। सारांश में कह सकते हैं कि देशकाल चित्रण की दृष्टि से 'आधे-अधूरे', एक ऐसी सफल नाट्यकृति है जिसमें

समसामयिक युगबोध भी है और आधुनिकता भी। साथ ही, वह आधुनिक परिवेश, युगानुरूप नवभाव-बोध एवं मुख्यत: मध्यवर्गीय विसंगति भरे पारिवारिक जीवन और बदलते पारिवारिक सम्बन्धों, परिवार के सदस्यों के वैयक्तिक यातना से भरे मन की सच्ची गाथा है - अपनी इन्हीं विशेषताओं से वह 'समकालीन जिन्दगी का यथार्थ दस्तावेज' भी है और सब मिलकर हमारे आज के युगीन जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ सही-सही प्रतिनिधित्व करने वाली रचना भी बन गया है यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

वैचारिक स्तर पर श्री राकेश नाटक को (और उसकी सफलता के लिए रंगमंच को भी) 'दृश्य' से अधिक 'श्रव्य' माध्यम मानते थे और इसके लिये मूल स्रोत स्वीकार करते थे- शब्द को। इस सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट धारणा थी- "...मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है। वह दिशा रंगमंच के शब्द और मानव पशु को समृद्ध बनाने की है- अर्थात् न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट से संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की। यहीं रंगमंच में शब्दकार का स्थान महत्वपूर्ण हो उठता है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण जितना कि हम समझ पाये हैं।"इतना ही नहीं वरन् उनके मतानुसार तो, नाटक केवल निर्देशक की चीज नहीं, उससे भी कहीं पहले स्वयं नाटककार की चीज है, या कहिये दोनों के समन्वित सहयोगी की। यही कारण है कि एक ओर यदि वे अपने नाटकों का सृजन ही मुख्यत- मंच के लिए करते हुए मिलते हैं तो दूसरी ओर अभिनेताओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सक्रिय होते हुए, नाना रिहर्सलों से लेकर दृश्य या मंच-सज्जा की एक-एक चीज पर लम्बी-लम्बी बहसें करते हुए भी। 'आधे-अधूरे'के रचना काल तक (तो) राकेश नाट्य कला और रंगमंच विधान से और अधिक परिचित और अभ्यस्त हो चुके प्रतीत होते हैं लगता है कि उन्होंने अपने पहले दो नाटकों के साथ और भी बहुत से नाटकों का अभिनय अभिधानपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से देखा है और नाट्य तथा रंग-मंच प्रयोग के प्रति और अधिक सजग और अनुभव प्राप्त हो गए हैं प्रकाश-व्यवस्था का उन्हें अच्छा बोध है, इसमें संदेह नहीं। ध्वनि योजना के महत्व से भी वे परिचित हैं। दृश्य और सूच्य का विवेक भी उनमें है। आशय यह है कि राकेशजी ने जिस प्रकार नाटक और रंगमंच का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त किया था, तत्सम्बन्धी मौलिक चिन्तन किया था और अपनी स्वतंत्र धारणाएँ निर्मित की थीं, ठीक उसी प्रकार उन्होंने मंच के विभिन्न पहलुओं और सम्बन्धित व्यावहारिक रूप पक्षों की जानकारियाँ भी पर्याप्त मात्रा में ग्रहण की थीं। नि-संदेह, विभिन्न नाट्य संस्थाओं से उनका प्रत्यक्षत: जुड़े रहना, विभिन्न रंगकर्मियों का निकटस्थ बने रहना और सबसे अधिक तो स्वयं अपने ही नाटकों का अधिकाधिक मंच तक पहुँचाने में निरन्तर सक्रिय बने रहना आदि इसी सत्य के परिचायक हैं। नि:सन्देह, 'आधे-अधूरे' भी इसी श्रृंखला की सम्भवत: सर्वाधिक सशक्त कड़ी है।

'आधे-अधूरे'- मंचीय समीक्षा- किसी भी नाटक की मंचीय सफलता की प्रथम कसौटी हुआ करती है- नाट्यगर्भी कथा-प्रसंग- इस दृष्टि से प्रस्तुत विवेच्य नाटक को देखने पर पाते हैं कि इसकी कथा एकदम समकालीन विषय सम्बद्ध है- पूरी तरह से यथार्थपरक, स्वाभाविक सामग्री और सब मिलाकर विश्वसनीय। यूं कथा मुख्यत: मनोवैज्ञानिक है लेकिन लेखक ने घटनाओं का चयन ऐसा किया है कि उनको आसानी से मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। अल्प होने पर भी प्राय: सभी घटना प्रसंग पूरे-पूरे रोचक भी हैं और कौतूहल वर्धक भी। इसको लिया ही इस रूप में गया है कि ये दर्शक को 'अपनी ही बात'प्रतीत होने लगती है। सावित्री महेन्द्रनाथ का बात-बात पर

झगड़ते रहना, किन्नी-अशोक की पारस्परिक लड़ाइयां, बिन्नी की कटी-बुझी सी जिन्दगी, सिंहानिया के बेतरकीब संवाद, जुनेजा के डटकर किये गये तर्क-वितर्क आदि यदि मध्यवर्गीय पारिवारिक विसंगतियों को उजागर करके दर्शक को मजबूर सा कर देते हैं, तो कई पात्रों के विभिन्न क्रियाकलाप भी मंच को सक्रिय बनाये रखते हैं। बात- बात पर सावित्री का चिड़चिड़ाना और बहस, लड़ाई पर उतर आना, महेन्द्र का चाय और सिगार पीते रहना, अशोक का सिंहानिया की ओर जुनेजा का सावित्री की खिंचाई करते रहना आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। मंच की ही दृष्टि से, इस नाटक की एक प्रमुख कथागत विशेषता यह भी है कि इसमें औद्योपांत संघर्ष का निर्वाह किया गया मिलता है। निःसंदेह यह संघर्ष मुख्यतः आन्तरिक (मानसिक या मनोवैज्ञानिक) है, बाह्य नहीं। इस आंतरिक संघर्ष को भी लेखक ने बड़ी गहनता, सूक्ष्मता और स्वाभाविकता के साथ उभारा, चित्रित भी किया है और इसके लिए विभिन्न मंचीय उपादानों का सफल सहारा लिया है। पात्रों के विभिन्न क्रियाकलाप, संवाद, ध्वनि और टोन, प्रतीकात्मक सज्जा आदि इसी के कुछ साक्षी हैं। सबसे अधिक तो इस नाट्यकथा की मंचीय विशेषता बन पड़ी है- रसात्मकता। पूरी कथा और उसके अन्तर्गत आये घटना-प्रसंग इतने स्वाभाविक, यथार्थ, विश्वसनीय और प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत हुए हैं कि दर्शक उनको अपने से ही सम्बद्ध समझने लगता है और फलस्वरूप उन्हीं के साथ-साथ बहने लगता है। कहने का आशय यह है कि 'आधे-अधूरे' की कथा एकदम मंचीय है और उसमें स्थान-स्थान पर नाटकीयता का पूरा-पूरा पुट दिया गया है जो सब मिलाकर दर्शक को औद्योपांत बाँधे रखता है और उधर अभिनेताओं द्वारा आसानी से मंच पर प्रस्तुत भी किया जा सकता है।

नाटक के कथ्य को दर्शकों के चक्षु मानस तक पहुंचाने वाले हुआ करते हैं- अभिनेता जो वस्तुतः मूल पात्रों या चरित्रों को ही दोहराया करते हैं। निःसंदेह, 'आधे अधूरे' इस दृष्टि से भी एकदम मंचानुकूल बन पड़ा है। प्रमाण ? इस नाटक में आये पात्र संख्या में अल्प और अत्यावश्यक तो हैं ही, अपने चरित्र पक्ष में अत्यन्त ''विश्वसनीय, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक भी बन पड़े हैं। इनको अभिनेताओं के माध्यम से देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ये 'अपने' ही हैं। सभी पात्र हमारे आज के मध्यवर्गीय परिवार के जीते-जागते प्राणी हैं और एक प्रकार से किसी भी मध्यवर्गीय भारतीय परिवार के विभिन्न पक्षों का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व भी करते हैं। बेशक नाटककार ने मुख्यतया- इनके चरित्र-पक्ष को उभारा है किंतु इस पर भी इनकी विभिन्न मनःस्थितियाँ, क्रिया-कलाप और सम्वादादि अत्यन्त सशक्त रूप में और प्रधानतः आसानी से मंच पर प्रस्तुत हो सकने वाले बन पड़े हैं। महेन्द्रनाथ का दीन-हीन निरीह रूप, सावित्री का कुण्ठाग्रस्त झगड़ालूपन, जुनेजा की वाचालता, सिंहानिया की बेतरतीब बातें और अशोक-किन्नी की पारस्परिक किच-किच आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। एक प्रमुख और स्मरणीय विशेषता है- एक ही पात्र (महेंद्र नाथ)का चार-चार पात्रों के रूप में आना जो रोचक और उत्सुकतावर्धक भी है और एक नवीन प्रयोग भी। यह पात्र नाटक में सूत्र धार की भूमिका भी निभाता है। मंच की दृष्टि से यह बात उल्लेखनीय है कि स्वयं नाटककार ने इनका आवश्यक परिचय, वेश-भूषा तथा स्थान पर अभिनयात्मक निर्देश इस प्रकार दिए हैं कि इनको एकदम सरलता पूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

मंचीय सफलता की एक महत्वपूर्ण कसौटी मानी जाती है संकलन का निर्वाह जिसके अन्तर्गत रचना कथा का समय, स्थान और कार्य का एकत्व आता है। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत नाटक एकदम सफल कहा जा सकता है। प्रमाण ? प्रस्तुत नाटक की कथा केवल एक दिन की है जिसको संक्षिप्तता प्रदान करते हुए कुछ ही घण्टों में मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है- मात्र एक सामान्य सा कमरा और समस्त घटनाएं इसी एक स्थान पर घटित होती हैं। निःसंदेह समस्त घटनाएं भी परस्पर संगुफित, क्रमबद्ध और सुनियोजित हैं। जहाँ तक प्रश्न है- वातावरण का तो मुख्यतः वह आन्तरिक यानी मनोवैज्ञानिक और सम्वादों या पात्रों के क्रियाकलापों से ही अधिक मुखरित किया गया है। निःसंदेह बाह्य वातावरण का सृजन मुख्यतः गिनी चुनी, सर्वसुलभ वस्तुओं से किया गया

है। यथा टूटा-फूटा फर्नीचर, टी सेट, जूठे बर्तन, गर्द भरी फाइलें और गंदा पायजामा आदि। वस्तुत: यही सब कुछ "घटना या पात्र को पृष्ठभूमि ही प्रदान नहीं करता वरन् मानवीय क्रिया कलाप के लिये एक आधार भी प्रस्तुत करता है।"

जैसा कि नाटक के प्रारम्भ में ही स्पष्ट हो जाता है, स्वयं लेखक ने प्रत्यक्ष विधियों का सम्यक उपयोग करते हुए भी नाटक को मंचीय बनाया है। मात्र परिचय, सामान्य-सरल वेशभूषा और मेकअप, स्थान-स्थान पर कोष्ठकों में दिये गए अभिनयात्मक निर्देश, मंच-सज्जा विषयक प्रारम्भिक निर्देश तथा नेपथ्य संगीत का पर्याप्त समावेश आदि इसी सत्य के साक्षी हैं।

कुछ कमियाँ

गइराई और निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो मंच की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में कुछ कमियाँ या दोष भी हैं उदाहरणस्वरूप एक ही पात्र से चार पात्रों की भूमिकाएं कराना नयापन होने पर भी सरल कार्य नहीं है- न निर्देशक के लिये और न स्वयं अभिनेता के लिए। दूसरे, विशेषकर नाटकांत के दीर्घ सम्वाद एकदम वाद-विवाद या तर्क-वितर्क से प्रतीत तो होते ही हैं, सामान्य दर्शकों को नीरस और उबाऊ भी लगते हैं। इस सम्बन्ध में श्री प्रेमप्रकाश गौतम ने ठीक ही कहा है- "आधे-अधूरे अपने अन्तिम अंश में नाटक न रहकर चरित्रोद्घाटनपरक सम्वाद-योजना मात्र रह जाता है जिसका महत्व यदि कुछ है तो यही कि वह नारी (सावित्री) का पूरा चरित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जिसका चरित्र बहुत कुछ पहले से ही उद्घाटित है।...कुल मिलाकर ये सम्वाद बहुत कुछ अनाटयोचित हैं, नाटककार की इस विवशता के सूचक हैं कि उसे एक लम्बा प्रसंग संक्षेप में डालना है। नाट्य विधान रंग-मंच की दृष्टि से इसमें कोई कौशल है, यह मानना कठिन है।"

तीसरे, पात्र-परिचय में भी लेखक ने ध्यान आंतरिक पक्ष पर अधिक दिया है, बाह्य या आकृति आदि पर कम। चौथे सम्वादों में स्वागतों की संख्या भी अधिक है।

उपसंहार

ध्यान दें तो उर्पयुक्त कमियों में से कई को दूर या कम किया जा सकता है (किया भी जा चुका है यथा ओम शिवपुरी द्वारा किया गया एक ही पात्र द्वारा चार भूमिकाओं का सफल निर्वाह)। दूसरे मंचीय गुणों की तुलना से भी ये अत्यल्प है।

एकदम सच तो यह है कि मंचाभिनय की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' एक मीलस्तम्भ है। अनेकानेक स्थानों पर, खुले और बन्द दोनों ही प्रकार के मोर्चों पर हुए इसके शताधिक प्रदर्शन निःसंदेह इसकी अद्‌भुत मंचीय सफलता के परिचायक हैं। कहा तो यहाँ तक गया है कि "राकेश के नाटक मंच की दृष्टि से एकदम विशिष्ट और उत्तम कोटि के हैं और 'आधे-अधूरे' इनमें सर्वोत्तम है।"निष्कर्ष स्वरूप, श्री ओम प्रकाश शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं- राकेश ने हिन्दी-नाटक और रंगमंच के लिये जो कुछ किया, वह एक व्यक्ति नहीं कर सकता। उन्होंने नाटक को रंगमंच से तो जोड़ा ही, उसे अपना मुहावरा भी दिया। 'आधे-अधूरे' इसका उत्तम प्रमाण है।

'आधे-अधूरे' नामक नाटक यद्यपि अंकों में विभाजित नहीं है तथापि कथावस्तु का विन्यास इस प्रकार किया गया है कि अंकों की स्थिति स्वयंमेव स्पष्ट हो जाती है। पहले समस्त पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है। परिवार का कलह क्रमश: विकसित होता है। उससे ऊबकर पुरुष एक यानी महेन्द्रनाथ घर छोड़कर चला जाता है। इस स्थल पर एक प्रकार से कथावस्तु की प्रयत्न अवस्था दिखाई देती है। इसके पश्चात् गृह-कलह एक अन्य रूप धारण करता है। सावित्री और उसके

बच्चों (बिन्नी, किन्नी और अशोक) के मध्य कलह होता है और वे सबके सब एक-दूसरे से ऊबे दिखाई देते हैं। अन्ततः स्त्री जगमोहन के साथ घर छोड़कर चली जाती है। इस स्थल पर नाटक के द्वितीय अंक का पटापेक्ष होता है। यह स्पष्टतः चरम-सीमा अवस्था की स्थिति कही जा सकती है। यहाँ पर घटना-क्रम पूर्णतः उलझ जाता है पाठक या प्रेक्षक यह सोचने लगता है कि अब क्या होगा? इन बच्चों का क्या होगा? लड़का अशोक एक प्रकार से निकम्मा है। बड़ी लड़की बीना या बिन्नी अपने प्रेमी से निराश होकर आई है और उसका भविष्य अन्धकारमय है। छोटी लड़की किन्नी अभी बहुत छोटी है- वह केवल स्कूल की छात्रा है। इतने में ही जुनेजा आ जाता है और वह बालकों को आश्वस्त करता है तथा उनकी सहायता का संदेश लेकर आता है। वह यह भी बता देता है कि पुरुष एक (महेंद्रनाथ) यानी उन बच्चों के डैडी उसके घर सुरक्षित हैं तथा अपने बाल-बच्चों के पास आने के लिए उत्सुक हैं। यह नाटक की 'प्रत्याशा' कार्यावस्था है।

जुनेजा के आगमन के साथ ही घटनाक्रम क्रमशः सुलझने लगता है। थोड़ी ही देर बाद स्त्री (सावित्री) आ जाती है। जुनेजा और सावित्री की बातचीत के साथ कथानक अपने अन्त की ओर अग्रसर होने लगता है। जुनेजा सावित्री के व्यवहार का मनोविश्लेषण प्रस्तुत करता है और स्पष्ट कर देता है कि जगमोहन के द्वारा तिरस्कृत होने के पश्चात् सावित्री के लिए अब अन्यत्र स्थान नहीं रहे गया है। इतना ही नहीं, वह यह भी बता देता है कि महेंद्रनाथ घर आने के लिए उत्सुक है और वह सावित्री के प्रेमपाश में इतनी बुरी तरह जकड़ा हुआ है कि वह सावित्री के बिना रह ही नहीं सकता है।

जुनेजा की बातें जैसे-जैसे आगे बढ़ती हैं, वैसे-वैसे सावित्री अपनी त्रुटियों का अनुभव करती जाती है और चाहती है कि जुनेजा वहाँ से चला जाए और उसको अपनी स्थिति का सामना करने के लिए अकेला छोड़ दे।

जैसे ही जुनेजा जाने को होता है, वैसे ही पुरुष एक(महेंद्रनाथ) अपने लड़के का सहारा लिए हुए प्रवेश करता है। बस यहीं नाटक का अन्त हो जाता है।

इस प्रकार कथावस्तु अंक और कार्यावस्था दोनों ही त्रुटियों से सुविभाजित एवं सुविन्यस्त है।नाटक के कथानक में पाठक एवं प्रेक्षक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। स्त्री सावित्री घर से चली जाती है। आगे चलकर पुरुष और स्त्री दोनों ही लौट आते हैं, परंतु फिर भी उनके भविष्य व्यवहार की स्थिति का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है। लेखक सब कुछ पाठक अथवा प्रेक्षक की कल्पना शक्ति पर ही छोड़ देता है।

कथावस्तु वस्तुतः किसी निष्कर्ष पर ले जाकर पाठक को नहीं छोड़ती है, बल्कि उसको पूर्णतः झकझोरकर रख देती है। नाटक में 'फलागम'जैसी कार्यावस्था नहीं है।

नाटक की कथा-वस्तु सामान्य मध्य-परिवार की एक सामान्य समस्या को लेकर चलती है। इस प्रकार वह हमें आद्यान्त परिचित-सी प्रतीत होती है और उसके प्रति हम एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव करते हैं। आत्मीयकता की यह स्थिति नाटक की रस-सिद्धि में सहायक होती है।नाटककार काफी समय तक अपने प्रमुख पात्रों के नामों को छिपाए रखता है और उन्हें आनुषंगिक रूप से ही प्रकट करता है। यह तत्व भी नाटक की कथावस्तु की 'उत्सुकता' में वृद्धि करता है। कथावस्तु जिस क्रम में उलझती है, उस क्रम में सुलझती नहीं है। साथ ही वह एक समस्या को चित्रित तो करती है, परन्तु उसका समाधान प्रस्तुत नहीं करती है।

निष्कर्ष

समग्र रूप में नाटक की कथावस्तु में कार्यावस्थाओं एवं उत्सुकता के तत्वों का सफल निर्वाह हुआ है। यह पाठक को कौतूहल प्रदान करने के साथ रसमग्न बनाये रखने में समर्थ है। किसी कृति की यह सबसे बड़ी सफलता है।

किसी ग्रंथ का नामकरण चार प्रकार से किया जा सकता है- (1) नायक अथवा नायिका के नाम पर, (2) किसी मुख्य घटना के आधार पर, (3) किसी घटना-स्थल के नाम के आधार पर अथवा (4) ग्रन्थ में निहित संदेश अथवा उसके उद्धेश्य के आधार पर।

प्रस्तुत नाटक का 'नामकरण'- 'आधे-अधूरे' नाटक का नामकरण मान्य पद्धति पर किया गया है। इसमें केवल दो शब्दों- 'आधे-अधूरे' का प्रयोग किया गया है तथा इन दो शब्दों में ही नाटक की कुल कहानी छिपी हुई है तथा उनमें ही नाटक का सन्देश भी निहित है।

नाटक का संदेश- पुरुष और नारी एक- दूसरे के पूरक हैं। वे जीवन-रथ के दो पहिए हैं। एक-दूसरे के बिना वे 'आधे-अधूरे' हैं। उन्हें चाहिए कि वे पारस्परिक सहयोग द्वारा अपने 'आधे-अधूरे' व्यक्तित्व को पूरा बनाकर समग्र जीवन का आनन्द लाभ करें। परन्तु हम ऐसा चाहते कब हैं। हम एक-दूसरे के अभावों को देखकर अपने-अपने जीवन को अभावमय बनाते जाते हैं और अन्ततः अपने जीवन से भी ऊब उठते हैं। नाटककार ने 'काम-कुण्ठा' के विश्लेषण द्वारा यही दिखाने का प्रयत्न किया है।

हमारे जीवन में चुनाव के अवसर बहुत कम हैं तथा चुनाव की सार्थकता भी बहुत ही सीमित है। अतएव हमें सहिष्णुता एवं व्यवहार कुशलता के सहारे स्थिति को अपने अनुकूल तथा अपने आपको स्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तथ्य के उद्घाटन को ही नाटककार ने आँखें खोलना कहा है। इस सीमा पर पहुँचकर पुरुष एक महेन्द्र और स्त्री सावित्री दोनों की आँखें खुल जाती हैं।

उपसंहार- नाटककार ने मनोवैज्ञानिक पद्धति पर यह बड़ी कुशलता के साथ स्थापित किया है कि जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण के अभाव में तथा परस्पर पूरक हुए बिना पुरुष और नारी दोनों ही 'आधे-अधूरे' हैं। अतएव नाटक का नाम सर्वथा उपयुक्त एवं समीचीन है।

सामान्य परिचय

सावित्री को नाटककार 'स्त्री' लिखता है। उसकी अवस्था चालीस को छूती हुई है। चेहरे पर यौवन की चमक तथा "यह फिर भी शेष"।

वह महेन्द्रनाथ की पत्नी है और वह दो पुत्रियों एवं एक पुत्र की मां है। बड़ी लड़की का नाम वीणा या बिन्नी है, जिसकी अवस्था लगभग 20 वर्ष है। छोटी लड़की की अवस्था लगभग 12-13 वर्ष है। नाम है किन्नी।

लड़के का नाम अशोक है। वह उसकी बड़ी संतान है। अवस्था है 21 वर्ष के लगभग।

सावित्री कहीं नौकरी करती है। वह एक तरह से भोगवादी कामिनी नारी है। नाटककार ने उसके विषय में अपने मंतव्य को अत्यंत संक्षेप में पर अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर दिया है, 'उम्र चालीस की' के साथ यह लिखना-'चाहे फिर भी शेष' बहुत कुछ अर्थ रखता है। जिस अवस्था में, विशेषकर तीन-तीन बच्चों की मां बन जाने के बाद नारी की प्राय: समस्त भोगेच्छाएं शांत हो जानी चाहिए, इस अवस्था में सावित्री नये-नये प्रेमियों की ओर देखती है। 'फिर भी' शब्द का प्रयोग करके नाटककार ने इसी अस्वाभाविकता की ओर संकेत किया है। नाटककार के मंतव्य का विश्लेषण नाटक के अंत में जुनेजा प्रस्तुत करता है। यथा-'असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो-साल में तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिये जीने का मतलब रहा है कि कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़ कर जीना। वह उतना ही कभी तुम्हें किसी जगह न मिल पाता। सावित्री घर में आतंक का वातावरण बनाये रखती है। उदाहरण के लिए वह छोटी लड़की को चपत जड़ती है और उससे कहती है कि, "इस वक्त चुपचाप चली जा उस कमरे में। मुंह से एक लफ्ज भी और कहा, तो खैर नहीं तेरी।"

इसलिए जिस किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती।

1. **कर्कशा नारी-** सावित्री नाटक के आरंभ में ही रंगमंच पर प्रकट होती है। वह कहीं काम पर से आती है, और अपनी अप्रसन्नता प्रकट करती हुई घर में घुसती है। "सहजहुं बोलत मनहुं रिसाती" वाली स्थिति है तथा उसके घुसते ही वह अपने पति के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करती है, क्योंकि वह उस समय घर में उपस्थित नहीं है। जैसे ही उसके पति महेन्द्र घर में घुसते हैं, वह उन्हें डांट लगाती है, "कहां चले गये थे तुम?" और इसके बाद घर की चीजों के बेतरतीब रख-रखाव को लक्ष्य करके वह महेन्द्रनाथ को डांटती है।" रोज आने पर पचास चीजें यहां-वहां बिखरी मिलती हैं।

इसी संदर्भ में वह अपने पति से यह भी कह देती है कि "तुम रहते हो? और न कोई।" और फिर अत्यंत अशिष्टतापूर्वक कहती है कि-यहां से उठ जाओ।" मुझे झाड़ लेने दो जरा।

लड़के को लक्ष्य करके वह पति से यहां तक कह देती है कि "जिस तरह तुमने खराब की है अपनी जिंदगी, उसी तरह वह भी।"

सावित्री इसी प्रकार आद्यंत पति से बोलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह छायादायिनी पत्नी न होकर कांटों भरी गुलाब की तरह पति को काटने वाली पर किया है। वह बड़े ही सहज भाव से जुनेजा से कह देती है कि "आप जाईये तथा कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रख रखिए। और मुझे भी..मुझे अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल-बिल्कुल जरूरत नहीं है।"

2. **अशिष्ट-** सावित्री जरूरत से ज्यादा जबान की तेज है। उसको क्रोध भी बहुत आता है। "कामात् संजायते क्रोध:" वाली बात है। उसकी भोगेच्छा की पूर्ति होती नहीं है और वह संपर्क में आने वाले हर व्यक्ति से लड़ती-झगड़ती दिखाई देती है। इस आवेश तथा क्रोध में उसको अपने विवेक पर नियंत्रण नहीं रहता है और उसका व्यवहार अशिष्ट हो जाता है। जुनेजा से बात करते हुए वह बार-बार जताती है कि वह अपने घर वालों के बारे में सब कुछ जानती है और इस कारण

इनके बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहती है। वह बार-बार यही कहती है कि "उसे अपने घर में किससे किस तरह बरतना चाहिए, यह मैं औरों से बेहतर जानती हूं।"

इतना ही नहीं वह एक से अधिक बार जुनेजा के प्रति निस्संकोच भाव से इस तरह की पदावली कहती है कि वह उसके घर से चला जाये यथा-"बेहतर यही है कि अब आप यहां से चले जाएं, क्योंकि... !" तथा "आप जाइये और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिये।"

3. **कुलटा नारी-** सावित्री की कामेच्छा अतृप्त है, वह संभवत: इंद्रिय-भोग से कभी भी तृप्त नहीं हो सकती है। काम-कुंठा के कारण भी वह इतनी क्रोधी, चंचल, कठोर तथा अकेलेपन का अनुभव करने वाली है। जुनेजा उसके चरित्र का विश्लेषण करके उसको ग्रसित करने वाली कुंठा के स्वरूप को उद्‌घाटित करता है। वह जुनेजा, शिवजीत तथा जगमोहन को अपना प्रेम दे चुकी है। अपनी बड़ी लड़की के पति मनोज पर भी वह किसी समय नजर डाल चुकी है। उसका कथन स्पष्ट है कि, "जुनेजा के बाद जिससे कुछ दिन चकाचौंध रहीं तुम, वह था शिवजीत। एक बड़ी डिग्री बड़े-बड़े शब्द और पूरी दुनिया घूमने का अनुभव।"

उसके बाद सामने आया जगमोहन। उस मनोज का भी बड़ा नाम था, "उस नाम की डोरी पकड़ कर ही कहीं पहुंच सकने की कोशिश में तुम एकदम बौरा गयीं जब तुमने पाया कि वह उतने नाम वाला आदमी ही तुम्हारी लड़की को साथ लेकर रातों-रात इस घर से।"

हम तो यही कहेंगे कि "ऋणकर्ता पिता शत्रु: माता च व्यभिचारिणी", वाली लोकोक्ति के अनुसार सावित्री ने ही अपने लड़के-लड़की को कुपथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान की। बड़ी लड़की मनोज के साथ भाग जाती है और अशोक उद्योग सेंटर वाली लड़की के पीछे चलता है और छोटी बहिन की चीजें चुरा-चुरा कर ले जाता है और उसे दे आता है।

जुनेजा को पाने में निराश होने वाली सावित्री सचमुच एक विचित्र नारी बन जाती है। माता का स्वरूप तो माना सदा-सर्वथा के लिए लुप्त हो जाता है। उसकी वास्तविक स्थिति यह है कि "तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का। और कि वह डर एक दहशत में बदल गया। जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा झटका पड़ा।" और यह अंतिम व्यक्ति है बिन्नी का प्रेमी मनोज।

4. **असफल प्रेमिका-** सावित्री सुंदरी है और उसके मन में काम-भावना की गर्मी है। वह कई पुरुषों से प्रेम करती है, परंतु अपना सर्वस्व समर्पण करके वह किसी एक की होकर नहीं रह सकती है। कारण यह कि वह जिसके पास भी जाती है, उससे तत्काल सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहती है। प्रेम की भाषा में देना कुछ भी नहीं चाहती है। इसी को लक्ष्य करके जुनेजा कहता है कि तुम जिससे भी शादी करतीं, उसी के बारे में सोचतीं कि तुमने एक गलत आदमी से शादी की है। सावित्री के जीवन में वस्तुत: भोग प्रधान है, प्रेम गौण है। परिणामत: उसको हृदय से कोई नहीं अपना सका है तथा सावित्री की हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो गई है। वह न घर की रही है और न घाट की ही। कोई उसे अपने पास बैठाने को तैयार नहीं है। जुनेजा के शब्दों में, "बिन्नी के मनोज के साथ चले जाने के बाद तुमने एक अंधाधुंध कोशिश की-कभी महेन्द्र को ही और झकझोरने की, कभी अशोक को ही चाबुक लगाने की और कभी इन दोनों में धीरज खोकर कोई और ही रास्ता, कोई और ही चारा ढूंढ़ सकने की। ऐसे में पता चला जगमोहन यहां लौट आया है। आगे से रास्ता बंद पाकर तुमने फिर पीछे की तरफ देखना चाहा। आज अभी बाहर गई थीं उसके साथ।"

इसके आगे जुनेजा अपने काम विज्ञान के आधार पर जगमोहन और सावित्री के मध्य संभाव्य व्यवहार की कल्पना करता है और स्पष्ट कह देता है कि जगमोहन ने सावित्री को ठुकरा दिया है-तुमने कहा तुम बहुत-बहुत दु:खी हो आज।...तुमने कहा तुम जैसे भी हो सब घर से छुटकारा

पा लेना चाहती हो। उसने कहा कितना अच्छा होता अगर इस नतीजे पर तुम कुछ साल पहले पहुंच सकी होतीं।...आखिर उसने कहा कि तुम्हें देर हो रही है, अब लौट चलना चाहिए। तुम चुपचाप उठकर उसके गाड़ी में आ बैठीं।...तुम मन में घुटन लिए घर में दाखिल हुईं और आते ही तुमने बच्ची को पीट दिया। जाते हुए सामने थी एक पूरी जिंदगी। पर लौटने तक का कुल हासिल?

और फिर जुनेजा का यह अंतिम कथन तो स्पष्ट कर देता है कि सावित्री जीवन में जो चाहती थी, वह उसे प्राप्त नहीं हो सका है-किसी का भाव प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी तुम्हें लगता रहा कि तुम चुनाव कर सकती हो।...क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हें?

इसका कुल नतीजा यह निकलता है कि वह अपने पति के प्रति भी अनुरक्त नहीं रह पाती है। वह जुनेजा से कहती है कि, "इस घर में अपना और रहना सचमुच हित में नहीं है और उसके और मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल जरूरत नहीं है।" और ऐसा क्यों न हो? सावित्री महेन्द्र को केवल अंतिम उपाय के रूप में ही पास रखना चाहती थी, और कुछ हासिल न हो तो कम से कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना रहे?

5. **असफल गृहणी-** सावित्री के जीवन में भोग एवं वासना का प्राधान्य है। अतएव उसमें एक गृहिणी के त्याग एवं सेवा भाव का सर्वथा अभाव, होना स्वाभाविक ही है। उसको न घर अच्छा लगता है और न घर का कोई व्यक्ति। वह केवल प्रयोजन सिद्धि जानती है। इस कारण वह परिजनों के बारे में भी यही सोचती है कि वे सबके सब उसको केवल प्रयोजन-सिद्धि का साधन बनाए हुए हैं। वह घर का काम-काज करना मुसीबत समझती है। अपने परिवार की सेवा करने में, अपने घर का काम करने में उसको किसी प्रकार के सुख संतोष का अनुभव नहीं होता है। वह बात पीछे इस प्रकार का कथन करती है कि, "ये लोग हैं जिनके लिए मैं जानमारी करती हूं रात-दिन।" तथा, "यहां पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।"

वह अपने लड़के और अपनी लड़की से हर घड़ी किच्-किच् करती है, उन्हें इस बात का ताना देती है कि उनके लिए करते-करते वह मरी जा रही है। परिणाम यह होता है कि लड़का उसको जवाब दे देता है। कोई और निभाने वाला नहीं है। यह बात बहुत बार कही जा चुकी है इस घर में-"मैं पूछता हूं क्यों करती है? किसके लिए करती है?"

इसके बाद सावित्री के सामने सिवाय घर छोड़कर चले जाने के और कोई चारा ही शेष नहीं रह जाता है।

"आज से मैं सिर्फ अपनी जिंदगी को देखूंगी-तुम लोग अपनी-अपनी जिंदगी को खुद देख लेना।"

विडम्बना यह है कि लड़का-लड़की कोई भी सावित्री के इस कथन के प्रति कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं।

वह निहायत बेशर्मी के साथ अपनी लड़की से कह देती है कि वह जगमोहन के साथ चली जाएगी। "जगमोहन को मैंने आज इसलिए फोन किया था।" यह बच्चों की उपस्थिति की परवाह किए बिना जगमोहन से स्पष्ट कह देती है, कि मैं वहां पहुंच गयी जहां पहुंचने से डरती हूं जिन्दगी भर। "...मैं सच कह रही हूं। आज अगर तुम मुझसे कहो कि।"

निष्कर्ष

सावित्री हमारे सामने एक ऐसी नारी के रूप में आती है जो जीवन का लक्ष्य शरीर सुख मानती है, मातृत्व के निर्वाह को वह उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। वह एक ऐसी आधुनिक नारी है

जो सदैव युवती बने रहने के स्वप्न देखती है और बिना कुछ किए दिए सब कुछ पा लेना चाहती है। ऐसी नारी कुंठाग्रस्त होकर क्रोध और क्लेष का जीवन व्यतीत करती है। वह अपने आपको पतित करती है और अपने परिवार के भविष्य को नष्ट कर देती है।

महेन्द्रनाथ जैसे पति को भी यह अस्वीकार करके 'जिमी स्वतंत्र भये बिगरें नारी' लोकोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

गोदान

प्रेमचंद इस सत्य को जानते थे कि "आधुनिक साहित्यिक विधाओं में उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा लेखक जीवन के महत्तर मूल्यों को विवेचित विश्लेषित कर अपने पाठकों को नया प्रकाश दे सकता है।" इसी से स्थान-स्थान पर प्रेमचन्द ने उद्धेश्य के महत्व को स्वीकार ही नहीं स्वयं, ख्यातातित और रूपायित भी किया है। प्रमाणार्थ, उनकी निम्नांकित उक्तियाँ देखिए-

(1) *"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊंचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममे सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है- कम से कम उसका यही उद्धेश्य होना चाहिए।"*

(2) *"वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलम्बित हो। इन्हीं की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्धेश्य है और बिना उद्धेश्य के तो कोई रचना (उपन्यास भी) हो ही नहीं सकती।"*

(3) *"जब हम देखते हैं कि भाँति-भाँति के राजनैतिक, सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी (साहित्यकार) का हृदय न दहल उठे। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।"*

(4) *"जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अंदर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।"*

एकदम सच तो यह है कि "प्रेमचंद प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों का उपयोग समाज-जीवन की आलोचना के लिए किया है। उनका (उपन्यास) साहित्य, देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि वह उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। वस्तुत: वे एक ऐसे उपन्यासकार हैं जो अपने उपन्यासों में सोद्धेश्यता को मानकर चलते हैं।" इसका सर्वाधिक सशक्त और सफल प्रमाण है- उनकी प्रोढ़तम उपन्यास-रचना 'गोदान'।

'गोदान' और उसके उद्देश्य

सन् 1936 में सर्वप्रथम प्रकाशित और कालक्रम से प्रोढ़काल में रचित अन्तिम पूर्ण कृति 'गोदान' वस्तुत: उस काल में रची गई थी जबकि प्रेमचंद बम्बई की फिल्मी पूंजीवादी जिन्दगी को झेल और कड़वाहट भरे अनुभवों को प्राप्त कर चुके थे। नि:संदेह इस काल में वे एक ओर तो स्वयं

ऋण में आकंठ डूबे हुए थे, दूसरी ओर युग की परिस्थितियों और सामन्तवादी -साम्राज्यवादी द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका भरी पृष्ठभूमि में साँस ले रहे थे, देख-सोच और समझ रहे थे। तीसरी ओर, पारिवारिक कष्टों, संघर्षों से जूझ रहे थे और चौथी ओर स्वयं की जीवन-दृष्टि में भी तेज परिवर्तन महसूस कर रहे थे। इसी सबका परिणाम, प्रतिक्रिया 'गोदान' के रूप में अभिव्यक्त हुई अत्यन्त सशक्त, व्यापक और महाउद्धेश्यीय वैचारिकता के साथ। 'गोदान' के महती उद्धेश्य इसी के परिचायक हैं-

1. **वर्ग संघर्ष का व्यापक और विविधरूपी अंकन-** "गोदान की रचना जिन दिनों हुई थी, उन दिनों धर्म, मोक्ष की मान्यतायें महत्वहीन हो गई थी, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में आर्थिक शोषण की इतनी अधिक पीड़ा परिव्याप्त थी कि उसके लिए उसके जीवन की वेदना ही चरम सत्य बन गई थी।" गोदान में लेखक ने इसी पीड़ा और वेदना को वाणी दी है और इसी को विविधता, गहनता और व्यापकता के साथ कहने-दिखाने को रचना का मूल कथ्य या स्थापना बनाया है। निःसंदेह, इस पीड़ा का कारण है- शोषक वर्ग द्वारा सामान्य वर्ग का डटकर शोषण किया जाना- मुख्यतः गाँव में और शहर में भी निम्नवर्ग और उच्च वर्ग में भी। होरी-कथा ग्राम्य शोषण की ओर नगर-पात्रों की कथा नगरीय शोषण को प्रस्तुत करने के साधन हैं और आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि इसके विविध पक्ष हैं।

2. **समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण-** कोई भी सजग उपन्यासकार अपने युगीन जीवन से अप्रभावित नहीं रह सकता, फिर प्रेमचंद तो युग दृष्टा थे, साथ ही साहित्य-सृजन को लोकाधारिता अर्थात् 'लोक का, लोक से, लोक के लिए के समर्थक।' फलतः गोदान का अत्यन्त महत्तम रचना उद्धेश्य बना- समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण, वह भी इतनी व्यापकता, गहनता, विविधता और प्रामाणिकता के साथ कि "गोदान अपनी समकालीन (और परम्परा से चली आ रही) महाजनी सभ्यता के इतिहास का यथार्थ दस्तावेज"बन गया है तो दूसरी ओर भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य भी है।

3. **पूर्वी-पाश्चात्य विचार-संघर्ष और उनमें पूर्व की विजय-** राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के विकास काल में और प्रेमचन्द जैसे राष्ट्रप्रेमी लेखक की कलम से प्रस्तुत 'गोदान' में एक महत् उद्धेश्य बताया गया है- पूर्वी-पाश्चात्य विचारधाराओं और जीवन दृष्टियों के विपरीत को दिखाते हुए पूर्वी अर्थात् भारतीय जीवन-दृष्टि की विजय की स्थापना करना। मालती-मेहता-कथा इसका सशक्त माध्यम है जिसमें पाश्चात्य रंग-ढंग में आकंठ डूबी मालती का 'उद्धार या हृदय परिवर्तन भारतीय रंग के अनुयायी मेहता की कृपा संगति से होता है।'

4. **विभिन्न समस्याओं का चित्रण और समाधान-** भारतीय समाज में विभिन्न रूपों, स्तरों और अनिवार्यः प्रायः स्थितियों में प्रचलित नाना समस्याओं को अंकित करने के साथ-साथ, कहीं-कहीं लेखक ने उनसे मुक्ति पाने के समाधान भी बताये हैं, यद्यपि मुख्यतः प्रेमचंद इनके कड़वे रूपों-प्रतिक्रियाओं और उनसे प्रभावित हुई मानवीय स्थितियों को एकदम यथार्थ रूप में अंकित करने में ही रमे हैं। ये समस्याएँ या प्रश्न पाठक को झकझोरते ही नहीं, पुर्नमूल्यांकन करने, कुछ सोचने, कुछ करने को भी बाध्य-सा कर देते हैं। ऐसी ही एक मूल प्रतीकात्मक समस्या है- गोदान जो गो-धन, गो-मन, गो-मान, और गो-दान विभिन्न रूप-स्तरों पर आद्योपान्त व्याप्त है- वस्तुतः अपने आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक रूप में।

5. **मानवतावाद (और भावी मानव) की प्रतिष्ठा-** वस्तुतः विचारों से प्रेमचन्द मानवतावादी थे और 'गोदान'में उन्होंने जीवन के कड़वे यथार्थों को अंकित करते हुए अपने मान्य आदर्शों को मुखर करना ही इष्ट माना है। प्रेमचंद का यह आदर्श, निःसंदेह पहली बार, न तो कोरा सैद्धांतिक या वायवी है न कोरा अव्यवहार्य। दूसरी ओर, बढ़ती हुई अर्थ विषमता और उसके दिखने वाले

दुष्परिणामों की यथास्थिति के परिप्रेक्ष्य में नव मानव और उसके नव मानवतावाद का संकेतक है। होरी और मेहता का सम्मिलित रूप (अर्थात होरी की कर्मठता और मेहता का चिंतन) इसी का प्रमाण है।

6. **उदात्त मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा-** अपने समग्र प्रभाव में 'गोदान' उदात्त मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। होरी का यथार्थ भरा जीवन कायरता भरी विवशता का ही नहीं, कदम-कदम पर परास्त हुए भोले-भोले मानव की अनथक सहनशीलता, धैर्य, सहिष्णुता, तटस्थता,अहिंसा आदि मानवीय मूल्यों की महत् प्रतिष्ठा करता है तो मेहता का बौद्धिक चिन्तन लोक कल्याण, मानवोद्धा, नैतिकता, साहस, स्पष्टवादिता, आवश्यक परिवर्तन, मानव महत्ता, अन्याय शोषण के सन्तुलित विरोध, आत्मत्याग, पर सेवा जनहित और समग्रत: उदात्त मानव मूल्यों की। धनिया की नारी सुलभ सहजता और मालती का आदर्शोंमुख बढ़ता पहुंचा रूप भी वस्तुत: इसी का प्रतिष्ठापक है तो रायसाहब का पराजय भरा मन और खन्ना का हृदय परिवर्तन तथा गोबर का युवकोचित विद्रोह भी इसी स्वर के संकेतक हैं।

उपसंहार

इस प्रकार यह बात एकदम स्पष्ट है कि 'गोदान' केवल सोद्धेश्य ही नहीं, महत् उद्धेश्यों से परिपूर्ण महत् कृति है जिसमें लेखक ने स्व कथ्य को सभी सम्भव उपायों से महत् मानवोचित सन्देश के रूप में अत्यन्त सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाकर प्रस्तुत किया है। निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि "प्रेमचंद जी के उपन्यास उच्चतर उद्धेश्यों की सिद्धि करते है और उनका बड़ा ही मंगलमय प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है। वे संकीर्णता, अन्याय और अज्ञान के भीतर से मनुष्य को शाँति, प्रेम और आनंद की ओर ले जाते हैं। जीवन में कर्म की गरिमा का प्रतिपादन कर वे मनुष्य की अपराजेय शक्ति का उद्घोष करते हैं।"हमें ऐसा आभासित होने लगता है कि जैसे उनके साहित्य में डूबकर उनका पाठक आत्मा की ऊंचाईयों को बार-बार छूता है बार-बार उसका अन्त:करण एक प्रकार की भावना से भर जाता है प्रेमचंदजी ने जिन मानव-मूल्यों की स्थापना की है, जीवन के स्थायी और सच्चे मूल्य वे ही हैं। गोदान नि:संदेह इसी का सर्वोत्तम प्रमाण है जो अपने महत् उद्धेश्यों और उनके सुष्ठु प्रतिपादन के फलस्वरूप काल या स्थान की नहीं वरन् कालातीत और स्थानातीत बनकर युग-युग की अमर कृति बन गया है। नि:संदेह अपने इसी उद्धेश्य के कारण "गोदान साहित्य को मनोरंजकता के रंगमहल से निकालकर जनता के बीच में प्रतिष्ठित करने की कहानी है।"भारतीय संस्कृति और लोक परम्परा को साथ लेकर चलने वाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का यथार्थ चित्र है और संस्कृति विरोधी शोषक वर्गों की महाजनी सभ्यता के काले कारनामों का इतिहास। हमारे वर्ग जीवन की पूर्णता ही गोदन की पूर्णता है। यह अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसव व्यथा भी। गोदान उपन्यास की शैली में भारतीय जीवन का महाकाव्य है।

गोदान में मुख्यत: (आधिकारिक) कथा दो हैं- ग्रामीण तथा नगरीय अर्थात् होरी की कथा तथा मालती: मेहता एवं उनके संगी-साथी नगरीय लोगों की कथा। दोनों ही कथाएं आद्योपान्त समान्तर रूप से साथ-साथ चलती हैं। इनको परस्पर सम्बन्धित किया गया है। राय साहब अमरपालसिंह की कथा में जो ग्राम्य और नगरीय दोनों कथाओं का स्पर्श करने वाली है। गहराई से देखें तो इन तीनों में प्रधान कथा होरी वाली ही है (क्योंकि उपन्यास का आरम्भ और अंत एवं

समग्र घटनाक्रम का विकास इसी से होता है ।) इस मूल या प्रधान कथा को बल देने वाले कुछ अन्य प्रमुख कथा प्रसंग - गोबर, झुनिया, सिलिया, मातादीन, भोला अहीर और उसकी पत्नी की कथाएँ। इसी भाँति हीरा, पुनिया, झिंगुरी सिंह, दातादीन, मातादीन, पटेश्वरी, दुलारी, सहुआइन, सोना, रूपा आदि के प्रसंग इसको गतिशीलता प्रदान करते हैं तथा इनमें से कुछ के पूर्ववृत (अंतर्कथाओं) का कार्य करते हैं। उधर खन्ना, गोविन्दी, खान, मिर्जा, तंखा, चुहिया, सूर्यप्रताप, रुद्रप्रताप आदि विषयक प्रसंग नगरीय कथा को सहायता पहुँचाते हैं। निःसंदेह इतने व्यापक पटल पर व्यापक कथा प्रसंगों का साथ-साथ निर्वाह करना, इन्हें समेट कर संगुफित करना लेखक के कथा कौशल के साक्षी हैं।

डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, बाबू गुलाबराय, श्रीनंददुलारे वाजपेयी आदि कुछ आलोचकों ने 'गोदान' की उर्पयुक्त कथाओं को परस्पर असम्बद्ध मान कर दोषपूर्ण बताया है। इस सन्दर्भ में कहा गया है- "गोदान उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र (अपनी-अपनी कथा प्रसंगों के साथ) एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं जिनका एक दूसरे के जीवन क्रम से बहुत कम सम्पर्क है। वे कभी-कभी आते जाते मिल लेते हैं और कभी-कभी किसी बात पर झगड़ा भी कर लेते हैं परंतु न तो उनके मिलने में और न झगड़ने में ही कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसे स्थायी कहा जा सके।" दूसरे शब्दों में 'गोदान की कथावस्तु में दो सर्वथा भिन्न, सर्वथा असम्बद्ध, कथाओं का बेमेल सम्मिश्रण किया गया है।'

गहराई से देखें और ध्यान से सोचें तो सत्य इतना ही नहीं है। कारण ? शहरी और ग्रामीण, किसी भी कथा को, यदि उपन्यास से निकाल दिया जाय तो कथा से भी अधिक उसके इष्ट को क्षति पहुंचेगी। दूसरी ओर, यह सत्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि उपन्यास का सर्वांगीण कथ्य, विस्तृत यथार्थ फलज तथा समस्त देशीय स्थिति चित्रण उपर्युक्त कथाओं की समग्रता में ही प्रतिफलित हो सकता था, एकांगी में नही। वास्तविकता तो प्रो. प्रकाशचन्द गुप्त के शब्दों में यह है कि 'गोदान में भी कथा का स्रोत प्रविरण है। कथा के ऊपर प्रेमचन्द का पूरा अधिकार है- कभी ग्राम में, कभी नगर में, बड़े-बड़े रईसों में, दीन दुखियों में उनकी कल्पना स्वछन्द चक्कर लगाती है।'इस पर भी लेखक कथा के प्रस्तुतीकरण से शास्त्रीय स्थितियों और आवश्यक गुणों का पूरा-पूरा निर्वाह करता हुआ मिलता है।

गोदान की कथा 36 परिच्छेदों में विभक्त हैं। प्रायः एक ही कथा कई-कई परिच्छेदों तक चलती है और फिर किसी अन्य कथा प्रसंग का आरम्भ किया गया मिलता है। फिर भी समग्रतः देखें तो कथा विकास की स्थितियाँ आसानी से और स्पष्टतः मिल जाती हैं। होरी धनिया से कथा की आरम्भ स्थिति का आरम्भ होता है जो भोला द्वारा होरी के बैल खोलकर ले जाने तक चलती है। इसी भाग में लेखक ने समस्या, उद्धेश्य तथा पात्रों के स्वरूपादि को प्रस्तुत कर दिया है। बैलों के जाने से समस्या और गहरा उठती है और यहीं से कथा की मध्य या उत्कर्ष स्थिति का श्रीगणेश हो जाता है। शहरी बुद्धिवादी वर्ग (मालती-मेहता-प्रसंग) कथा को नया मोड़ देता है और यहीं से शहरी और ग्राम्य पात्रों की समस्यायें विकोसोमुख होती जाती हैं। प्रासांगिक पात्र पूर्णता प्राप्त करते हैं तथा कथा को नियति तक पहुँचा देते हैं। मालती-मेहता, खन्ना, गोविन्दी, गोबर-झुनिया का पुर्नमिलन, रायसाहब की विजय-पराजय तथा होरी का मरणासन्न आदि चरमावस्था की संकेतक घटनायें हैं तो होरी की अकाल मृत्यु ही वह चरमबिन्दु है जिस पर कथा की समाप्ति होती है।

ध्यान से देखें तो कुछेक प्रसंगों में जो निःसंदेह जबरन जोड़े गये हैं यह कथा न तो ग्राम्य कथा से सम्बन्धित है न नगरीय कथा से । ये केवल रायसाहब के भी मित्र मात्र हैं अतएव उनकी भी किसी असहायता या समस्या में काम नहीं आते हैं। निःसंदेह दोनों ही चरित्र न तो ग्राम्य समाज के और न शहरी या अर्धशहरी पूँजीपति शोषक समाज के प्रतिनिधि हैं। दोनों ही चरित्र अपनी-अपनी समस्याओं, लक्ष्यों, प्रश्नों और विचारधारादि में, अन्य सबसे अलग हैं और अपना व्यक्तित्व तथा

कथाप्रसंग भी स्वतन्त्र रूप से रखते हैं वे न ग्रामीणों की भाँति शोषित हैं, न शहरियों की भाँति शोषक। इसी प्रकार "मालती- मेहता की कथा न तो कोई विषमता ही दिखलाती है और न ग्रामीण जीवन में कोई परिवर्तन लाने के लिए लिखी गई है। हाँ, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वह एक स्वतन्त्र कथा के रूप में अपना महत्व रख सकती है" तथा एक प्रकार से 'लघु उपन्यास'का काम दे सकती है।

निःसंदेह मालती और मेहता की सम्मिलित कथा पर उपर्युक्त बातें सही उतर सकती हैं किन्तु यदि दोनों पात्रों और उनके क्रिया-कलाप, रूप, विचारों आदि को अलग-अलग करके देखें तो मानना पड़ता है कि दोनों का ही उपन्यास की कथा को सम्पूर्ण बनाने में भरपूर योग रहा है। भारतीय समाज में, आज भी एक ऐसा बौद्धिक वर्ग है जो एक ओर दलितों से सहानुभूति रखता है और शोषकों से विरोध यद्यपि वह वर्ग मुख्यतः बौद्धिक ही बना रहता है। प्रो. मेहता इसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। दूसरे स्वयं लेखक ने भी उन्हीं को अपना विचार-वाहक बनाया है। तीसरे अमीर-गरीब के बीच की कड़ी का कार्य भी वही करते हैं। इसी प्रकार मिस मालती भी एक ओर यदि समकालीन ग्रामीण समाज की नारीगत स्थिति की विषमता को दिखाती हैं तो दूसरी ओर उसकी कथा नगरीय समाज की पाश्चात्य से प्रभावित तथाकथित आधुनिकाओं की अंततः निराश्रिता एकाकी और दुःखद स्थिति को। मालती-मेहता की प्रेमकथा, मित्रवत बने रहने और विवाह न करने के दुष्परिणामों को भी मुखर करती है। सबसे अधिक जो लेखक की नारी विषयक भारतीयता से भरी कल्पना, भारतीय नारी की आदर्शमयता के प्रति श्रद्धा तथा समकालीन नगरीय समाज में पल्लवित-विकसित होने वाले नारी वर्ग का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व भी मालती और उसकी कथा से अभिव्यक्त कराया गया है- उपन्यास-कथा को सर्वांगीण बनाने हेतु। फलतः बाहर से जोड़ी गयी होने पर भी, मालती-मेहता कथा उपन्यास में लाभप्रद ही सिद्ध होती है।

कुछ असंगतियाँ - इस पर भी 'गोदान' की कथा सर्वगुण-सम्पन्न नहीं कही जा सकती है। कारण ? सर्वप्रथम लेखक ने कई ऐसे प्रसंगों का सृजन-समावेश किया है जो अनावश्यक हैं और जिनको पूर्णतया निकाल देने पर भी कथा पर कुछ फर्क नहीं पड़ता। कुश्ती का आयोजन, शिकार-प्रसंग, कोदई का मान लीला-प्रसंग, ठाकुर ध्यानसिंह का पूजा-पाठ, पड़ोसी पति-पत्नी के झगड़े में गोबर का बेबात कूदना, मिर्जा खुर्शेद की कथा तथा अमरपालसिंह की पुत्री की तलाक विषयक कथा आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। दूसरे कुछ प्रसंग अविश्वसनीय भी बन गये हैं यथा प्रो. मेहता का पठान बनकर सबको मूर्ख बना देना, गोबर के बेटे की बीमारी (चेचक) पर झुनिया का सोते रहना और मालती का रात-रात भर बच्चे को गोद में उठाये घूमना, मालती का एकदम आदर्श भरा भारतीय नारी बन जाना, झुनिया का शहरी पंडित की दुर्गति करना, सोना जैसी सामान्य ग्रामीण स्तर की लड़की का पति को दहेज न लेने का संदेश भेजना, घर आयी सिलिया का जबरन अपमान करना, रूपा का चुपचाप रामसेवक जैसे वृद्धप्रायः से विवाह करने को तैयार हो जाना आदि। तीसरे, धनिया-पुनिया के झगडे में होरी का खाली खाट को देखना और उधर उपन्यासकार का पूर्व स्मृति-पद्धति से झुनिया-गोबर के प्रेमालापों का वर्णन करना इसी का ये प्रमाण है कि कहीं-कहीं वर्णन असंगत स्थलों पर भी कर दिये गए हैं। इस संदर्भ में डॉ. राजपाल शर्मा ने सशक्त शब्दों में कहा है- " चतुर्थ परिच्छेद में आयी हुई गाय को लाते समय धनिया और गोबर में क्या बातें हुई थीं, इसका वर्णन पाँचवे परिच्छेद में होने पर भी उसका सम्बन्ध चतुर्थ परिच्छेद के कई वाक्यों और परिस्थितियों द्वारा उससे जोड़ दिया गया है किनतु छठे परिच्छेद का आरम्भ इस वाक्य से करके (गोबर जब अकेला गाय को हाँकता हुआ चला) तथा अगली ही साँस में धनुष-यज्ञ का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने सारा गुड़ ही गोबर कर दिया है। समझ में नहीं आता कि धनुष-यज्ञ के वर्णन से पूर्व इस एक काव्य की क्या विशेषता थी।" यहाँ पर यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण उपन्यास में इस प्रकार की असंगति का यही एकमात्र प्रमाण है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुछेक अपवादों और दोषों को छोड़ दें तो 'गोदान' का कथा सौष्ठव एक ओर यदि अपने आप में 'विशिष्ट' है तो साथ ही साथ नाना विन्यासात्मक गुणों से युक्त भी। उसमें लेखक ने अपने कथाशिल्प का पूरा-पूरा परिचय तो दिया ही है, उसको नाना कथागत विशेषताओं से परिपूर्ण भी कर दिया गया है। उसमें एक ओर यदि लेखक के कथा कौशल को पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व मिलता है तो शास्त्रीय कसौटी पर भी 'गोदान' की कथा अनेकांशों में खरी ही सिद्ध हुई मिलती है।

'गोदान' में कृषक-जीवन और कृषक-समाज का करुण चित्रण हुआ है। इसमें कृषक को नष्ट करने के लिए साहूकार, पटवारी,दरोगा, जमींदार, और उसके कारिंदे, पंच, ढोंगी, धर्म के ठेकेदार, मिल मालिक, पूँजीपति आदि सभी एक जुट होकर आक्रमण कर रहे हैं। गाँव का जमींदार उनके खेतों को बेदखली करता, बेगार करवाता, नजराने के रूप में उनके मुंह का ग्रास छीन लेता और शहर की मिलें चलवाने के साहूकारों के षड़यंत्र से किसान के हाथ में नहीं पहुंचने पाता। 'गोदान'में कृषक और ग्राम्य समाज पर शोषण के निरन्तर चलते हुए चक्र को प्रेमचन्द ने प्रस्तुत कर दिया है।

दयनीय ग्राम्य जीवन- ग्राम का प्रत्येक कृषक परिवार आर्थिक अभाव की भीषण चक्की में पिस रहा है। वह अशिक्षित होने के कारण अन्धविश्वासों, भाग्यवाद तथा अन्य सामाजिक दुर्गुणों से ग्रस्त है। स्त्रियों की दीन दशा चरम सीमा पर पहुंची हुई है। गाँवों में लड़ाई-झगड़ों का व्यापक रूप है। सम्मिलत परिवार प्रथा टूटती जा रही है। होरी को संकटपूर्ण परिस्थितियों में भाइयों से सहयोग के स्थान पर असहयोग ही मिलता है।घरों में स्त्री पुरूष का लडाई झगड़ा और मारपीट साधारण सी बात है। होरी धनिया में नित्यप्रति झगड़ा होता है। होरी उसकी पिटाई भी करता है। भोला का पुत्र कामता भोला को मार-पीटकर घर से निकाल देता है तो मथुरा का बाप मथुरा को जूतों से मारता है।

दुराचार और पाखण्ड- सारा ग्राम्य समाज दुराचार ग्रस्त है। जो स्थिति बेलारी गाँव की है, ठीक वही स्थिति प्राय- प्रत्येक भारतीय ग्राम की है। 'गोदान' का मातादीन चमारिन रखे हुए है। चमार उसके मुख में गाय की हड्डी डाल देते हैं। वह काशी पंडित बुलाकर और दो सौ रूपए खर्च करके प्रायश्चित करा लेता है। झिंगुरीसिंह ब्राम्हणी को घर में रखे हैं। नोखेपन ने अहीरिन को बिठा रखा है। इन समर्थ लोगों के विरुद्ध गाँव में कोई आवाज तक नहीं उठाता ये लोग गांव के पंच बने हुए हैं, परन्तु जब गोबर झुनिया को घर ले जाता है, तब इन धर्म के ठेकेदारों की दृष्टि में गॉव की बहू-बेटियों की इज्जत खतरे में पड़ जाती है। पंजायत होरी पर दण्ड लगाती है। वह दण्ड में नगद तथा अनाज लेकर उसे दाने-दाने को मुहताज बना देती है। धर्म के पाखण्ड और रूढ़ियों की आड़ में ग्राम समाज में अनैतिकता का बोलबाला है। दातादीन कसकर सूद लेकर किसानों का शोषण करते हुए ग्राम्य में पूज्य बने हुए हैं। मातादीन चमारिन को रखे हुए हैं, किन्तु कथा भागवत बाँचने के कारण पूज्य हैं। भाग्यवाद शोषित कृषकों की विद्रोह भावना को दबाए रखता है। "होरी का यह विश्वास है कि उसे संकट इसलिए झेलना पड़ते हैं, क्योंकि उसके भाग्य में ऐसा ही लिखा है। राय साहब इसलिए मौज करते हैं, क्योंकि उन्होंने पूर्व जन्म में पुण्य कर्म किये होंगे।"

ग्रामों में गोबर के रूप में एक ऐसी पीढ़ी का भी उदय हो रहा है जो भाग्यवाद को पाखण्ड समझकर उसका विरोध करती है- "मगर यह सब कहने की बातें हैं।"

आर्थिक अभाव ग्रस्तता- गाँव में शायद ही कोई ऐसा किसान मिले, जिसकी बेदखली न हुई हो। उसे गाँव का कारिन्दा, साहूकार, पटवारी, पुलिस आदि लूटते रहते हैं। किसान को दिये हुए लगान की रसीद नहीं मिलती। साहूकार उसे 50 रूपए उधार देकर 100 लिख देता है और दो सौ रुपए उससे वसूल करता है। दातादीन होरी को धमका देता है, उसने रुपए न लौटाए तो मृत्यु के पश्चात वह ब्रम्हराक्षस बनकर उसके कुटुम्ब का विनाश कर देगा। आर्थिक झंझावातों से संघर्ष करती हुई धनिया छत्तीसवें वर्ष में ही बुढ़िया हो जाती है। घी, दूत, जो अंजन लगाने तक को भी नहीं मिलता। इस आर्थिक अभाव से ग्रसित किसान होरी के शब्दों मे यही सोचता है कि 'उसे साठ तक पहुंचने की नौबत नहीं आने पाएगी।' होरी सचमुच पहले ही चल देता है। होरी अपनी आर्थिक समस्या को जीवन पर्यन्त सुलझा नहीं पाता। ग्रामीण समाज की उपर्युक्त विशेषताओं ने कृषक जीवन को नरक तुल्य बना दिया है।

ग्राम्य समाज की विशेषताएँ- आर्थिक प्रतारणा और शोषण के चक्र में पिसते हुए ग्राम्य समाज की परम्परागत कुछ सांस्कृतिक विशेषताएं भी हैं। होली का उत्सव भी उत्साह से मनाते हैं इस अवसर पर सब भेद भाव भूल जाते हैं। गाँव के युवकों का चरित्र पतित नहीं है। गाँव वाले बुराई को बुराई ही कहते हैं। नोहरी के कारण भोला की दुर्दशा देखकर होरी उससे अपने गाँव लौट जाने की बात कहता है। गाँव में सब एक-दूसरे की खुशी में सम्मिलित होते हैं। होरी की गाय देखने के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ता है। होरी इतना ईमानदार है कि लिखत पढ़त न होने पर भी सबका रुपया चुकाना चाहता है। गोबर दातादीन को बैंक दर पर ब्याज देने की बात कहता है, इस पर होरी ईमानदारी के आदर्श का आंचल पकड़ता हुआ कहता है ... नीति हाथ से न छोड़नी चाहिए बेटा। अपनी-अपनी करनी अपने-अपने साथ है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'गोदान'में प्रेमचन्द ने कृषक और ग्राम्य समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'गोदान'समग्र ग्राम्य समाज का यथार्थ प्रतिबिंब सामने ला देता है, इस प्रकार यह भारतीय ग्राम्य जीवन का दर्पण है। होरी में सामान्य कृषकों की समस्त अच्छाई और बुराई मौजूद है- "किस प्रकार अपनी परिस्थितियों और संस्कारों से पिसता हुआ वह दरिद्र प्राणी करूण मृत्यु प्राप्त करता है। किस प्रकार सभी का पेट भरता हुआ वह स्वयं अपने जीवन की किसी सामान्य इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ है, यह सब कुछ दिखाना गोदान का लक्ष्य है।"- **विश्वम्भर मानव**

"गोदान भारतीय-संस्कृति और लोक परम्परा को साथ लेकर चलने वाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन और तपस्या का यथार्थ चित्र है। - **गोपालकृष्ण कौल"**

आदर्श और यथार्थ- साहित्य में मानव-जीवन और समाज का चित्रण होता है। जब साहित्यकार मानव-जीवन और समाज का ऑखों-देखा सच्चा चित्रण करता है, तब उसे यथार्थवादी चित्रण कहा जाता है और जब वह आंखों देखे रूप को अपनी कला और कल्पना में संस्कृत कर मानवमात्र के हितकारी रूप में उसे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है, तब उसे आदर्शवादी चित्रण

कहा जाता है। यथार्थ चित्रण में प्राय: समानता होती है, परनतु साहित्यकारों के आदर्श में अन्तर होने के कारण आदर्शवादी चित्रण में प्राय: भिन्नता रहती है। प्रेमचन्द ने मानवजीवन और मानव-समाज की व्याख्या उपर्युक्त दोनों रूपों में की है, परन्तु उनके यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों ही प्रकार के चित्रण में संयत्र है। उन्हें "अमंगल यथार्थ अग्राह्य है, मंगलमय यथार्थ संग्रहणीय है।"उनके 'गोदान' में मंगलमय यथार्थ का ही रूप मिलता है। यथार्थ की कुरूपता को मिटाकर उसे उन्होंने मानव-कल्याणकारी रूप में रखा है।

प्रेमचन्द्र की दृष्टि में यथार्थवाद और आदर्शवाद- प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों तथा उपन्यास-कला के विवेचन में स्थान-स्थान पर यथार्थवाद और आदर्शवाद के स्वरूप को स्पष्ट किया है। प्रेमचन्द यथार्थ और आदर्श का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

यथार्थवादी चरित्रों को लेखक (पाठक) के सामने यथार्थ रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा... उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं। .....यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमें निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।..... आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ की वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार-कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है।

प्रेमचन्द यथार्थवाद और आदर्शवाद को स्पष्ट करते हुए साहित्य में दोनों के समन्वय को महत्व देते हैं- "यथार्थवाद यदि हमारी आँखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण् है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को चित्रित कर बैठें, जो सिद्धांतों के मूर्तिमान रूप हों- जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल है।..... इसलिए वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ आदर्श और यथार्थ का समन्वय हो गया हो, उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते है। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।"

प्रेमचंद के उपन्यासों में आदर्शवाद यथार्थ की भूमि पर आधारित है। उन्होंने पहले यथार्थ का चित्रण करते हुए वास्तविक स्थिति की विषमता का उद्घाटन किया है, फिर उन्होंने यथार्थ और आदर्श की स्थापना की है। 'गोदान' में वे समाज के कटु यथार्थ का चित्रण करते हैं। उन्होंने 'गोदान' में अव्यावहारिक आदर्शवाद की विफलता का चित्रण किया है।

प्रेमचन्द न तो पूर्ण रूप से यथार्थवादी रहे और न आदर्शवादी रहे। वे स्वयं को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी मानते थे। यह बात दूसरी है कि उनको अपने इस समन्वित आदर्श में सफलता नहीं मिली। 'कर्मभूमि'तक प्रेमचन्द यथार्थवादी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते है, किन्तु निष्कर्ष आदर्शवादी देते हैं। परन्तु अपने इस निष्कर्ष में सफलता न देखकर वे वर्तमान व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक मानते हैं। 'गोदान' में समाज की वर्तमान दुर्दशा का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करके वे यह तथ्य उपस्थित कर देते हैं कि वर्तमान समाज की वैषम्य एवं शोषण में युक्त ऐसी दयनीय स्थिति है, जिसमें होरी जैसा कर्मठ व्यक्ति साठ तक न पहुँचकर कारुणिक मृत्यु प्राप्त करता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के सम्बन्ध में अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ते हुए देखे जाते हैं। वे हमारे समाज का यथार्थ कच्चा चिट्ठा सामने रखकर अन्याय और अत्याचार का डटकर विरोध कर समतामूलक ऐसे समाज की स्थापना का संदेश देते हैं, जिसमें शोषण का अबाध चक्र न चलता हो। प्रेमचन्द 'गोदान' में

यही कहते हैं कि तुम्हारी असली स्थिति यह है, जिसका निमूर्लन करके ही तुमको सच्चा सुख और शान्ति मिल सकती है।

'गोदान'के यथार्थवाद को मर्यादित उदात्त् यथार्थवाद की संज्ञा दी जा सकती है। उनका यथार्थ चित्रण यथार्थवाद के नाम पर पाठकों में कुत्सा और कुरुचि उत्पन्न नहीं करता, वह पाठकों के हृदय पर मार्मिक और गहरा प्रभाव डालता है। 'गोदान' के पात्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें व्यक्ति और वर्ग की विशेषताओं का ऐसा समन्वय हुआ है कि उनका व्यक्तित्व सजीव हो उठा है। 'गोदान' का यथार्थवादी चित्रण निष्क्रियता को त्यागकर आत्मरक्षा का संदेश देता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द समस्याओं का आदर्शवादी हल नहीं खोजते, वे यथार्थ का ऐसा सशक्त, सजीव और कारुणिक चित्र प्रस्तुत कर देते हैं कि पाठक दयनीय स्थिति का उन्मूलन कर उससे प्राण पाने की प्रेरणा कर लेता है।

'गोदान' में यथार्थ है, उसमें आदर्श का रूप कहीं नहीं हो पाया है। प्रेमचन्द ने जहाँ भी आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया वहाँ उनकी कला धूमिल हो गई- "प्रेमचन्द का आदर्शवाद उनकी कृतियों के एक ही पहलू को बिगाड़ता है- वह है समस्या से सुन्दर परिणाम निकालने वाला, परंतु उनके अन्तर में बसा हुआ यथार्थवाद समस्या की जटिलता चित्रित करने में बहुत कम मेल-मुलाहिजा करता है, जहाँ उनका आदर्शवाद दब गया और उन्होंने बरबस परिणाम को ढूँढने का प्रयत्न नहीं किया, समस्या को सामने रखकर सन्तोष कर लिया है, वहीं वे अद्वितीय हैं।"

'गोदान' प्रेमचन्द की उपन्यास कला का चरमोत्कर्ष है। इसमें पूर्वाग्रह छोड़कर वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी की भूमि पर आ गए है। अयथार्थ, अव्यावहारिक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी की विफलता देखकर वे 'गोदान' में यथार्थवादी हो गये। अत: उनकी मान्यता और कला का विकास दृष्टि में रखने से 'गोदान' के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की यह मान्यता यहाँ अप्रभावी हो जाती है कि , "उपन्यास वे ही उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जिनमें यथार्थ और आदर्श का पूर्ण सामंजस्य हो।"

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोदान यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण की असफलता का अनुभव किया, वे आदर्शवाद का मोह त्यागकर समाज का यथार्थ विवरण सामने रख देते हैं। साथ ही ये संकेत देते हैं कि वर्तमान सड़ी-गली और दोषपूर्ण व्यवस्था में सुधार सम्भव नहीं है, इसे तो समूल हटाना ही है, इसके नष्ट होने पर ही नए सिरे से मंगलमय नव-निर्माण हो सकता है। विचारक मेहता के रूप में आदर्शवाद की कुछ झलक अवश्य आ जाती है, परन्तु यह झलक आदर्शवाद की अव्यावहारिकता और पराजय ही को सूचित करती है। जीवन भर कर्मठ रहकर और संघर्ष करता होरी दयनीय और कारुणिक स्थिति में दम तोड़ देता है। यह आदर्शवाद का दम तोड़ता है। अत: गोदान पूर्ण रूप से यथार्थवादी उपन्यास है उसमें भारतीय समाज की तत्कालीन स्थिति का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत हुआ है।

होरी का चरित्र

स्वतंत्रता-पूर्व का अवध प्रांत और इसी का सामान्य, उपेक्षित और साधारण सा गांव-बेलारी इसी का सामान्य सा निवासी है-होरीराम महतो जो प्राय: अपनी विपन्नावस्था के कारण 'होरी' के नाम से पुकारा जाता है। यूं, कभी अतीत में उसने मटरगस्ती भी की थी और आराम से पसर कर 'सोने' का सुख भी भोगा था, नयी-ब्याहता पत्नी से हंसी-ठट्ठा किया था और उसके पीछे-पीछे मनुहार करते हुए ससुराल भी जा पहुंचा था किन्तु 'मात्र पांच बीघे की खेती, सम्मिलित और बाद में अपने

ही अपेक्षाकृत बड़े परिवार की जिम्मेदारियों तथा उससे भी कहीं अधिक चहुंदिशी के निरंतर के शोषण-उत्पीड़न ने 'चालीसे'तक पहुंचते-पहुंचते ही उसकी स्थिति यह कर दी थी कि "गहरे सांवले, पिचके हुए चेहरे" वाले होरी को लगने लगा था कि "साठ तक पहुंचने की नौबत न आने पाएगी, इससे पहले ही चल देंगे।"यूं, वह "दूसरे के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हुई देखकर "उन पांवों को सहलाने में ही कुशल" मानता है किन्तु निरंतर का शोषण, रोज का उत्पीड़न और सुरसा की भांति मुंह फाड़कर आती हुई समस्याओं-परिस्थितियों से घिरा फंसा, "तार-तार कंबल, फटी हुई मिर्जई और गीली पुआल के बिस्तर' की जमा-पूंजी का उपयोग करते-करते तिल-तिल कर मरता' रहता है और अंततः एक दिन शोषणजन्य निर्धनता में, लू लगने मात्र से, चिकित्सा के अभाव में दम तोड़ देता है-एकमात्र गाय की लालसा को मन में ही संजोए हुए।

'गोदान' में चित्रित अपनी इस जीवन-कथा में होरी मुख्यतः 'अर्थ' और 'धर्म' के द्वंद्व का माध्यम है जिसमें 'धर्म'तो परास्त नहीं होता किन्तु 'अर्थ'दारिद्रय बनकर उसे निगल लेता है, लाख चेष्टाओं के बावजूद भी होरी उससे बच नहीं पाता।

होरी का चरित्रांकन

एक व्यक्ति के रूप में, होरी किसान है (और बाद में उसी का समवर्गीय मजदूर)। किसान की सारी अच्छाई-बुराई उसकी नस-नस में व्याप्त है। "हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। यूं, वह अपने को इतने पर ही सौभाग्यशाली या भाग्यवान मानता है कि-खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख-देखकर राम-राम करते और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे... जब उनका आदर करते हैं ...यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महंतों भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।"

सामान्यतः, वह एक निर्धन किसान है और उसकी सीमाओं को जानता, समझता है। उसे अपने अधिकारों की नहीं, कर्तव्यपालन की ही चिंता रहती है और इसी में अंत तक वह खटता रहता है-एक आसामी, एक पति, एक भाई, एक पिता, एक श्वसुर के रूप में। "होरी का अपना मनोवैज्ञानिक स्तर है, उसके कार्य करने की विशिष्ट प्रणाली है, उसकी प्रतिक्रियाएं भी "टिपिकल"है जो केवल होरी जैसे व्यक्ति में ही संभव है।" एक सामान्य किसान की तरह असामी होने और अपनी गर्दन फंसी होने के कारण रायसाहब की जी-हजूरी, करना शगुन देने के आदेश को सिर झुकाकर स्वीकार करना, धनुष-लीला में माली का काम पाकर ही अपने आप को धन्य और बड़ा महत्वपूर्ण मान बैठना आदि ही या पंचों द्वारा निर्धारित किए गए डांड-दंड को, तन-पेट काटकर भी भरना, हुक्का-पानी बंद और बिरादरी-बाहर किए जाने की आशंका मात्र पर भयभीत हो जाना, दरोगाजी को बतौर रिश्वत छिपाकर रुपए देना आदि काम उसके इसी सामान्य स्तर के परिचायक हैं। इसी प्रकार 'गाय'के आने की संभावना मात्र पर 'गोबर को दूध मिलेगा'से लेकर 'द्वार की शोभा बढ़ेगी',तक की कल्पनाएं करना, धनिया की पूर्व स्थिति को याद करके उसके प्रति दयार्द्र हो उठना, भाई हीरा का एकदम नाजायज पक्ष लेते हुए झूठा न्याय देना, हीरा के पलायन करने के उपरांत उसकी पत्नी पुनिया की पूरी-पूरी सहायता करना, निराश्रिता झुनिया को आश्रय देना तथा सोना-रूपा के विवाह की निरंतर चिंता करते हुए जैसे-जैसे इस कर्तव्य को भी संपन्न करना आदि उसके सभी कार्य उसकी कर्तव्यशीलता के ही साक्षी हैं।

होरी धर्म-भीरू और धर्म सहिष्णु है। अपनी वर्तमान, विपन्नावस्था को पूर्व जन्म का परिणाम मानना, 'राय साहब को मालिक और राजा' मानना घर आए भोला का सत्कार करना, हीरा-शोभा की आलोचनाओं और दुष्कर्मों को न सुन पाना बांस वाले से सौदा करते-करते भी भयभीत बने रहना

तथा सोना-विवाह पर 'कुशकन्या देकर किसे मुंह दिखाएगा' की चिंता में ग्रस्त रहना उसके उसी भीरूपन के परिचायक हैं।

होरी अति का सहनशील है-सच में तो कायरता की सीमा तक। गांव का समस्त शोषक वर्ग दातादीन, परमेसरी, भोला, सहुआइन आदि-की ही नहीं, स्वयं के भाइयों तथा पत्नी पुत्र के वाक्रबाणों को भी वह चुपचाप झेल लेता है। कभी असह्य बातों पर क्रोध भी करता तो 'झुंझलाहट'क्रोध आया, खून खौला, आंख जली दांत पीसे, लेकिन बोला नहीं। हां, धनिया से वह मारपीट अवश्य करता है, किन्तु आवेश समाप्त होते ही पश्चात्ताप करता है या सामान्य दब्बू बनकर झेंप भरी हंसी-मजाक करने लगता है।

होरी में सामान्य किसान की दुर्बलताएं भी हैं यथा उधार को मुफ्त का माल समझना, ऋण चुकाने के अवसर पर झूठ बोल देना, निर्लज्ज बनकर सब कुछ अत्याचार सहते रहना, स्वार्थ-सिद्ध करना, संस्कारों में गिरे-फंसे रहकर 'गाड़ी धकेलते रहना तथा व्यवहार कुशलता के नाम पर 'जैसे भी हो काम-निकालना आदि। गहराई से देखें या सभी दुर्बलताएं या तो उसकी गरीबी की देन (स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं) हैं या फिर उसका निरंतर उत्पीड़ित शोषित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला आशंकाजन्य भय का परिणाम। वस्तुत: "ये सारी दुर्बलताएं एक भारतीय किसान की दुर्बलताएं हैं। धनिया को कभी-कभी पीट देना, परिस्थितिवश चालाकी से काम लेना, गाय प्राप्त करने के लालच में भोला का झूठा आतिथ्य करना, उसके लिए रिश्ता ढूंढ़ने का झूठा आश्वासन देना, धनिया से भोला की झूठी प्रशंसा करना, भाई के हिस्से के बांस बेचकर पैसे बचाना, सन गीला करना आदि इसके कार्य इसी श्रेणी में आते हैं।

वस्तुत: "होरी भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र" अथवा "एक जाति पात्र यानि टिपिकल चरित्र है। जाति-पात्र वह होता है, जो अपनी जाति की सभी विशेषताओं, सभी स्थितियों व अवस्थाओं, समस्याओं व कठिनाइयों, परंपराओं व संस्कारों रीति-रिवाजों और सुविधाओं का प्रतिनिधित्व करें। कहना न होगा कि 'गोदान' में होरी की यह स्थिति है, वह अद्योपांत यही करता है। कहा तो यहां तक गया है कि "गोदान होरी के भागीरथ परिश्रम की गाथा है" तथा "होरी के चरित्र में भारतीय कृषक जीवन का मूल इतिहास है।"

वस्तुत: होरी मुख्यत: 'भारतीय किसान की समष्टि आत्मा का प्रतीक है।' गहराई से देखें तो गोदान अपनी समकालीन सामन्तवादी व्यवस्था और उसके सामाजिक आर्थिक और धार्मिक शोषक परक रूप पर लेखक द्वारा किया गया नंगा व्यंग्य शब्दचित्र है, जिसका मूल माध्यम है - ग्राम्यपक्षीय कथा। नि:सन्देह, इस कथा का प्रधान पात्र है - होरी जो, शास्त्रीय परम्परागत गुणों में तो नायक नहीं, किन्तु 'नायक' शब्द के व्युत्पत्ति अर्थ में नायक आवश्यक है। पाश्चात्य विधान की दृष्टि से देखें तो गोदान Hero verces society श्रेणी की दुखांतकी है और इसका शिकार बना पात्र (अर्थात् नायक) है - होरी जिसका 'अन्त सकरुण अवश्य है, लेकिन करुणोदांत नायक के औदात्य को वह अपने व्यक्तित्व में आत्मसात नहीं कर सकता है।' फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'प्रेमचन्द के जीवन की (और साथ ही साथ भारतीय जन-जीवन की भी) सारी करुणा होरी के चरित्र में साकार हो उठी है। सदा-सदा से, आंसुओं में जीवन बिताने वाली भारत के किसान प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में होरी जैसे नायक का निर्माण न पूर्ववर्ती उपन्यासकार कर सके न परवर्ती। बीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ नायक वह होरी है।'

उपन्यास-कला के तत्व तथा 'गोदान'

उपन्यास के तत्व- उपन्यास के छः तत्व माने जाते हैं-1. कथावस्तु, 2. चरित्र-चित्रण, 3. कथोपकथन, 4. भाषा-शैली, 5. देश-काल तथा वातावरण, 6. उद्देश्य।

1. **कथावस्तु-** उपन्यास के कला-तत्व के विषय में प्रेमचंद जी ने लिखा है-

"मानव चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

"उपन्यासकार को यह अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना वैचित्र्य से रोचक बनाये, पर शर्त यह है कि प्रत्येक असली ढाँचे से निकट संबंध रखती हो। इतना ही नहीं, वरन् उसमें इस तरह घुल-मिल गई हो कि कथा का आवश्यक अंग बन जाये, अन्यथा उपन्यास की दशा उस घर की-सी हो जायेगी जिसके हर हिस्से अलग हों। उपन्यास में वही घटनाएं, वही विचार लाना चाहिए, जिससे कथा-माधुर्य बढ़ जाये, जो प्लॉट के विकास में सहायक हों या चरित्रों के गुप्त मनोभावों का निदर्शन करते हों।"

इस दृष्टि से 'गोदान' में ग्राम्य जीवन तथा नगर जीवन से संबंधित दो कथाएं एक साथ चलती हैं। दोनों कथाएं सुगुंफित हैं। नगर की कथा ग्राम्य कथा की पूरक है। उसके बगैर गाँव की कथा अधूरी रहती है। ग्राम में कृषकों का शोषण नगर के पूँजीपतियों तथा ग्राम में रहने वाले उनके दलालों के द्वारा ही चलता है। दोनों कथाओं की एकसूत्रता रायसाहब तथा गोबर के द्वारा उपन्यासकार ने औपन्यासिक कौशल से कराई है। रायसाहब के यहाँ धनुष-यज्ञ में शामिल होने के लिए डॉ. मेहता, मिस मालती, खन्ना, तंखा, मिर्जा खुर्शेद आदि आते हैं। इनका ग्राम्य-क्षेत्र से संबंध स्थापित होता है। गोबर शहर में जाकर मजदूर बनता है। इस तरह वह भी नगर तथा ग्राम की कथा को एक सूत्र में जोड़ने में मददगार है।

'गोदान' में ग्राम्य तथा नगर की दोनों कथाएं मिलकर भारतीय समाज का समग्र चित्र पेश करती हैं। नगर की कथा ग्राम्य की कथा के पात्रों पर प्रत्यक्ष रूप में जमींदार द्वारा तथा अप्रत्यक्ष रूप में नगर के पूँजीपतियों द्वारा शोषण का चक्र दिखलाने के कारण ग्राम-कथा का अभिन्न अंग बन गई है। नगर-कथा के न लाने से शोषण का चक्र अधूरा ही रहता है। अतः 'गोदान' की दोनों कथाएं तत्कालीन भारतीय ग्राम्य-जीवन का समग्र चित्र पेश नहीं कर सकतीं।

यथार्थतः 'गोदान' की कथावस्तु अत्यंत सुनियोजित, सुव्यवस्थित तथा आकर्षक है। संपूर्ण कथा उसकी घटनाओं तथा पात्रों के क्रिया-व्यापार में एकसूत्रता में सुगठित है। कथावस्तु पर्याप्त विस्तृत है जिसमें जीवन के व्यापक तथा बहुमुखी परिवेश का स्पर्श किया गया है। दोनों समानांतर कथाओं के संबंध सूत्र हैं, राय साहब तथा न्यूनाधिक मात्रा में गोबर, किन्तु कथावस्तु का केन्द्रीय बिन्दु होरी का जीवन प्रसंग ही है। अर्थाभाव से पीड़ित किसान होरी के मन में गौ-पालन की साध का को आदि से अंत तक अवांतर प्रसंगों के साथ इस रूप में चित्रित किया गया है कि उसे जीवन में गाय तो नहीं मिलती पर मृत्यु के क्षणों में बीस आने का गोदान अवश्य मिलता है। गोबर तथा झुनिया, मातादीन तथा सिलिया, मेहना तथा मालती, खन्ना तथा गोविन्दी आदि की कथाएं ऐसी सह-कथाएं हैं जो केन्द्रीय भाव को संवेदनशील ही नहीं बनाती, वरन् उसे सार्थकता भी प्रदान करती हैं। इस तरह कह सकते हैं कि 'गोदान' की कथावस्तु सोद्देश्य, सार्थक और सजीव है। इसकी मूल चेतना है अव्यवस्था, जिसे समाप्त किये बिना जीवन की साध कभी पूरी नहीं हो सकती। उपन्यास की हर घटना, हर प्रसंग तथा पात्र उसमें सहायता प्रदान करता है। वस्तुतः 'गोदान' की कथावस्तु अव्यवस्था में दबी कराहती मानवता की असमर्थता को ही उद्घाटित नहीं करती, बल्कि मानसिक तथा बौद्धिक विकास पर भी कठोर प्रहार करती है।

1. **चरित्र-चित्रण-** उपन्यास के विषय में स्वयं प्रेमचंद की धारणा है-"उपन्यास को मैं मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'गोदान' अन्यतम रचना है। एक स्थान पर प्रेमचंद ने लिखा है-"उपन्यास के चरित्रों का विकास जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर असर पड़ेगा तथा यह लेखक की रचना-शक्ति पर निर्भर है। यह विकास इतने गुप्त तथा अस्पष्ट रूप से होता है कि पढ़ने वाले को किसी तब्दीली का ज्ञान भी नहीं होता। यदि चरित्रों में किसी का विकास रुक जाये तो उसे उपन्यास से निकाल देना चाहिए, क्योंकि उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। यदि उसमें विकास-दोष है, तो वह उपन्यास कमजोर हो जायेगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसा ही रहे जैसा वह पहले था-उसके बल, बुद्धि और भावों का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है। विकास परिस्थिति के अनुसार स्वाभाविक हो, अर्थात् पाठक तथा लेखक दोनों इस विषय में सहमत हों। चरित्र में कुछ विशेषता भी रहनी चाहिए। जिस प्रकार संसार में कोई दो व्यक्ति समान नहीं होते उसी भाँति उपन्यास में भी नहीं होने चाहिए। कुछ लोग तो बातचीत या शक्ल सूरत से विशेषता उत्पन्न कर देते हैं पर असली अंतर तो वह है जो चरित्रों से हो।"

अगर प्रेमचंद की इस कसौटी पर 'गोदान' के रचना तत्व को जाँचे तो पायेंगे कि 'गोदान' चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी अत्यंत सशक्त रचना है। विषय-वस्तु के अवयव चरित्र होते हैं। घटनाओं, क्रिया-कलापों तथा परिस्थितिजन्य गतिविधियों के कार्य-वाहक चरित्र ही होते हैं। प्रेमचंद ने समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करके उनकी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल घटनाओं का चयन किया तथा उन घटनाओं को वाणी देने वाले ऐसे पात्रों का चयन किया जो हमारे परिचित जगत् के होते हुए भी असाधारण एवं अविस्मरणीय हैं। 'गोदान' का नायक होरी एक ऐसा नायक है जिसका चरित्र आदि से अंत तक मानवीय गुणों से समन्वित जीवन के उत्थान-पतन की कहानी है। होरी के विचार, क्रिया-कलाप पाठक को स्पंदित करते हैं। गोबर, धनिया, सिलिया, झुनिया, मातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, मेहता, मालती तथा राय साहब आदि पात्र अपने वर्ग की किसी-न-किसी समस्या को लेकर उपस्थित होते हैं एवं समस्या से जूझते हुए पाठक के मस्तिष्क पर प्रभाव डाल जाते हैं जो अमर बनकर रह जाता है। सामान्यत: 'गोदान' में तीन तरह के पात्र मिलते हैं-शोषक, शोषित तथा शीर्षकों को हितैषी। ये पात्र संभवत: विविधमुखी योजनाओं के परिणाम हैं। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समस्त पात्र निम्न या मध्यवर्गीय विषमताओं का ही चित्रण करते हैं। यथार्थ में प्रेमचंद का मन भी ऐसे पात्रों का चित्रण में ही रमा है। होरी के माध्यम से प्रेमचंद ने संपूर्ण श्रम-जीवी कृषक वर्ग के चरित्र को चित्रित किया है। चरित्र-चित्रण के समय प्रेमचंद अपने पात्रों के परिवेश, जातीय पेशों तथा गुण-दोषों का भी ध्यान रखते हैं। पात्रों की मनोवृत्तियों के अनुरूप नामकरण भी करते हैं तथा उनकी वेशभूषा के प्रति भी पर्याप्त सजग प्रतीत होते हैं। प्रेमचंद पात्रों तथा चरित्रों का चित्रण उन्हें विशेष परिस्थितियों में डालकर करते हैं। होरी, गोबर, झुनिया, सिलिया तथा मातादीन जैसे ग्रामीण पात्रों को प्रेमचंद ने विषम परिस्थितियों में डालकर उन्हें जीवंत रूप में चित्रित किया है। दूसरी ओर राय साहब, मेहता, मालती, खन्ना, गोविन्दी आदि पात्र परिस्थितियों की भँवरों में पड़कर अपने समग्र परिवेश के साथ हमारे सामने प्रकट होते हैं। चरित्रों के सहज रूप में उभारने के लिए प्रेमचंद जी ने मनोविज्ञान का भी सहारा लिया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'गोदान' का हर चरित्र किसी-न-किसी मानवीय मनोवृत्ति का परिचायक है तथा किसी-न-किसी समस्या को पेश करता है। इस विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि 'गोदान' में उपस्थित सभी पात्रों के चरित्र का विकास उनके वास्तविक परिवेश में ही हुआ है तथा होरी का चरित्र-चित्रण तो इतना लाजवाब है कि उसकी विश्व के मुख्य उपन्यास-नायकों में गणना की जा सकती है।

3. **कथोपकथन-** कथोपकथन द्वारा घटनाओं के वर्णन से कथानक के विकास तथा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के प्रकाशन में मदद मिलती है। प्राय: रचनाकार परिस्थिति, घटना अथवा विचार विशेष को उभारने की दृष्टि से परस्पर विरोधी विचारों वाले कथोपकथनों की संयोजना करता है। कथोपकथनों की दृष्टि से 'गोदान' एक सफल रचना है क्योंकि इसके कथोपकथन सर्वत्र सजीव, पात्रानुकूल, चरित्र को स्पष्ट करने तथा कथा को गति देने वाले हैं। होरी तथा धनिया के कथोपकथनों द्वारा दांपत्य जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। होरी तथा गोबर के संवादों द्वारा युग की परिवर्तनमय दृष्टि की झलक दिखाई पड़ती है। सोना तथा झुनिया की बातों में ननद एवं भाभी की परिहास-प्रियता की झलक मिलती है। मेहता तथा मालती के वार्तालाप में दार्शनिक गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। 'गोदान' में पेश कथोपकथन संक्षिप्त दीर्घ, व्यंग्यपूर्ण तथा वर्णनात्मक हैं। वे इतने सरस स्वाभाविक तथा संयत हैं कि उनसे न केवल पाठक मन नहीं उबता, बल्कि वह एक-एक संवाद का रसास्वादन रसमग्न होकर कहता है। संक्षेप में 'गोदान' के संवाद पर सारगर्भित, दीर्घ किन्तु संरस, संयत किन्तु पात्र की मनोवृत्ति के अनुकूल घटनोद्घाटन में सक्षम है।

4. **भाषा-शैली-** उपन्यासकार प्रेमचंद भाषा-शैली की दृष्टि से भी अन्यतम हैं। भाव अपने नैसर्गिक रूप में आकारहीन तथा अमूर्त होते हैं। अमूर्त विचारों को रूपायित करने का कार्य भाषा-शैली का है। भाषा भावों की संवाहिका है तथा शैली उसका रूप। विचारों के अनुकूल भाषा-शैली के निर्माण में प्रेमचंद सिहस्त थे। इस उपन्यास की शैली भी प्रभविष्णुता, मार्मिकता, संगति, सुसंबद्धता, भाषाई व्यावहारिकता, चित्रमयता, सरलता तथा स्पष्टता आदि गुणों से संपन्न है यत्र-तत्र स्वागत-भाषण अथवा आत्मचिन्तनपरक शैली के भी दर्शन होते हैं भाषा-शैली अन्योन्याश्रित रूप से संबंधित है प्रेमचंद द्वारा व्यक्त 'गोदान' का सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव भाषा का संस्पर्श पाकर साकार हो उठा है।

5. **देश-काल और वातावरण-** प्रेमचंद का उपन्यासों का जगत् अनुभूतिमय था। नगर तथा ग्राम, दोनों ही परिवेशों से प्रेमचंद का प्रत्यक्ष संबंध था, फलत: समस्या विशेष के चित्रण में जिस अनुकूल वातावरण की अपेक्षा हुई, उन्होंने उसी को सजीव रूप में प्रकट किया। किन्तु ग्रामीण वातावरण को उपस्थित करने में प्रेमचंद का मन विशेष रूप से रमा है। जब सिलिया चमारिन सोना का पति-मथुरा अंधेरे में मिलता है तो उस समय का चित्रण देखिए-"बरोठे में अंधेरा था। उसने सिलिया का हाथ पकड़ कर अपनी तरफ खींचा सिलिया का मुँह मुँह के पास आ गया था और दोनों की साँस और आवाज और देह में कंप हो रहा था।" प्रेमचंद ने कल्पना के द्वारा वातावरण का चित्रण नहीं किया है वरन् सभी चित्रण आंखों द्वारा देखे हुए हैं जो पात्र परिस्थिति और स्थान को जीवंतता तथा विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

6. **उद्देश्य-** प्रेमचंद उपन्यास को सिर्फ मनोरंजन की वस्तु न मानकर मानव समाज के कल्याण का साधन मानते थे। प्रत्येक यथार्थ चित्रण के पीछे उनका कोई-न-कोई उद्देश्य सदैव रहता है। इस दृष्टि से 'गोदान' को देखने पर सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि 'गोदान' में प्रेमचंद की संपूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति हुई है तथा इसमें उन्होंने अपने प्रौढ़तम अनुभवों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया है। 'गोदान' में प्रेमचंद न तो किसी वाद के अनुयायी के रूप में उपस्थित हैं तथा न किसी सिद्धांत विशेष के प्रचारक के रूप में ही, बल्कि इसमें वह सभी पूर्वाग्रहों का मोह त्यागकर एक तटस्थ कलाकार की भाँति अपने युग के विशिष्ट चित्रकार के रूप में उपस्थित हुए हैं। 'गोदान' में ऋण की मूल समस्या के अलावा गरीबी, धार्मिक अंध-विश्वासों, अशिक्षा, विवाह, प्रदर्शन एवं पारिवारिक विघटन आदि समस्याओं को चित्रित करके प्रेमचंद ने भारतीय जीवन के नव-निर्माण की भावना को प्रच्छन्न उद्देश्य के रूप में पेश किया है। 'गोदान' का हर पात्र किसी-न-किसी समस्या का प्रतिनिधित्व करता है। उसके द्वारा घटना को गति प्रदान करके प्रेमचंद ने समस्या विशेष को इतने वास्तविक रूप में उभारा है कि पाठक को लक्ष्य तक पहुँचने में देर नहीं लगती। होरी के रूप में अपनी परिस्थितियों तथा संस्कारों के मध्य भारतीय गरीब किसान यथाशक्ति श्रम करने पर भी

अपनी सामान्य इच्छाओं को भी पूर्ण करने में असमर्थ रहता है, इसी का चित्रण 'गोदान' का लक्ष्य है, तथा इस दृष्टि से निःसंदेह 'गोदान' एक उद्देश्य प्रधान रचना है।

निष्कर्ष- प्रेमचंद मौलिक उपन्यासकार के साथ-साथ उपन्यास-कला के भी मर्मज्ञ थे। उपन्यास की पूर्व विकसित कला के परिज्ञान के साथ-साथ उन्होंने अपने दीर्घ औपन्यासिक सृष्टिकाल में कला का जो परिमार्जन किया, उसके समष्टि रूप 'गोदान' में दर्शन किये जा सकते हैं। कहा जा सकता है कि 'गोदान' प्रेमचंद की उपन्यास कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है।

'गोदान' की भाषा-शैली- प्रेमचंद जी की भाषा सरलता, सौंदर्य, व्यंग्य, प्रवाह आदि के कारण कथा-साहित्य की आदर्श भाषा है। भाषा के क्षेत्र में प्रेमचंद सम्राट हैं। प्रेमचंद की भाषा जन साधारण की भाषा है। वह तीखी, पैनी, मधुर तथा मार्मिक है। 'गोदान' की भाषा के लिए प्रो. प्रकाशचंद गुप्त ने लिखा है-

"गोदान में भाषा रसवती, अलंकार-बोझिल और कवितामयी हो गयी है। इसके सरल प्रवाह में कथानक और कथोपकथन सजल गति से बहे हैं।"

'गोदान' की भाषा अपनी सरलता, सुबोधता तथा प्रवाहमयता के कारण एक सुंदर जन-भाषा का आदर्श पेश करती है। प्रेमचंद के प्रादुर्भाव के समय एक लेखक-वर्ग संस्कृत तत्सम-बहुल भाषा का प्रयोग कर रहा था तथा दूसरा वर्ग अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग करता था। प्रेमचंद स्वाभाविक तथा सशक्त भाषा लेकर सामने आये। उनकी भाषा के रूप में भारतेन्दु-युग की लुप्त भाषा का पुनरुद्धार हुआ। प्रेमचंद जी की भाषा जन-मानस के आसन पर आसीन हुई। प्रेमचंद साहित्य हेतु ऐसी भाषा को उपयोगी मानते थे, जो प्रौढ़ तथा परिमार्जित होने के साथ-साथ सरल एवं स्वाभाविक हो और दिल व दिमाग पर प्रभाव डालने वाली हो। प्रेमचंद भाषा के क्षेत्र में अंग्रेजी-भक्ति के विरोधी थे-

"अंग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अंग्रेजी भाषा का है। आप अंग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से बगावत करते हैं, लेकिन अंग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक के तरह गर्दन में डाले हुए हैं।"

'गोदान' की भाषा- भाषा की दृष्टि से 'गोदान' वर्तमान-साहित्य में शीर्ष स्थान रखता है। इसमें प्रेमचंद की भाषा का बिखरा हुआ विकसित रूप मिलता है। 'गोदान' में मुसलमान पात्र तक सरल उर्दू बोलते हैं। 'गोदान' की भाषा पात्रानुकूल तथा भावानुकूल है। भाषा की दृष्टि से 'गोदान' का समस्त उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। 'गोदान' में पात्र, देश-काल तथा भावों के अनुकूल भाषा के कई सशक्त रूप मिलते हैं।

'गोदान' की भाषा का क्षेत्र- 'गोदान' में ग्रामीण तथा नागरिक जीवन को मिलाकर समस्त भारतीय जीवन का चित्रण हुआ है। अतः उसके बोलने वालों के आधार पर 'गोदान' की भाषा को नागरिक भाषा तथा ग्रामीण भाषा दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। शिक्षित तथा अशिक्षित पात्रों की भाषा एक-सी नहीं है। उनमें अंतर है। मेहता, मालती, रायसाहब, तंखा जैसे शहरी लोगों की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलेगा, जबकि होरी, भोला, धनिया, सिलिया, नोहरी, मातादीन, दातादीन आदि ग्रामीण पात्रों की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। एक ही व्यक्ति द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर बोली जाने वाली भाषा में भी अंतर होता है। 'गोदान' में प्रेमचंद ने इस बात का भी पूरा ध्यान रखा है। उदाहरण के लिए मेहता जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वह यद्यपि नागरिक भाषा का प्रतिनिधित्व करती है पर उनके भी भाषण की भाषा और बोलचाल की भाषा में अंतर है।

बोलचाल की भाषा- "मानता हूँ, आपका आसामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है। लेकिन प्रश्न यह है कि उसमें ...र्थ है या नहीं। इसका कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आँच से भोजन स्वादिष्ट पकता है? गुड़ से मरने वाला जहर से मरने वाले की बजाय कहीं सफल हो ...ता है।'

यहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है।

भाषण की भाषा- "मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग तथा अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म तथा अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने हेतु सदियों से जोर मार रहा है, लेकिन सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ, उसका सारा अध्यात्म तथा योग एक तरफ तथा नारियों का त्याग एक तरफ।"

यहाँ तत्सम शब्दों का अपेक्षाकृत ज्यादा प्रयोग है। बोलचाल के उर्दू के शब्दों का प्रयोग बड़ी सफाई से हुआ है।

इसी तरह होरी, धनिया आदि ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्राम्योचित सहजता, सरलता और आंचलिकता है।

'गोदान' में विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग- 'गोदान' का अधिकांश कथानक ग्राम्य-जीवन पर है, अतः 'गोदान' में स्थान-स्थान पर ग्रामीण अर्द्ध तत्सम तथा तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'गोदान' में कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग भी मिलेंगे, जिनका अर्थ सामान्यतः स्पष्ट नहीं होता। शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही तरह के पात्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं। अशिक्षित पात्र उन्हीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो ग्रामीण अंचल में अपने बिगड़े हुए रूप में प्रचलित हो गये हैं। लेकिन इन शब्दों को अंग्रेजी प्रकृति के अनुसार बना लिया गया है। 'अल्टीमेटम' का प्रयोग 'गोदान' में कई बार हुआ है। 'टाउट' शब्द का प्रयोग दो स्थानों पर आया है। इस तरह के शब्द भाषा की व्यंजना शक्ति को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस तरह के शब्दों का प्रयोग ग्रामीण तथा नागरिक दोनों ही वर्ग के पात्रों ने किया है। 'गोदान' में प्रयुक्त विविध तरह के कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं-

प्रचलित ठेठ घरेलू शब्द- घामड़, गारा, हेठी, मनुहार, गड़ाप, रहैया, मनावन, उकड़ूँ नफरी, जुगाड़, नादिहेदी, फक्कड़, जैजार, कुल्हड़, लातिहाउस आदि।

अंग्रेजी के पारिभाषिक एवं तत्सम शब्द- प्रोग्राम, वोटिंग, कंपनी, ऐलेक्शन, फार्म मिनिस्टर, कन्वेसर, परसेंट, इंश्योरेंस, फ्री पास, हाफटाइम, वीमंग लीग, ट्रेजेडी, ड्यूटी आदि।

अंग्रेजी के तद्भव शब्द- कालिज (कॉलेज), इसताम (स्टॉप), पिसिन (पेंशन), पुलुस (पुलिस)।

अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी व्याकरण के अनुसार प्रयोग- स्टाकों, बैंकरों, म्युसिपेल्टियाँ, एजेंटों, मिनिस्टरों, कौंसिलों, फिलास्फरों आदि।

विशेषतासूचक शब्द प्रयोग- 'मैं कुपद (अनुचित) तो नहीं कह रहा हूँ'; 'रात भीग गई', 'बारे कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गई।'

सहयोगी शब्द- घात-प्रतिघात, सेवा-सत्कार, मान-मर्यादा, हाल-हवाल, चना-चबेना, नर-नियाज, दान-दहेज, मोटा-महीन, जमीन-जैजात, बाजा-गाजा, बरतन-भाँडे, मान-मनोल, बाँट-बखरा, गहने-गट्ठे, ताँक-झाँक, खेत-खलिहान, पोथी-पत्रा, कथा-भागवत दवा-दारू, झाड़-फूँक, गाली-गलौज, थुक्का-फजीहत, लाग-डाँट आदि।

'गोदान' में अत्यधिक उर्दू के शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन प्रेमचंद के अन्य उपन्यास की बजाय 'गोदान' के मुसलान पात्र सरल उर्दू बोलते हैं। हिन्दू पात्रों के कथनों में भी उर्दू के सरल तथा बहु प्रचलित शब्दों का प्रयोग है।

कतिपय भाषा-दोष- 'गोदान' में व्याकरण की दृष्टि से कहीं-कहीं कुछ खटकने वाले दोष भी मिलेंगे। कहीं-कहीं 'और' शब्द का प्रयोग अनावश्यक हुआ है। जैसे 'धैर्य' तथा व्यथा और शील प्रेम। कहीं-कहीं दो भाषाओं के शब्द एक साथ रख दिये गये हैं। जैसे 'विशेष दिलचस्पी' (तत्सम हिन्दी और तत्सम उर्दू) 'जिन्दगी इंश्योरेंस' (उर्दू और अंग्रेजी) आदि।

जिस समय प्रेमचंद ने 'गोदान' की रचना की, उस समय भाषा के क्षेत्र में हिन्दुस्तानी का आंदोलन जोरों पर था। इसी कारण 'गोदान' में पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी और मुसलमान दोनों ही प्राय: एक-सी भाषा बोलते हैं। उनकी भाषा में उर्दू और हिन्दी के सरल शब्दों का प्रयोग होता है।

'गोदान' की शैली- 1. **अभिव्यंजना शैली-** 'गोदान' में शैली की दृष्टि से विविधता है। अभिव्यंजना-शैली का महत्वपूर्ण विकास 'गोदान' में मिलता है। शैली में सर्वत्र सरलता है लेकिन उसमें भावावेश अधिक होने से यह सजीव हो उठी है। ऐसे स्थलों पर शैली भी उग्र और ओजपूर्ण हो गई है। भाषा-माधुर्य तथा शैली का प्रहवा तिरस्कार, अवहेलना या अपमान आदि संबंधी भावों को स्पष्ट कर देता है।

2. **अलंकृत शैली-** 'गोदान' में जहाँ हृदय के उद्धार स्वयं ही निकल पड़ते हैं, वहाँ शैली बड़ी मार्मिक, सजीव तथा सुंदर बन गई है। अलंकारों का प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन हेतु न होकर भावाभिव्यक्ति के सहायक के रूप में हुआ है। ऐसे स्थलों पर गद्य-काव्य का-सा माधुर्य तथा सौंदर्य मिलता है।

3. **संस्कृति-गर्भित शैली-** 'गोदान' में गंभीर चिंतन के अवसरों पर भाषा-शैली संस्कृति-गर्भित हो गई है, लेकिन इस शैली में भी एक अनोखी सौंदर्य शक्ति तथा प्रवाह है।

4. **काव्यात्मक शैली-** 'गोदान' में भावाभिव्यक्ति के स्थलों पर भाषा-शैली भी काव्यात्मक हो गई है।

ऐसे स्थलों की भाषा हृदय पर सीधी चोट करती है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भावानुभूति में चारुता लाकर उसे निखार देता है।

प्रेमचंद जहाँ सामान्य कथन के द्वारा विशेष बात को स्पष्ट करते हैं, वहीं कथन की मार्मिकता बढ़ जाती है।

5. **सूक्ति-प्रधान शैली-** 'गोदान' की भाषा में सूक्तियों का प्रयोग शैली को सौंदर्य प्रदान करना है। जीवन-जगत के अनुभवों से भरी हुई सूक्तियाँ अंगूठी में जड़े हुए नगीने के समान लगती है।

6. **मुहावरा-शैली-** मुहावरेदानी प्रेमचंद की शैली की मुख्य विशेषता हे। इससे उनकी भाषा में लाक्षणिकता आ गई है। कहीं-कही तो प्रेमचंद मुहावरों की झड़ी ही लगा देते हैं।

"मगर चौधरी कच्ची गोलियाँ न खेले था। अब उसे किसका डर? होरी के मुँह में ताला पड़ा था। क्या कहे, माथा ठोककर रह गया।"

'गोदान में संभवत: ऐसा कोई पृष्ठ मिले, जिसमें दस-बारह मुहावरे प्रयुक्त न हुए हों। शैली को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए प्रेमचंद ने कहावतों तथा लोकोक्तियों का खूब प्रयोग किया है उदाहरण के लिए-

बिना रोये तो बालक भी माँ से दूध नहीं पीता।

निष्कर्ष- उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा की दृष्टि से 'गोदान' का प्रेमचंद के उपन्यासों में ही नहीं वरन् समस्त उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी भाषा-शैली अत्यंत सजीव, देश-काल तथा पात्र के अनुरूप एवं व्यंजक है। 'गोदान' की समर्थ भाषा-शैली भारतेन्दु की जन-समाज की सजीव भाषा का रूप प्राप्त करती है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने प्रेमनाथ के चरित्र-चित्रण पर विचार करते हुए लिखा है, कि प्रेमचंद के चरित्रों में उनके व्यक्तित्व की गरिमा नहीं है। अत: वे अपनी प्राणवत्ता खोकर वर्ग के प्रतिनिधि मात्र बनकर रह गये हैं। गुप्त जी का यह आरोप 'गोदान' से पहले के उपन्यासों के कुछ पात्रों के संबद्ध में सत्य हो सकता है। लेकिन 'गोदान' के पात्रों पर यह लागू नहीं होता इसका कारण है कि 'गोदान' में जहाँ प्रेमचंद यथार्थवादी है, 'गोदान' से पहले के उपन्यासों में आदर्शवाद के प्रति उनका गहरा मोह रहा है। इस आदर्शवाद के मोह में प्रेमचंद पात्रों में अचानक ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं कि वह मनोविज्ञान के आधार पर सुसंगत तथा स्वाभाविक लगने लगता है। 'प्रेमाश्रम' का मायाशंकर एकाएक अपनी संपत्ति को दान में दे डालता है। गोदान में मालती तथा मातादीन ही ऐसे पात्र हैं जिनके चरित्र में परिवर्तन होता है। मालती पहले ऊपर से तितली तथा भीतर से मधुमक्खी थी, पर मेहता के संसर्ग में क्रमश: उसके ऊपर से तितलीपने का आवरण उतरता चला जाता है तथा उनमें सेवा-परायणता और त्याग की भावना आ जाती है। उसके चरित्र में धीरे-धीरे हुआ परिवर्तन अपर्याप्त तथा अस्वाभाविक नहीं लगता मातादीन विलासी, लंपट तथा ढोंगी है वह सिलिया को किसी तरह अपने पास रखना नहीं चाहता, लेकिन सिलिया के युग की मृत्यु से उनका वात्सल्य उमड़ पड़ता है और उसके चरित्र में जो परिवर्तन आता है वह अस्वाभाविक नहीं लगता। अत: यह कहना सत्य नहीं है कि प्रेमचंद के चरित्र 'टायप' बनकर रह गये तथा उनमें अपने व्यक्तित्व का अभाव है। मालती के चरित्र को टायप चरित्र कहा जा सकता है, लेकिन मालती जैसी मधुमक्खी प्रकृति सभी नारियों में नहीं मिल सकती। यह वह विशेषता है जो मालती के चरित्र टायप चरित्र में ऊंचा उठा देती है तथा उसका चरित्र टायप बनने से बच जाता है। इसी तरह मातादीन के समान लंपट तथा धूर्त अनेक व्यक्ति समाज में मिल जाते हैं। अत: उसके चरित्र को 'टायप चरित्र' कहा जा सकता है, लेकिन बच्चे की मृत्यु पर जो वात्सल्य उसके हृदय में उमड़ पड़ता है, वह उसके चरित्र का 'टायप चरित्र' की सीमा से निकलकर विशिष्ट बना देता है।

वर्ग प्रतिनिधित्व के साथ व्यक्तिगत विशेषताएं- 'गोदान' के पात्र हालांकि अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन उनका निजी व्यक्तित्व भी स्पष्ट है। उनमें अपनी व्यक्तिगत दुर्बलताएं तथा सफलताएं हैं। इस तरह वे 'टायप' होते हुए भी अपने व्यक्तित्व की विशेषता के कारण विभिन्न से लगते हैं। 'गोदान' के पात्र जमींदार, साहूकार, कारिंदे ढोंगी, धर्मात्मा, कर्मठ किसान, मिल-मालिक, स्वार्थी पत्रकार, भाग्यवादी किसान, बिगड़े हुए रईस, दलाल आदि अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन इनमें से हर अपनी अलग-अलग विशेषताएं भी बनाये रखता है। होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ अपढ़, भाग्यवादी, परिश्रमी, ईमानदार, बेईमानी, धर्म तथा बिरादरी का महत्व स्वीकार करने वाला किसान है, वह सामान्य किसानों की तरह वह झांसा देना भी जानता है एवं गले तक ऋण में डूबे रहने पर भी नया ऋण लेने के प्रयत्न में रहता है। इस तरह एक किसान के समस्त गुण-अवगुण होने से होरी टायप चरित्र बन गया। होरी के चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएं भी हैं, जो समस्त किसानों में सामान्य रूप से नहीं मिलती हैं। वह अपने सगे भाई हीरा के घर से भाग जाने पर अपने काम की चिंता छोड़कर उसके घर को संभालता है। इसी तरह झुनिया को पुत्र-वधू रूप में स्वीकार करना, सिलिया को शरण देना आदि ऐसे काम हैं, जिनको गाँव का कोई किसान नहीं

करता। अपने इन्हीं कामों के कारण वह सामान्य किसान वर्ग से ऊंचा उठ जाता है तथा टायप-चरित्र नहीं बनने पाता।

रायसाहब जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए टायप-चरित्र है। वे किसानों का शोषण करते हैं, उनसे बेगार लेते हैं। वे अवसरवादी जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि है। इस तरह उनमें वे सभी गुण-अवगुण है, जो जमींदारों में सामान्य रूप से होते हैं। लेकिन उनके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएं भी हैं जो सामान्य रूप से जमींदारों में नहीं होती। वे अन्य जमींदारों की तरह विलासी नहीं है। वे अवसर देख कर झुकना भी जानते हैं। वे राजनीति में भाग लेते हैं, तथा संपत्ति एवं जमींदारों को अभिशाप घोषित करते हैं। ये विशेषताएं उनको साधारण जमींदारों से अलग कर देती हैं तथा वे टायप-चरित्र मान बनकर नहीं रह जाते हैं।

गाँव के साहूकार किसान का शोषण करते हैं। इस तरह वे अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन उनकी शोषण प्रणालियों में जो अंतर हैं, वह उनके व्यक्तित्व को अलग चमकाकर उन्हें टायप चरित्र नहीं बनने देता। दातादीन बिना लिखा-पढ़ी के रुपये उधार देकर ब्रह्मबल से वसूल करने की धमकी देता है। झिंगुरी सिंह नगर के साहूकार का दलाल है वह 50 को 100 लिखवाकर रुपये उधार देता है। नोखेराम बगैर रसीद लिये किसानों से लगान वसूल करता है। पटेश्वरी पटवारी किसानों से रिश्वत तथा बैगार लेता है। इस तरह उनके कार्य उनके चरित्र की भिन्नता स्पष्ट कर देते हैं।

'गोदान' का गोबर अधिकारों हेतु जागृत किसानों का प्रतिनिधि है, लेकिन वह 'प्रेमाश्रम' के बलराज की तरह टायप चरित्र नहीं है। बलराज दमन का हिंसा द्वारा प्रतिरोध करता है। यह प्रतिरोध जागृत युवक किसानों की वर्गगत विशेषता रही है। लेकिन गोबर में अपनी दुर्बलता है, जिससे वह पलायन करता है तथा साधारण मजदूर बनकर अनैतिकता के गर्त में गिर पड़ता है। अत: गोबर जागृत किसान का प्रतिनिधित्व करते हुए भी टायप चरित्र इसलिए नहीं हैं, क्योंकि वह अन्याय का प्रतिकार नहीं करता।

नगर के पात्रों में भी समष्टि तथा व्यष्टि का समन्वय है- खन्ना अवसरवादी मिल-मालिकों का प्रतिनिधित्व करने के कारण टायप चरित्र है। उनमें मिल मालिक तथा पूँजीपतियों के सभी दुर्गुण हैं, लेकिन मिल में आग लग जाने के पश्चात् वे पश्चात्ताप करते हैं, वह उन्हें टायप-चरित्र बनने से बचा लेता है। डॉक्टर मेहता बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके प्रेम, विवाह तथा तलाक संबंधी विचार बहुत विचित्र हैं। मेहता जैसे व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में कम ही मिलते हैं, इसलिए उनको विशुद्ध रूप से टायप चरित्र नहीं माना जा सकता। यही स्थिति मिर्जा खुर्शेद की है, वे बिगड़े हुए रईसों के समस्त गुण-अवगुण लिए हुए टायप चरित्र हैं। लेकिन ऐसे व्यक्ति शायद ही मिलेंगे, जो सैकड़ों मजदूर लाकर उनसे कबड्डी खिलाकर मनोरंजन करें। अत: मिर्जा खुर्देश को भी टायप चरित्र नहीं कहा जा सकता।

नारी पात्रों में मालती जैसी नारियाँ समाज में प्राय: कम ही देखने में आती हैं। वह न तो विशुद्ध रूप से आधुनिक कही जाने वाली फैशन-परस्त नारी का ही प्रतिनिधित्व कर पाती है तथा न वह सेवा परायण त्याग की देवी ही बन पाती है। अत: इसके चरित्र की अपनी निजी विशेषताएं हैं। धनिया को उसके चरित्र की विशेषताएं तथा कर्मठता गाँव की सामान्य नारियों से अलग कर देती है। वह दरोगा तथा पंचों को भी फटकारने का साहस रखती है। 'गोदान' में गोविन्दी ही एक ऐसी नारी पात्र है, जिसके चरित्र को टायप चरित्र कहा जा सकता है। वह सती साध्वी, प्राचीन परंपरा तथा संस्कृति की नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'गोदान' में ग्राम तथा नगर की दोनों कथाओं के पात्र अपने वर्ग के गुण-दोषों को लिए हुए अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं 'टायप' चरित्र से

लगने लगते हैं। लेकिन गहराई से देखने पर हर के चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएं मिल जाती हैं जो उनसे वर्ग के सभी मनुष्यों में सामान्य रूप से नहीं होती हैं तथा उनका व्यक्तित्व अपने वर्ग से अलग उभरा हुआ दिखाई देने लगता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'गोदान' के पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विशेषताएं लिए हुए हैं, जो उनको उनके वर्ग से अलग कर देती हैं तथा उनको 'टायप चरित्र' नहीं बनने देती।

धनिया का चरित्र

छत्तीसवें साल में ही पके हुए केश झुर्रियों से भर जाने वाला मुख, ढलती हुई देह, सुंदर गेहुँआ पर साँवला पड़ गया रंग एवं कम सुझाई देने वाली नेत्र ज्योति-यह है एक सच्चा शब्द-चित्र, गोदान के उस नारी-पात्र का जो अपनी विपन्नता, असहायता तथा व्यवस्था की शिकार बनी अवस्था में भी सर्वाधिक सबल सर्वाधिक मुखर एवं सर्वाधिक सहानुभूति की पात्र है। यह है-धनिया (ग्राम्य कथा के नायक) होरी की पत्नी जिसकी चिरस्थायी जीर्णावस्था ने आत्म सम्मान को उदासीनता का तथा निरंतर के उत्पीड़न ने मन एवं जुबान को विद्रोह से भरे हुए होने का रूप दे दिया है।

होरी की पत्नी धनिया, निम्नवर्गीय नारी होने पर भी पतिव्रता है-पगे-पगे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप व्रत से अपने पति को अभयदान देने वाली तथा विपन्नता के अथाह सागर को सुहाग तृण के सहारे ही पार करते रहने वाली। वह पति के हर सुख-दुख की साथी ही नहीं, कंधे से कंधे मिलाकर साथ-साथ सक्रिय बनी रहने वाली, उसको पग-पग पर प्रेरित संचालित करती रहने वाली भी है। गहराई से सोचें तो वह "होरी के अंतर्मन की विरोध विद्रोह भरी भावना।","होरी के मन में दबी हुई क्रांति की सजीव अभिव्यक्ति है" तथा होरी के नि:शेष पहलू का परिचय है। वस्तुत: होरी तथा दनिया...एक ही इकाई के दो भिन्न व्यक्ति हैं। धनिया उस नि:शेष असहयोगी भावना की प्रतीक है जो होरी पन की ओट में हर आघात के साथ अपने को प्रबलतर बनाती रहती है।" प्रारंभ से ही वह अपने सच्चे पतिव्रत्य का परिचय देती हुई मिलती है। अत्यंत विपन्नावस्था में भी होरी के संयुक्त परिवार हेतु तिल तिल समर्पण करते रहना, सोभा तथा होरा जैसे देवरों एवं पुत्री जैसी देवरानी को पुत्र पुत्रीवत् मानकर पालना पोसना, स्वयं फटा पुराना पहनकर भी देवरानी को चाँदी के आभूषण बनवाना, होरी की पग-पग पर सहायता सेवा करना आदि ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं। इतना ही नहीं, निम्नवर्गीय तथा अति की विपन्न होने पर भी "कभी किसी ने उसे किसी तरफ ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़छाड़ की थी। उसका ऐसा मुँह तोड़ जवाब दिया कि आज तक नहीं भूले।" स्वयं होरी तक के मुख से वह ऐसी असंगत बात सुनने को तैयार नहीं "कुराह चले तुम्हारी बहन मैं क्यों कुराह चलने लगी?" वह तो स्पष्टत: यही मानती है-"सुख लिया है तो उसी के साथ, दु:ख भोगा है तो उसी के साथ। अब तो चाहे अच्छा है या बुरा, अपना है।" होरी का मृत्यु-दृश्य तो इसी की एकदम मर्मस्पर्शी तथा अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति है।

एक माँ के रूप में भी धनिया में मातृत्व भाव कूट-कूट कर भरा है- जिसकी अभिव्यक्ति देवर-देवरानी से लेकर पुत्र-पुत्रियों तथा फिर पोते (गोबर के पुत्र) तक के प्रति हुई मिलती है। इसका सबलतम प्रमाण है-गर्भवती, घर आयी झुनिया के प्रति दिखाया गया व्यवहार-"तू चल, घर में बैठ, मैं देख लूँगी काका तथा भैया को। संसार में उन्हीं का राजा नहीं है। बहुत करेंगे अपने गहने ले लेंगे फेंक देना उतार कर।" यहीं से, वह दातादीन से लेकर पंचायत तथा हुक्का-पानी बंद करने से लेकर डाँड भरने के दंड तक का खुला विरोध ही नहीं करती, सबके प्रति विद्रोह तक भी करती है, पर झुनिया की पूरी-पूरी मदद करती है-"धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी दोनों लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी। जिससे सारा गाँव

सुन ले। आज यह पहला मौका था कि ऐसे शुभ अवसर पर बिरादरी की कोई औरत न थी।...पर धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।" इसी मातृत्व से भरा धनिया का एक रूप देखिए-'बच्चे की माँ तो झुनिया थी पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता था।...उसका सूना खटौला देखकर वह रो उठती।...गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी।'

धनिया अति की साहसी निर्भीक तथा निडर स्त्री है। "वह जिस बात को ठीक समझ ले, फिर समाज, बिरादरी, नियम, कानून, किसी बात की परवाह नहीं करती, उसे कर डालती है।...अपने अदम्य साहस तथा कर्मशीलता के कारण वह कई बार गाँव भर का नेतृत्व करती हुई दिख पड़ती है।" हीरा-पुनिया का विरोध हो अथवा स्वयं होरी का झुनिया के प्रस्न पर जात-बिरादरी हो या पंच-परमेश्वर पुलिस-दरोगा हो या शोषक दातादीन और जमींदार, वह सभी के प्रति निडर हैं, सबकी कलाई खोलकर अपनी निडरता-निर्भीकता का परिचय देती है तथा आद्योपांत कष्ट पर कष्ट सह-सहंकर भी अपने साहस को बनाये रखती है।

धनिया की यही निर्भीकता तथा साहस अभिव्यक्ति पाते हैं-उसकी स्पष्टवादिता के गुण से। धनिया लगा-लिपटी की, दिखावे-व्यवहार की, स्वार्थ-मोह की बात नहीं, करती बल्कि दो टूक बात कहती है-चाहे क्रोध की उत्तेजना में कहे अथवा सामान्य व्यवहार में। प्रमाणस्वरूप, उसके भिन्न परिस्थितियों के कहे गये दो कथन देखिए-

(i) *"तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूँछती। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये।...तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जायेगी।"*

(ii) *"मैं एक दाना न अनाज दूँगी, न कौड़ी डांड। जिसमें बूता हो, चल कर मुझसे ले।...हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुति न हो जायेगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।"*

धनिया के चरित्र का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है-उसका अति का तेज तथा स्वाभिमान। हीरा द्वारा रुपया दबाये जाने का आरोप उसको सीधे-सीधे अपनी चारित्रिक पवित्रता पर चोट लगाता है तथा वह बिफर उठती है-"मैं अभी जाकर पूछती हूँ न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये...तथा अब हम बेईमान हैं...।" झुनिया को शरण दिये जाने पर दातादीन तथा भोला, डांड लगाये जाने पर पंच, शहर चले जाने पर जुनिया एवं गोबर यहाँ तक कि अति की अपनी नम्रता तथा भाई (हीरा) का पक्ष लेने पर स्वयं पति परमेश्वर होरी भी उसके तेज-स्वाभिमान पर चोट करके या उसकी भ्रांति मात्र पैदा करके धनिया के विष भरे वाक्वाणों के शिकार बनते हैं। इसी भाँति होरी द्वारा रायसाहब के यहाँ जाने तथा तलुए सहलाने को वह सर्वथा अनुचित मानती ही नहीं, उसका विरोध भी करती है-"जब हमने जमींदार के खेत जोते हैं तो वह लगान ही लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलुवे क्यों सहलायें?" इस तरह वस्तुत: "धनिया के (इस) विद्रोह में समस्त किसानों का (अंतर्मन में छिपा तथा चिरकांक्षित विद्रोह मूर्तिमंत हो उठा है। धनिया का यह विद्रोह अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता की फूटती हुई चिंगारी के रूप में पूरे गाँव का विद्रोह है।" नि:संदेह, धनिया "अन्याय के विरुद्ध पाठक तथा लेखक की भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है।"

धनिया अति की क्रोधी है-एकदम खून-खराबा करने को उतारू छाती ठोक कर मरने-मारने को तैयार, गाली-गलौच करने में माहिर तथा बदजुबान अथवा जबान-दराजी करने वाली। ग्राम्य कथा के प्राय: सभी प्रमुख पात्र, कभी न कभी उसके क्रोध के शिकार बनते हैं-हीरा पुनिया, चौधवी, दातादीन, भोला, झुनिया तथा गोबर ही नहीं, स्वयं होरी तक और नि:संदेह कोई भी उसके (सत्याधारित)

क्रोध का सामना नहीं कर पाता। 'होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी' लेकिन धनिया "बिगड़ती है तो चंडी हो जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं।" अकेले होरी से विरोध होते-होते वह चौमुखी लड़ाई लड़ने हेतु तैयार हो जाती है, होरी को बुरा-भला तो कहती ही है, गोबर तक को लड़ाई में सम्मिलित करने का आह्वान कर बैठती है-कहाँ है गोबर? अब किस दिन काम आयेगा? तू देख रहा है बेटा, तेरी माँ को जूते मारे जा रहे हैं। और तुरंत ही-सहसा धनिया ने सिंहनी की भाँति झपट कर हीरा को इतने जोर का धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और वह बोली-कहाँ जाता है, जूते मार, मार जूते, देखूँ तेरी मरदूमी।" इसी प्रकार, होरी द्वारा पीटे जाने पर भी वह तुर्की-ब-तुर्की उससे भिड़ जाती है-"होरी धनिया को मार रहा था, धनिया उसे गाली दे रही थी। घर में आग लगा दूँगी, सारी गृहस्थी में आग लगा दूँगी-तू अपने बाप का बेटा होगा तो मुझे मार कर तब पानी पीयेगा। "पानी कहीं का, हत्यारा।" अपने इसी क्रोध के कारण धनिया दरोगा के शब्दों में 'दिलेर' बनती है तो पटेश्वरी के शब्दों में 'कर्कशा' वस्तुत: "धनिया दुर्गा रूप में हमारे मन में जहाँ संभ्रम जगाता है, वहीं दूसरी तरफ अपनी जीवन की दु:खपूर्ण परिस्थितियों के कारण करुणा भी, हालांकि संपूर्ण प्रसंग पर धनिया का दुर्गा रूप ही छाया हुआ है।" वास्तव में, धनिया का सारा क्रोध, सारा आक्रोश सारी खीज तथा सारा विद्रोह उसकी परिस्थितियों की देन है। दुर्बल मानव-मन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया। "धनिया सामाजिक रूढ़ियों की दलदल से उभरता हुआ एक विवश विद्रोह नारी-पात्र है, दैन्य उसकी नियति है तथा विवशता उसकी मजबूरी।"

धनिया में नारी विशेषत: सामान्य ग्राम्य नारी की कुछ अन्य चारित्रिक दुर्बलताएं हैं यथा सास रूप में झुनिया के प्रति ईर्ष्या भाव जिठानी के रूप में पुनिया से आदर कराने की कामना, स्व प्रशंसा सुनते ही (भोला की) सहायता करने को तत्पर हो जाना आदि।

होरी के शब्दों में, धनिया "सीधी गमखोर तथा निश्छल" है एवं साथ ही साथ वह "सेवा और ज्याग की देवी जबान की तेज पर मोम जैसा हृदय, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली पर मर्यादा-रक्षा हेतु अपने सर्वस्व होम कर देने को तैयार" रहने वाली नारी है। अपनी जवानी में 'रूपवती' तथा रानी सी लगने वाली धनिया को वास्तव में उसकी निरीहता भरी परिस्थितियों ने ही 'अखरोट' अथवा 'बादाम' बना दिया था-ऊपर से अत्यंत कठोर किन्तु अंदर से एकदम मुलायम-कोमल तथा रस भरी। अंतत: उसके चरित्र में "कोमलता तथा पुरुषता का अद्‌भुत सम्मिश्रण" हो जाता है। यही उसको "यथार्थता" प्रदान करता है। धनिया आले में रखा देवी पात्र नहीं है। वह यथार्थ के धरातल पर जीवन के कठोर संघर्षों में झेलने वाला (और उनसे जूझने वाला) मानवीय पात्र है।" उसके व्यक्तित्व का निर्माण परंपरा भंजक अणुओं से हुआ है।" कामायनी की श्रद्धा की भाँति वह निराशा-हताशा भरे होरी का साथ पगे-पगे देती है, शोषित तथा उपेक्षित का पक्ष-समर्थन करती है और स्वयं तिल-तिल मिटते हुए अपने संपूर्ण व्यक्तित्व से पाठक-मनको वाणी देती तथा समग्रत: अपने धन्या (धनिया) नाम को सार्थक करती है।

गोबर का चरित्र

मनुष्य की आर्थिक सामाजिक स्थिति का सर्वाधिक असर उसके नाम पर होता है कि उक्ति को चरितार्थ करने वाला, पूरा नाम गोबरधन महतो होने पर भी मात्र 'गोबर' नाम से पुकारा-जाना जाने वाला, 15 वर्षीय साँवला, लंबा-इकहरे बदन का गोबर, होरी-धनिया का इकलौता नवयुवा पुत्र है-गरीब किसान-परिवार का होने से एकदम अनपढ़ पर प्रसन्नता की जगह मुख पर असंतोष तथा विद्रोह का भाव लिए हुए जेठ की भयंकर लू-गर्मी में अनथक कार्य करने वाला। अपनी इस प्रथम

झलक में गोबर कुछ खास प्रभाव नहीं छोड़ता, सिवाय इसके कि वह एक निम्नवर्गीय, निर्धन तथा कृषक परिवार का सामान्य सा युवा है।

शीघ्र ही उसका उजड़ जबान का दबंगपन तथा विद्रोह भरा आक्रोशी रूप प्रकट होने लगता है-पिता होरी की विवशता भरी जी-हजूरी तथा जमींदार अमरपालसिंह की कथनी-करनी के वैपरीत्य पर व्यंग्य करने में-"यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।" बाद में भी, अंटी में दो सौ रुपये की गर्मी आते ही वर गाँव वालों पर फट पड़ता है-"उनकी यह मजाल कि मेरे द्वारा पर से बैल खोल ले जाये। वह डाका है खुला हुआ डाका। सारा घमंड तोड़ दूँगा।" उसका यही विद्रोहात्मक आक्रोश स्पष्टवादिता की ही नहीं बदतमीजी तक की सीमा को छूता सा प्रतीत होता है जबकि वह अपने ही पिता होरी से कहता है-"तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है", रायसाहब के लिए वह स्पष्ट घोषणा करता है-"यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता तथा न नाच-रंग में लिप्त रहता है", मातादीन पर करारा वाक्बाण छोड़ता है-"जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे जनमे में लो, मरन में लो, सादी में लो, गर्मी में लो...इतनी कमाई से पेट नहीं भरता?" यहाँ तक कि आवेश में तो वह धनिया को माँ ही मानने से इंकार कर देता है। वस्तुतः 'वह गाँव के अंधविश्वासी तथा रूढ़िग्रस्त जीवन में फूटने वाला नया स्वर है। अधिकारों के प्रति जागरुक तथा अत्याचार के प्रति असहिष्णु युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है, अपने नाम के विपरीत गुण तथा स्वभाव धारण करने वाला...जो होरी की तरह, जमींदार की इच्छा पूर्ति के लिए ईंधन बनने को तैयार नहीं।"

मगर, दूसरी तरफ वह सक्रिय नही है, क्योंकि उसमें बाधाओं का सामना करने की न अक्ल है, न क्षमता। वह तो वाचाल मात्र बन कर ही मानो विरोध-कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठता है। दूसरे शब्दों में, वह कायर है-मात्र मन ही मन अथवा जबानी जमा-खर्च करने में माहिर तथा अवसर करने पर एकदम भीठ एवं पलायन करने वाला। वह पहली ही भेंट में झुनिया के हत्थे चढ़ जाता है, प्रथम प्रेमालाप में ही न जाने कैसे-कैसे ढेर सारे वायदे कर लेता है तथा गर्भवती झुनिया को अपने घर लाते-लाते ही भयवश पीछे रह जाता है, छिपकर माता-पिता की प्रतिक्रियाएं देखता है एवं उनके द्वारा झुनिया को शरण दिये जाते देख तुरंत गाँव छोड़कर भाग खड़ा होता है।

एक पुत्र के रूप में उसमें अपने माता-पिता के प्रति आदर तथा बहिनों के प्रति प्यार है। पिता द्वारा माता को पिटते देख उसमें उग्रता तो आती है पर वह कहता यही है-'अच्छा दादा, बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूँ, मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊंगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।' इसी तरह झुनिया को शरण दिये जाते देख वह माता-पिता के प्रति मन ही मन श्रद्धावनत हो जाता है, तो शहर से घर लौटने पर वह पिता के लिए धोती-चादर, माँ-बहिनों तथा झुनिया के लिए एक-एक जोड़ी साड़ी, सोना हेतु तेल की शीशी, चप्पल, रूपा के लिए जापानी-चूड़ियाँ एवं झूनिया के लिए पिटारी आदि नाना चीजें ले जाता है।

शहर में आते-आते वह चतुर तथा व्यवहार कुशल बन जाता है। पैसे की कद्र समझता जाता है तथा अपनी उन्नति के लिए जोड़-तोड़, जीहजूरी से लेकर नेतागिरी तक सीख जाता है। गाय के मूल्य पर होरी को दी गई सलाह, मित्रों की सहायता से शहर में पैर जमाना एवं खन्ना मिल की हड़ताल में भाग लेना इसी के कुछ प्रमाण हैं। गाँव पहुँचने पर तो वह अपने वाक्कौशल से खार खाये बैठे भोला तक को पटाने में सफल हो जाता है। यहाँ तक कि "संध्या के लिए गोबर यहाँ से चला तो गोई उसके साथ थी तथा दही की दो हांडियाँ लिए जंगी पीछे-पीछे आ रहा था।"

शहरी गोबर एकदम काइयाँ हैं। प्रमाण ? अपने आश्रयदाता मिर्जा को भी वह अपने रुपये नहीं देता पर आजीवन ब्याज को बुरा मानते हुए उसके कष्टप्रद साये में पला बढ़ा होने वाला गोबर, उन रुपयों को ब्याज पर तुरंत उठा देता है। इस समय तक वह पैसे का महत्व समझता ही नहीं, समझने वाला भी बन चुका है। धनिया से वह स्पष्ट कहता है-"मेरा ब्याज क्यों नहीं हुआ ? बोलो। इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपये हो तो हुक्के पानी का काम है, न जात-बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।" वह शहर आने का भी मूलोद्देश्य यही मानता है-"वह सवा सौ की थैली लेकर घर आये तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुँह खोल सके। यही दातादीन तथा यही पटेसरी आकर उसकी हाँ में हाँ मिलायेंगे।"

इसी पैसे की गर्मी से गोबर कुछ अवगुणों को भी पा लेता है। मदिरा-पान, झुनिया को अय्याशी का साधन मान लेना तथा आये दिन उस पर हाथ छोड़ना एवं पड़ोसी के झगड़ों में खामखाह पड़ना उसके लिए सामान्य दिनचर्या सी बन जाती है। वास्तव में तो, केवल एक साल में ही वह सीधा-सादा ग्रामीण युवक नहीं रहता। स्वयं लेखक के अनुसार, "मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दांत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गई है।" यही हवा गाँव में होली के हुड़दंग तथा अपने थोथे आत्मप्रदर्शन में प्रदर्शित करता है।

'गोदान' में गोबर के वस्तुत: तीन रूप हैं-पुत्र, प्रेमी तथा पति। तीनों ही रूपों में वह विकासोन्मुख अथवा कहिये परिवर्तनशील चरित्र की झलक पेश करता है। यह परिवर्तन ही उसको यथार्थपरक रूप प्रदान करता है। पुत्र रूप में उद्धत उद्दंड तथा व्यवस्था विरोध, प्रेमी रूप में अबोध तथा कायर एवं पति रूप में एक सामान्य ग्रामीण युवक गोबर अंतत: आदर्शोन्मुखी बन जाता है जबकि झुनिया की अनथक सेवा देखकर वह झुनिया से क्षमा याचना करता है तथा मन ही मन प्रायश्चित के लिए व्याकुल ही नहीं होता, तय भी कर लेता है कि "अब उसके जीवन का रूप बिल्कुल दूसरा होता जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगा, अभिमान की जगह नम्रता।" इसी की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति वह गाँव जाकर होरी आदि के सामने करता है यहाँ तक कि 'अपने शील स्नेह से सारे गाँव को मुग्ध कर लेता है, हर घर में अपने मीठे व्यवहार की याद छोड़ता है, यहाँ तक कि भोला तो भावोद्रेक से भर कर उसके पैरों पर ही गिर पड़ते हैं।'

वस्तुत: गोबर "होरी के बाद की पीढ़ी का विकासोन्मुख अंकुर है।" नई पीढ़ी के असंतोष का प्रतीक। वह नये जमाने की रोशनी देख चुका है। चाहे गाँव में खेती करे, चाहे शहर में मजदूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने हेतु तैयार नहीं है। होरी के मरने के पश्चात् गोबर मानो पिता के हत्यारों हेतु एक चुनौती की तरह जीवित रहता है। वस्तुत: गोबर भी पीढ़ा का ऐसा युवक है जिस पर परंपरागत संस्कारों का प्रभाव अत्यल्प है। यूँ, उपन्यास में, गोबर एक निर्बल पात्र है-जाति-पात्र तथा व्यक्ति पात्र के बीच का असंतुलित चरित्र। न उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही ठीक तरह से उभर पाया है तथा न किसान वर्ग के महाकाव्य की कथा में सामूहिक उद्देश्य के निमित्त वह अपने अस्तित्व द्वारा कुछ विशेष योगदान ही दे सका है। उसका समस्त तथाकथित पौरुष, सारा विद्रोह तथा आद्योपांत के क्रिया कलाप या तो मात्र लफ्फाजी हैं, प्रतिक्रियात्मक आवेश तथा आक्रोश की उपज अथवा पिटे हुए, हारे व्यक्ति की चीख पुकार। एक पुत्र, प्रेमी, पति, किसी भी रूप में वह समर्थ सिद्ध नहीं होता। फलत: वह सामूहिक वर्ग की चेतना का प्रतीक नहीं, एक दुर्बल व्यक्ति मात्र है।"

फिर भी इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि, "गोबर के चरित्रांकन में प्रेमचंद ने पूर्णतया स्वाभाविक तथा यथार्थपरक दृष्टिकोण ही अपनाया है।" वस्तुत: प्रेमचंद गोबर के माध्यम से नयी पीढ़ी के आक्रोश भरे मन को, प्रतिक्रियात्मक असंतोष तथा व्यवस्था के शिकार, अकर्मण्य बनने को विवश हुए युवा ग्रामीण का अंकन करते हैं जो सन् छत्तीस में ही नहीं, आज भी स्वउन्नति अथवा रोटी-पानी के जुगाड़ के लिए नगरोन्मुखी हो रहा है। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि अपने

रचनाकाल की नयी पीढ़ी का तो वह प्रतिनिधि है ही-50 वर्ष व्यतीत होने पर भी लघु किसानों की आर्थिक दुरावस्था में विशेष परिवर्तन न आने के कारण वह आजकल की भी नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है।"

इकाई-तीन

विलंब से प्रारंभ- हिन्दी नाटक को उत्तराधिकार रूप में संस्कृत तथा प्राकृत की प्रचुर नाट्य-साहित्य की संपत्ति प्राप्त थी, किन्तु इसका प्रयोग अनेक कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व न हो सका। इसलिए हिन्दी-नाट्य-परंपरा का विकास विलंब से हुआ। मुसलमानों के आक्रमणों के कारण राजनैतिक अशांति और उथल-पुथल रही। इस्लाम-धर्म के प्रतिकूल होने के कारण नाटकों को मुगलकाल में उस प्रकार का कोई प्रोत्साहन नहीं मिला जिस तरह का प्रोत्साहन अन्य कलाओं को मुगल-शासकों से प्राप्त हुआ। यही वजह है कि मुगल-शासन के दो ढाई सौ वर्षों में भारतीय-परंपरा की अभिनयशालाओं अथवा प्रेक्षागारों का सर्वथा लोप ही हो गया। अभिनयशालाओं के अभाव में नाटकों का विकास किस प्रकार हो सकता था? यही कारण है कि भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी नाट्य-कला अविकसित ही रही। इसके अतिरिक्त नाटकीय कथोपकथन के समुचित विकास के लिए जिस विकसित गद्य की जरूरत थी, उसका भी इस युग में अभाव था। हिन्दी-नाट्य-परंपरा का विकास दिखाने के लिए उसका काल-विभाजन निम्न प्रकार कर सकते हैं:

1. पूर्व भारतेन्दु युग - (सन् 1867 से पूर्व),
2. भारतेन्दु युग - (1867 से 1905),
3. संक्रांति युग - (1905 से 1915),
4. प्रसाद युग - (सन् 1915 से 1934) और
5. प्रसादोत्तर युग - (सन् 1934 ....)

पूर्व भारतेन्दु युग- भारत में अंग्रेजी का प्रभुत्व स्थापित होने पर उन्होंने अपनी सुविधा के लिए यहाँ अनेक वस्तुओं को आरंभ किया। उन्होंने अपने मनोरंजन के लिए अभिनयशालाओं का संयोजन किया, जो थियेटर के नाम से विख्यात हुईं। इस ढंग का पहला थियेटर प्लासी के युद्ध से पूर्व कलकत्ता में बन गया था, दूसरा थियेटर सन् 1795 ई. में 'लेफ्रेड फेअर' नाम से खुला था। इसके बाद सन् 1812 ई. में 'एथीनियम' और दूसरे वर्ष 'चौरंगी' थियेटर खुला।

इस प्रकार पाश्चात्य-नाट्यकला के संपर्क में सबसे पहले बंगाल आया और उसने उनके थियेटर के अनुकरण पर अपने नाटकों के लिए रंगमंच को नया रूप दिया। भारतेन्दु-युग से पूर्व के नाटकों को नाटकीय दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। यह कुछ कवियों का नाटक लिखने का प्रयास-मात्र था, लेकिन वे पद्य-बद्ध कथोपकथन के अतिरिक्त कुछ नहीं कहे जा सकते। इन नाटकों में कुछ अनूदित और कुछ मौलिक थे। अनूदित नाटकों में कुछ तो नाटकीय काव्य हैं तथा कुछ गद्य-पद्य मिश्रित नाटक। बनारसीदास जैन द्वारा अनूदित 'समयसार' नाटक और हृदयराम द्वारा अनूदित 'हनुमन्नाटक' आदि नाटकीय काव्य हैं। मौलिक नाटकीय काव्यों में प्राणचंद्र चौहान कृत 'रामायण महानाटक' तथा 'कृष्णजीवन', लक्ष्मीराम-कृत 'करुणाभरण' आदि की गणना की जाती है। प्राय: देखा गया है कि हर साहित्य में नाटकों की उत्पत्ति इसी प्रकार नाटकीय काव्यों से हुई। कलात्मक दृष्टि से तत्कालीन अनूदित नाटकों में 'प्रबोध चंद्रोदय' का सर्वप्रथम स्थान है। इसका अनुवाद सन् 1643 ई. में हुआ था। दूसरा नाटक 'आनंद रघुनंदन' है। इसका रचनाकाल सन् 1700

ई. में माना जाता है। कला की दृष्टि से यह उच्चकोटि की रचना नहीं है। इन सभी मौलिक और अनूदित नाटकों की भाषा ब्रजभाषा है। इन सभी नाटकों को नाटक न कहकर नाटकीय-काव्य कहा जा सकता है। इसी परंपरा में आगे चलकर सन् 1841 ई. में भारतेन्दु के पिता गोपालचंद्र का 'नहुष' और सन् 1861 ई. में राजा लक्ष्मणसिंह-कृत 'शकुंतला' उल्लेखनीय हैं। 'नहुष' में नाटकीय तत्व अवश्य मिलते हैं। अत: हिन्दी नाटकों का आरंभ यहीं से मानना चाहिए। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी-नाटकों का सूत्रपात संस्कृत की परंपरा से हुआ। आगे चलकर हिन्दी-नाट्य-साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु-युग आरंभ होने पर जब हिन्दी-नाटकों का संपर्क अंग्रेजी नाटकों से स्थापित हुआ, तब संस्कृत की नाट्य परंपरा के स्थान पर अंग्रेजी नाट्य परंपरा ने अपना स्थान बना लिया।

भारतेन्दु युग- हिन्दी-नाटकों की अविच्छिन्न परंपरा भारतेन्दु जी से शुरू होती है। आपके नाटक अभिनेय होते थे। इस समय नाटक की प्राचीन परंपराओं का त्याग होने लगा था। भारतेन्दु ने अपने पिता के अनुकरण पर नाटकों के अनुवाद किये और मौलिक नाटक भी लिखे। उन्होंने अपने नाटकों को प्राचीन लक्षणों के अनुकूल ही लिखने का प्रयत्न किया था, पर उनके नाटकों पर स्पष्टत: बंगला तथा फारसी नाटक-शैली की छाप है। उन्होंने इन शैलियों को जान-बूझकर ग्रहण किया हो ऐसी बात नहीं है, पर इतना तो अवश्य है कि वे किसी न किसी रूप में उनसे प्रभावित अवश्य रहे और उसी दृष्टि से उन्होंने अपने नाटकों को रंगमंच के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप नाटकों की भारतीय परंपरा भारतेन्दु के नाटकों में पाश्चात्य परंपरा से अछूती न रह सकी। इस प्रकार उनके नाटकों ने सामयिक बनकर परवर्ती नाटककारों के सामने आधुनिक हिन्दी-नाटकों की रूपरेखा प्रस्तुत की और उस दिशा में दूसरों को बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इस युग में अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के नाटकों के सफल अनुवाद हुए। भारतेन्दु जी ने सन् 1925 ई. में प्रथम अनूदित नाटक 'विद्या सुंदर' हिन्दी को दिया। इसके पश्चात् मौलिक नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम योगिनी', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी' आदि तथा अनूदित नाटक 'विद्या सुन्दर', 'मुद्राराक्षस' आदि नाटक भारतेन्दु जी ने लिखे।

भारतेन्दु जी के समकालीन लेखकों में बद्रीनारायण 'प्रेमधन' का 'भारत सौभाग्य'; प्रतापनारायण मिश्र के 'कलि प्रभाव', 'गौ-संकट', 'त्रिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार' राधाकृष्णदासजी के 'महारानी पद्मावती' तथा 'महाराणा प्रताप' केशव भट्ट के 'सज्जादसम्बुज', 'समवाद सौसन' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीनिवासदास के 'प्रणयी प्रणय', 'मयंक मंजरी': सालिगराम का 'माधवानल कामकंदला' आदि नाटक भी पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इनमें से अधिकांश नाटकों का कलात्मकता की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है।

भारतेन्दु-युग में संस्कृत के प्राय: सभी अच्छे नाटकों के अनुवाद हुए। भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', 'मालती माधव' तथा 'महावीर चरित' का हिन्दी में अनुवाद हुआ। सन् 1898 ई. में लाला सीताराम ने कालिदास के 'मालविकाग्नि मित्र' का हिन्दी-अनुवाद किया। इसके अलावा 'वेणी संहार', 'मृच्छकटिक', 'रत्नावली' तथा 'नागानंद' के भी हिन्दी अनुवाद हुए। इन संस्कृत के नाटकों के अतिरिक्त बंगला से भी नाटकों के अनुवाद हुए। माइकेल मधुसूदन कृत 'पद्मावती' तथा 'कृष्णा मुरारी' आदि के सफल अनुवाद सामने आये। इसी समय अंग्रेजी से भी अनुवाद की परंपरा चल पड़ी। शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु', 'वेनिस नगर का सौदागर' तथा 'वेनिस नगर का व्यापारी', 'कमेडी ऑफ एरर्स' का 'भ्रमजालक', 'एज यू लाइक इट' का 'मन भावना' तथा 'रोमियो एंड जूलियट' का 'प्रेम-लीला', 'मैकबैथ' का 'साहसेंद्र साहस' के नाम से अनुवाद हुआ।

इस तरह नाटक-निर्माण की दृष्टि से भारतेन्दु-युग में नाटकों के प्राचीन विषयों की पुनरावृत्ति ही नहीं हुई, अपितु कतिपय ऐसे नवीन विषयों को भी जन्म दिया गया, जो भावी हिन्दी-नाटककारों के लिए पथ-प्रदर्शक बन गये। इसमें संदेह नहीं कि कई कारणों से यह काल नाटक-रचना के लिए

क्षणिक ही सिद्ध हुआ और अगले दस वर्षों में किसी महत्वपूर्ण नाटक की रचना न हो सकी, फिर भी इसी काल ने प्रसाद-युग को जन्म दिया और यदि यह कहा जाये कि भारतेन्दु-काल में ही प्रसाद जी विद्यमान थे तो अत्युक्ति न होगी।

संक्रांति-युग- प्रसाद-युग के आरंभ होने के पहले यह दस वर्ष का काल बड़े महत्व का है। बंग-भंग के प्रश्नों को लेकर समस्त देश में राष्ट्रीय-आंदोलन हुए। इसका नाट्य-साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इन दस-ग्यारह वर्षों का नाट्य-साहित्य भारतेन्दु-युग के नाट्य-साहित्य से कई बातों में भिन्न हो गया। इसका स्पष्ट प्रभाव ऐतिहासिक, प्रेम-प्रधान तथा समस्यामूलक नाटकों पर पड़ा। कला की दृष्टि से नाटकों में किसी तरह की विशेषता न आ सकी। पौराणिक कथानकों को लेकर जो नाटक लिखे गये, उनमें महावीरसिंह कृत 'नलदमयंती', जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' और बद्रीनाथ भट्ट कृत 'कुरुवनदहन' अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में शालिगराम कृत 'कुरु-विक्रम', वृंदावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति उदाल' और बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चंद्रगुप्त' और 'तुलसीदास' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ भारतेन्दु-युग की अपेक्षा ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण अधिक सफलता से किया गया। समस्या-प्रधान नाटक सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों का समन्वय लेकर उपस्थित हुए। नाटकों में मिश्र-बंधुओं की सन् 1915 ई. की 'नेत्रोन्मीलन' रचना महत्वपूर्ण है। प्रहसनों में बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' अधिक प्रसिद्ध है।

इस संक्रांति युग में अनूदित नाटकों की परंपरा भी चलती रही। अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत से सफल अनुवाद होते रहे। बंगला से द्विजेन्द्रनाथ राय के नाटकों के अनुवाद हुए।

इस प्रकार जब हिन्दी-नाटक संस्कृत तथा बंगला से अनुप्राणित हो रहे थे, उसी समय रंगमंच के क्षेत्र से पारसी नाटक हमारे सामने आए। पारसी नाटक कंपनियों ने आकर्षक और मनोरंजक बनाकर हमारे सामने अपने नाटक उपस्थित किये। ये नाटक साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से ऊंचे न थे, तथापि उनमें नाट्यकला का आकर्षण तो था ही। हिन्दी नाट्य-कला भी इस ओर झुकी। हिन्दी में इस प्रकार के नाटक उपस्थित करने का श्रेय नारायण प्रसाद बेताब, पं. राधेश्याम कथावाचक और हरेकृष्ण जौहर को है।

संक्रांति-युग में नाटकों के क्षेत्र में कोई विशेष उन्नति तो नहीं हुई पर भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली का प्रचलन हो गया। विषय-वस्तु में धार्मिकता का स्थान सामाजिकता और ऐतिहासिकता ने ले लिया। नाटककारों का दृष्टिकोण यथार्थवाद से प्रभावित हुआ। इस प्रकार संधि-काल के नाट्य-साहित्य में ऐसा परिवर्तन हुआ जो आगे चलकर प्रसाद-युग को महत्वपूर्ण बनाने में सहायक हो सका।

प्रसाद-युग- प्रसादजी ने हिन्दी-नाटकों को एक नई दिशा तथा नई गति प्रदान की। उनके मौलिक नाटकों ने न केवल लोगों के बंगला के प्रति आकर्षण का ही शमन किया वरन् उच्चकोटि का नाट्य-साहित्य भी हिन्दी को दिया। प्रसाद-युग नाट्य साहित्य की कई धाराओं को लेकर सामने आया। इस प्रकार भारतेन्दु काल में जिन नाटकीय प्रवृत्तियों का बीजारोपण हुआ था, वे संधिकाल में अंकुरित होकर प्रसाद-युग में कतिपय नवीन चेतनाओं और नवीन विचारधाराओं को लेकर आगे बढ़ीं। प्रसाद-युग में नाटकों पर शेक्सपियर की नाट्य-कला का विशेष प्रभाव पड़ा। हिन्दी के नाटककारों को प्रारंभ में संस्कृत नाट्य-साहित्य से जो प्रेरणा मिली, वह भारतेन्दु काल में पाश्चात्य नाट्य-कला से आंशिक रूप में प्रभावित होकर प्रसाद-युग में एकदम बदल गई।

प्रसाद-युग में कई पौराणिक नाटक लिखे गये। मैथिलीशरण गुप्त का 'तिलोत्तमा', कौशिक का 'भीष्म' तथा गोविन्दबल्लभ पंत का 'वरमाला' विशेष महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा', प्रेमचंद का 'कर्बला', मिलिन्द का 'प्रताप प्रतिज्ञा',

उदयशंकर भट्ट का 'विक्रमादित्य' तथा सेठ गोविन्ददास का 'हर्ष' उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय धारा में प्रेमचंद का 'संग्राम' उत्कृष्ट नाटक है। समस्या-प्रधान नाटकों में लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सन्यासी', 'राक्षस का मंदिर' और 'मुक्ति का रहस्य' नवीन चेतना को लेकर उपस्थित हुए। वर्तमान युग की उलझती हुई समस्याओं के कारण यह परंपरा विकसित ही होती चली गई।

प्रसाद-युग में अनुवाद भी हुए। सत्यनारायण ने भवभूति कृत 'मालती माधव' और गुप्त जी ने भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों में शेक्सपियर के 'ओथेलो' का अनुवाद हुआ। रूसी लेखक टॉलस्टाय के तीन नाटकों के अनुवाद 'तलवार की करतूत', 'अंधेरे में उजाला' और 'जिंदा लाश' के नाम से प्रकाशित हुए। बेल्जियम के प्रसिद्ध कवि मारिस मेटरलिंक की दो छोटी नाटिकाओं का हिन्दी-अनुवाद पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने किया।

प्रसादजी स्वयं एक युग-सृष्टा थे। उनके नाटकों का विषय बौद्धकालीन-स्वर्णिम अतीत है। उनके नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय और रवि बाबू की सी दार्शनिकता और भावुकता मिलती है। प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। नाटकीय विधान में प्रसाद जी ने अपने नाटकों को सर्वथा रूढ़िवादी परिपाटी से पृथक्‌रखा। उन्होंने प्राचीनता के स्वरूप को ही ग्रहण किया। हम उनके नाटकों में प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य-कला का समन्वय पाते हैं। नाटक-रचना की दृष्टि से भारतेन्दु युग की अपेक्षा प्रसाद युग ज्यादा सफल रहा। भारतेन्दु जी जहां अपने युग के नेता थे, वहां प्रसाद जी अपने युग के नेता न हो सके, उनकी नाट्य-कला अपने समकालीन नाटककारों को समान रूप से प्रभावित न कर सकी। वैज्ञानिक सुधारों और राजनीतिक हलचलों के कारण प्रसाद-युग का कलाकार स्वतंत्र चेता हो गया था। प्रसाद जी की रचनाएं व्यक्तिगत साधना का परिणाम थीं, इसलिए प्रसाद अपने क्षेत्र में अकेले ही रहे।

प्रसादोत्तर युग (आधुनिक काल) - सन् 1934 ई. से हिन्दी नाट्य-साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ होता है। इस युग में नाट्य-साहित्य के नवीन प्रयोग हुए। फ्रायड के सिद्धांतों की धूम मची हुई थी। इस समय पाश्चात्य साहित्य में एक नवीन युग का प्रारंभ हुआ। ऑस्कर वाइल्ड, वर्जीनिया वुल्फ, एच.जी. वेल्स, गाल्सवर्दी आदि की रचनाओं में प्रत्येक समस्या बुद्धिवाद तथा उपयोगितावाद की कसौटी पर कसी गई। नाट्य-साहित्य में इब्सन के समस्या-प्रधान नाटकों की धूम थी। ये सभी प्रभाव आधुनिक काल में हिन्दी नाट्य-कला पर पड़े। सबसे पहले लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इन प्रभावों को अपने समस्या-प्रधान नाटकों में ग्रहण किया। उनके नाटकों में नारी समस्या को प्रमुख स्थान मिला।

आधुनिक युग के प्रथम उत्थान-काल (सन् 1934-1942 ई.) में पौराणिक धारा के अंतर्गत भी लिखे गये। उदयशंकर भट्ट की 'राधा' इस क्षेत्र में विशिष्ट रचना है। अन्य पौराणिक आख्यानों पर आधारित उदयशंकर भट्ट कृत 'अंबा', 'सागर विजय', 'मत्स्यगंधा' और 'विश्वामित्र' उल्लेखनीय हैं। कला की दृष्टि से उग्र जी का 'गंगा का बेटा' महत्वपूर्ण नाटक है। ऐतिहासिक क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी ने अधिकारपूर्ण नाटक लिखे। अन्य ऐतिहासिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट का 'दाहर' गोविंदवल्लभ पंत के 'राजमुकुट' और 'अंत:पुर का छिद्र' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'जय-पराजय', हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा-बंधन', 'शक्ति-साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्न-भंग', 'आहुति' और सेठ गोविन्ददास का 'शशिगुप्त' उल्लेखनीय हैं। पंत जी का 'ज्योत्स्ना' नाटक प्रतीकवादी है। इस युग में एकांकी नाटकों की रचना भी हुई। भुवनेश्वर का 6 एकांकियों का संग्रह 'कारवां' के नाम से प्रकाशित हुआ। रामकुमार वर्मा कृत 'पृथ्वीराज की आंखें', रेशमी टाई तथा 'चारुमित्रा', उदयशंकर भट्ट कृत, 'अभिनव एकांकी' तथा 'स्त्री हृदय' और अश्क जी कृत 'देवताओं की छाया में' विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

द्वितीय उत्थान काल (सन् 1942 से) में नाटक के क्षेत्र में ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना विशेष रूप से हुई। स्वतंत्रता प्राप्त होने पर कतिपय राष्ट्रीय भावना प्रधान नाटक भी लिखे

गये। इस दिशा में सेठ गोविन्ददास के 'पाकिस्तान' और 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' विशेष महत्व के हैं। ऐतिहासिक नाटकों में प्रेमी जी के 'मित्र', 'विष-पान', 'उद्धार' तथा 'शपथ' लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'गरुड़ध्वज', 'वत्सराज' तथा 'दशाश्वमेघ', बेनीपुरी का 'संघमित्रा' और 'सिंहलविजय', वृंदावनलाल वर्मा का 'पूर्व की ओर', 'बीरबल', 'झांसी की रानी', 'कश्मीर का कांटा', 'शिवाजी', चतुरसेन शास्त्री का 'अजीतसिंह' तथा 'राजसिंह' आदि प्रसिद्ध हैं। बाल-साहित्य में अच्छे एकांकी नाटकों की रचना हुई। रेडियो में भी प्राय: एकांकी नाटक प्रसारित होते रहते हैं। शिक्षा-संस्थाओं और सांस्कृतिक आयोजनों के अवसर पर हिन्दी रंग-मंच की बढ़ती हुई माँग के कारण हमारा एकांकी नाट्य-साहित्य पर्याप्त विकसित होता जा रहा है।

हिन्दी रंगमंच का तात्पर्य

समस्त कलाओं में सर्वोत्तम कला है-काव्य और काव्य के समस्त रूपों में सर्वोच्च रूप है-नाटक। नाटक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'नट्', 'नाट्' और 'नृत' धातु से मानी गयी है। अर्थ है-'अभिनय' जिसमें गात्र-विक्षेपण और अनुकृति दोनों ही सम्मिलित हैं। संस्कृत में इसको रूपक भी कहा गया है यद्यपि रूपारोप को लेकर दोनों में सूक्ष्म अन्तर आ जाता है। नाटक का मूलाधार होता है-रंगमंच। कारण ? "नाटककार रंगमंच के ढाँचे में ही अपनी कथा का विन्यास करता है ... फिर वह कथा के अनुरूप वातावरण प्रस्तुत करने के लिए दृश्य-विधान की बात सोचता है। यह दृश्य-विधान ही मूलत: नाटक के रंगमंचीय कला का रूप प्रदान करता है ... दृश्य विधान ही नाटक को रंगमंच से सम्बद्ध कर देता है।" संस्कृत के नाट्य मन्दिर, नाट्य मंडप, प्रेक्षागृह, रंगशाला, रंगभूमि, रंगगृह, रंगभवन, रंगमंडप तथा पाश्चात्य देशों के स्टेज और ऑडिटोरियम आदि भी रंगमंच के ही पर्याय हैं।

हिन्दी नाट्य (रंगमंच) की पृष्ठभूमि : संस्कृत कालीन नाटक- मनोविज्ञान की दृष्टि से नाटक अथवा अभिनय की मूल प्रवृत्ति है-अनुकरण जो मनुष्य में आदिम और अनादि है। भारत में नाटीक और रंगमंच अत्यन्त प्राचीन हैं। वैदिक साहित्य में प्राप्त 'यम-यमी', 'पुरूरवा उर्वश' और 'सोमराज का क्रय-विक्रय' कथाएं सामवेद के गीत, यजुर्वेद का अभिनय, अथर्ववेद का रस तथा शैलूष, नृत, नृत्यादि के प्रयोगादि ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' तक तो उसका शास्त्रीय विवेचन भी पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। महाकाव्य-काल में तो नाटकसंघ, रंगाभिसार, नट-कुशीलव आदि के पर्याप्त उल्लेख रंगमंच के पर्याप्त प्रयोगों के भी सूचक हैं। 'देवासुर संग्राम', 'अमृत-मन्थन' तथा 'त्रिपुरदाह' एवं 'रामायण-कथा' आदि उस काल के प्रसिद्ध नाटक बताए गए हैं। संस्कृत साहित्य में तो नाटकों की विपुल और समृद्ध परम्परा है यद्यपि आलि-प्राकृत से लेकर आगे तो यह नाट्य-परम्परा दुर्बल ही होती गई है।

हिन्दी-पूर्व की रंगमंचीय स्थिति

भरत-पूर्व काल- आज यह बात सर्वमान्य है कि रंगमंच-विधान भारतीय नाट्य-कला का आरम्भ से ही अभिन्न अंग रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. रामगोपालसिंह चौहान ने ठीक ही कहा है कि "संस्कृत में रंगमंच की बड़ी प्राचीन परम्परा उनसे काफी समय पूर्व से विकास कर रही थी और उनके समय तक उसका पर्याप्त विकास हो चुका था।" यदि यह कहा जाए कि भरत पूर्व ही से रंगमंच सम्बन्धी सूक्ष्म व्यापक, गहन और तर्कसंगत विवेचन हो चुका था तो असंगत न होगा। रंगमंच के प्रकार, रूप तथा क्षेत्र आदि के साथ-साथ अभिनेय दृश्य-विधान, चमत्कारिक दृश्य, अभिनेताओं की वेशभूषा तथा सजावट, दृश्य-निर्माण, ध्वनि-नियंत्रण, रंगमंच-निर्देश और दर्शकों के दृष्टिकोण से आसन-व्यवस्था, रंगमंच की सजावट आदि अनेक विषयों के भरत-पूर्व मिलने वाले संकेत इसी धारणा की पुष्टि करते हैं।

भरत-काल- भरत-काल में रंगमंच-विधान की कला चरम उत्कर्ष को पहुँच गई थी। प्रेक्षागृह के निर्माण का इतना विस्तृत वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता।

भरत के उपरान्त- संस्कृत में रंगमंचीय स्थिति का आभास महिम भट्ट, रामचन्द्र, विश्वनाथ, धनंजय आदि आचार्यों के शास्त्रीय विवेचन में भी मिलता है। संस्कृत में मिलने वाले संकेतों से यह भी सूचना मिलती है कि जनसाधारण में भी नाटकों और उनके मंचन के प्रति रुचि तथा जागृति थी।

जैन, बौद्ध और देशी भाषाओं के साहित्य का काल- किन्तु जैन तथा बौद्ध साहित्य के रचना काल में रंगमंच की स्थिति संस्कृत-काल जैसी नहीं रही। जैन और बौद्ध-साहित्य में रंगमंच पर शास्त्रीय चिन्तन नहीं हुआ। किन्तु रंगमंच के प्रति थोड़ा बहुत आकर्षण अवश्य ही बना रहा। 'गिरनार' और 'सीताबेंगो' की गुफाओं में प्राप्त प्रेक्षागृह और 'जोगीमारा गुहा' में प्राप्त रंगमंच तथा लेख आदि इसके प्रमाण हैं। इसी काल में रचित प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य में भी नाटकों का अभाव रहा। लोक-नाट्य के रूप में रंगमंच अवश्य स्थिर रहा। इस सम्बन्ध में डॉ. दशरथ ओझा का कथन है कि "हमारी देशी भाषाओं में साहित्यिक नाटक से पूर्व जन-नाटक शताब्दियों से अभिनीत होते आ रहे थे। बंगला में यात्रा एवं कीर्तन बिहार में विदेशिया, अवधी, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा खड़ी बोली में रास, नौटंकी, स्वांग तथा भाण, राजस्थानी में रास, मुकुट तथा ढोलामारू, गुजरात में भवाई, महाराष्ट्र में लाड़िते और तमाशा, तमिल में भगवत मेल आदि नाटक विद्यमान थे।" किन्तु इसे हम रंगमंच का सुनिश्चित एवं सुविकसित रूप नहीं कह सकते। ये तो रंगमंच के अवशेष मात्र थे।

हिन्दी रंगमंच

पारसी थ्योट्रिकल कम्पनियाँ- रंगमंच के पुनरुद्धार और विकास में सर्वाधिक श्रेय प्राप्त है-- पारसी थियेटरिकल कम्पनियों को। उन्होंने रंगमंचीय दृष्टि से हिन्दी की अपार सेवा की। डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान का कहना है कि "भारत में सबसे पहला रंगमंच एक रूसी कलाकार ने कलकत्ते में सन् 1818 में बनाया था।" सबसे पहली जिस पारसी कम्पनी की स्थापना 1870 ई. में हुई थी, उसका नाम था ओरिजनलथियेट्रीकल कम्पनी। इसके पश्चात् विक्टोरिया थियेट्रीकल कम्पनी, अलफेड थियेट्रीकल कम्पनी, न्यू अल्फ्रेड कम्पनी, ओल्ड पारसी थियेटर कम्पनी, जुबली कम्पनी, अल्कजोन्डिया कम्पनी, इम्पीरियल कम्पनी तथा लाइट ऑफ इण्डिया कम्पनी आदि की स्थापना हुई। किन्तु इन कम्पनियों की दृष्टि पूर्णतः व्यावसायिक थी। परिणामतः निम्न कोटि की विषय वस्तु, कुरुचिपूर्ण भोंडा अभिनय, सस्ता मनोरंजन तथा असंगत धार्मिक चित्रण इनके प्रधान दोष थे। किन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रंगमंच की दृष्टि से इनके प्रयोग सफल और प्रेरणादायक रहे। डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान ने ठीक ही कहा है कि "पारसी थियेटर कम्पनियों ने पहली बार विविध दृश्य-विधानों का आयोजन रंगमंच पर आरम्भ किया और एक साथ कई दृश्य-विधान पर्दों की सहायता से रंगमंच पर दिखाये जाने लगे। यथासम्भव प्राकृत दृश्यों को रंगमंच पर प्रस्तुत कर वातावरण बनाना और नाटक के प्रभाव को उत्पन्न करना पारसी थियेटर कम्पनियों की रंगमंच को एक महान देन है, जिसे नकारा नहीं जा सकता।" नदी में उठती लहरें, नाव चलना, रथ चलना, पर्वत-जंगल-महल आदि के दृश्य, द्रौपदी का चीर बढ़ना, जयद्रथ के कटे सिर का उड़ना, रक्तप्रवाह होना, मजनूं का अपना दिल काटकर हथेली पर रखना, आंधी, बिजली, बादलों की गड़गड़ाहट, सितारे टूटना, मुँह से अंगारे-सर्पादि निकालना, अन्तरिक्ष में तीर चलना, सिर का कटना, मुकुट का एक सिर से दूसरे पर आ जाना, विष्णु चक्र, गरुड़ का उड़ना, सीता का पृथ्वी पर समाना आदि को रंगमंच पर दिखाना, भव्य सेट और भव्य पर्दे, कुशल प्रकाश-योजना और वाणी-संयोजन आदि अनेक रंगमंचीय विशेषताएं इन्हीं कम्पनियों की देन हैं।

इन कम्पनियों ने परोक्ष रूप से भी हिन्दी रंगमंच की सहायता की। इन कम्पनियों में खेले जाने वाले कुत्सित और भोड़े नाटकों से एक ओर जहाँ जनसाधारण इनकी ओर आकर्षित हुआ, वहीं दूसरी ओर सभ्य-सुशिक्षित वर्ग भी इन कमियों को दूर करने में प्रवृत्त हुआ। कहा जाता है कि भारतेन्दुजी ने शकुन्तला की सखियों के मुख से 'गोरी धीरे चलो कमर लचक न जाये' गाना सुना तो वे अभिनयशाला से उठकर चले गये थे। यही बात जयशंकर प्रसाद के सम्बन्ध में कही जाती है। वे भी सम्राट अशोक को कुत्सित गाना गाते देखकर रायकृष्णदास के साथ प्रेक्षागृह से बाहर आ गये थे। पारसी थियेटर के इस भौंडे रंगमंच के सम्बन्ध में भारतेन्दुजी ने स्पष्ट लिखा है कि "काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसके धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और 'पतरी कमर बल खाय' गाने लगा तो डॉक्टर थीबो, बाबू प्रेमदास मित्र प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता, यह लोग कालीदास के गले पर छुरा फेर रहे हैं।" आगे चलकर इन्हीं विद्वानों ने हिन्दी रंगमंच को सुधारने और विकसित करने में अत्यधिक योग दिया। वे पारसी रंगमंचीय दोषों को देखकर ही सुधार की दिशा में प्रवृत्त हुए थे।

अव्यावसायिक कम्पनियाँ- इस काल में कुछ अव्यावसायिक कम्पनियाँ भी स्थापित हुईं। इन कम्पनियों का उद्देश्य, निश्चय ही दूसरे प्रकार का था। भिन्न प्रकार का था-लोगों में धर्म और प्राचीन धर्म-पुरुषों के प्रति उत्सुकता तथा अनुराग उत्पन्न करना। इस प्रकार की कम्पनियों में से दो ने विशेष ख्याति अर्जित की काठियावाड़ की 'सूर विजय' और उस्ताद विश्वम्भर सहाय व्याकुल की मेरठ की 'व्याकुल भारत।' सूर विजय के माध्यम से राधेश्याम कथावाचक के एक नाटक को विशेष प्रसिद्धि मिली-'उषा अनिरुद्ध।' व्याकुल भारत के तीन नाटकों को प्रसिद्धि मिली-बुद्ध देव, सम्राट चन्द्रगुप्त और तेग सितम। निश्चय ही इन कम्पनियों ने पारसी थियेटर से उत्पन्न तत्कालीन भाँति-भाँति की कमियों को दूर करना चाहा। श्री कृष्णदास का कथन है कि "यद्यपि इनमें भी पारसीपन का प्रभाव विद्यमान था, परंतु इनका ध्येय हिन्दी के नाटक खेलना था और इसमें भी सन्देह नहीं कि पारसी कम्पनियों द्वारा जो कुरुचि और भौंडापन जनता को प्रिय हो चला था, उसको हटाने में उन्होंने बड़ी सहायता पहुँचाई।"

भारतेन्दु काल- साहित्य के अन्य रूपों की भाँति नाटक और उसके रंगमंच के लिए भी जिस महान कलाकार ने सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रयत्न किये, वे थे-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। भारतेन्दु नाटककार, कुशल अभिनेता, कुशल प्रबन्धक, रंगमंच संयोजक और निर्देशक-सभी कुछ थे।

प्रसाद-काल- भारतेन्दु काल में ही हिन्दी-रंगमंच समयकालीन बंगला और अंग्रेजी रंगमंच से परिचित होने लगा था। इसी काल में रारेन हेस्टिंग्स और सर इ. इम्प आदि के प्रयत्नों से कलकत्ता में एक नाट्यगृह और 'कलकत्ता थियेटर' का निर्माण किया गया जिसमें प्राय: अंग्रेजी नाटक अभिनीत किए जाते थे। वे नवीन साधनों से सुसज्जित थे। मुद्रण कला की प्रगति, गद्य-प्रधानता और पश्चि नाटकों के प्रचार-प्रसार के कारण हिन्दी में भी नाटकों का महत्त्व बढ़ा। भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी रंगमंच पर जिनसे सर्वाधिक ध्यान दिया, वे थे-जयशंकर प्रसाद। भारतेन्दु की भाँति प्रसाद भी पारसी नाटकों और रंगमंच से चिढ़ते थे।

वर्तमान काल- किन्तु स्वातन्त्रयोत्तकाल में अवश्य ही दृश्य-परिवर्तन हुआ। एक ओर तो नाटककारों पर यह भली-भाँति प्रकट हो गया कि रंगकर्म के निकट के ज्ञान बिना उत्कृष्ट कोटि के नाटक को जन्म दे पाना असम्भव है और दूसरी ओर शिक्षा के बढ़ते हुए प्रचार-प्रसार से हिन्दी-रंगमंच की आवश्यकता तीव्रतर होकर सामने आई। यह इच्छा कुछ अंशों में कार्यान्वित भी की गई है। इसके दो रूप सामने आये-सरकारी संस्थाएं और गैर-सरकारी संस्थाएं। इन दोनों प्रकार की संस्थाओं में सात ने विशेष ख्याति अर्जित की-पृथ्वी थियेटर्स, जन नाट्य संघ (पीपुल्स थियेटर), त्रि-कला केन्द्र

(थ्री आटर्स क्लब), संगीत समाज, संगीत नाटक अकादमी, भारतीय कला केन्द्र और लिटिल थियेटर ग्रुप। पृथ्वी-थियेटर्स की स्थापना सुप्रसिद्ध सिने कलाकार पृथ्वीराज ने की। सन् 1944 में। इसे वर्तमान काल की पहली नाटक कम्पनी कहा जा सकता है। इस कम्पनी ने पृथ्वीराज के आठ नाटकों का प्रदर्शन भिन्न-भिन्न शहरों में किया। किन्तु धनाभाव के कारण सन् 1960 में कम्पनी बन्द कर दी गई। जन-नाट्य संघ से तात्पर्य पीपुल्स थियेटर से है। तानाशाही ताकतों से लड़ने के लिए इन थियेटरों की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में हुई थी। भारत में सन् 1942-43 में इस संस्था ने कार्य आरम्भ कर दिया था। दिल्ली में इसके प्रमुख कार्यकर्ता थे-हबीब तनवीर, शीला भाटिया तथा स्नेहलता सान्याल। लगभग प्रत्येक बड़े नगर में पीपुल्स थियेटरों की स्थापना हुई और इनके माध्यम से अनेक नाटक प्रस्तुत किए गए। सभी शाखाओं को लेकर सेंट्रल बेले ट्रूप की सन् 1945 में स्थापना हुई, किन्तु बाद में सन् 1948 में वह भी बन्द कर दिया गया। बाद में नगरों की पीपुल्स थियेटर की शाखाओं में भी शिथिलता आ गई। त्रि-कला केन्द्र से तात्पर्य थ्री आर्टस क्लब से है। इसकी स्थापना शिमली में सन् 1953 में हुई थी। बाद में इसका केन्द्र देहली आ गया। देहली में इसे अधिक प्रसिद्धि मिली। कितने ही नाटकों का सफल अभिनय किया गया। संगीत-नाटक अकादमी की स्थापना से भी रंगमंच को बल मिला। अकादमी की कार्य-प्रणाली बहुविध है-कलाकारों को सम्मानित करना, गोष्ठियाँ आयोजित करना, प्राचीन वस्त्र तथा मुखौटे आदि सहेज कर रखना, विभिन्न उत्सव मानना, प्रतियोगिताओं का आयोजन करना, नाटकों को पुरस्कृत करना। लिटिल थियेटर ग्रुप की लहर चलाने का श्रेय समर चटर्जी को प्राप्त है। उन्होंने कलकत्ता और देहली में उसके अनेक केन्द्र खोले। इन्हीं से प्रभावित होकर बच्चों के लिए कई क्लब शुरू किए गए हैं।

निष्कर्ष- रंगमंच हिन्दी में सदा उपेक्षित रहा है। उसके कितने ही कारण हैं-रंगमंचीय नाटकों का अभाव, रंगशालाओं का अभाव, रंगमंचीय सुविधाओं का अभाव, आज स्थिति अधिक भयावह है। सिनेमा तथा टेलीविजन उसके सबसे बड़े प्रतिस्पर्धी हैं। मनोरंजन के वे इतने शक्तिशाली साधन हैं कि उनसे होड़ लेना आसान नहीं है। इस विषय में जब तक गंभीरतापूर्वक नहीं सोचा जायेगा, किसी व्यापक योजनाओं को जन्म नहीं दिया जायेगा, तब तक हिन्दी-रंगमंच का भविष्य अस्थिर ही रहेगा। किन्तु इस अस्थिरता का कितना घातक प्रभाव नाट्य-रचना पर पड़ा और आगे भी पड़ेगा, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। रंगमंच के सीधे ज्ञान के बिना सफल नाटक लिखे ही नहीं जा सकते। यदि लिखे भी जायेंगे तो वे अधूरे रहेंगे। नाटकीय दृश्य-योजना, संवाद योजना तथा भाषा-शैली का वास्तविक स्वरूप ही उस समय प्रकट होता है जब नाटक मंचित किए जाते हैं। मंचन से अनभिज्ञ कलाकार अधूरे नाटक ही लिखेगा-ऐसे नाटक जो केवल पढ़ने के लिए लिखे गये खेले जाने के लिए नहीं। किन्तु क्या उन रचनाओं को नाटक कहा जा सकता है? कदापि नहीं। श्री नेमीचन्द जैन की यह चेतावनी नहीं भूलनी चाहिए कि अभिनय-प्रदर्शन के बिना नाटक की सार्थकता अथवा सम्पूर्णता नहीं, बल्कि जो अभिनेय नहीं, अभिनयोपयुक्त नहीं, उसे नाटक ही नहीं कहा जा सकता।

उपन्यास का अर्थ एवं परिभाषा

हिन्दी में उपन्यास अंग्रेजी के नावल का पर्याय है। उपन्यास शब्द की रचना उप और निःउपसर्गों के योग से क्षेपणार्थवाची असु धातु में धत्र् प्रत्यय के योग से हुई और इसका अर्थ समीप रखना है अर्थात् उपन्यास में लेखक जीवन को बहुत निकट रूप में प्रस्तुत करता है। **क्रोस के अनुसार** - "उपन्यास उस गद्यमय गल्प-कथा का नाम है जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है।" **श्यामसुन्दरदास के शब्दों में** - "उपन्यास मनुष्य में वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा

है।" मुन्शी प्रेमचंदजी के अनुसार - "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों का उद्‌घाटन करना ही उपन्यास का काम है। "न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला में बंधा हुआ लम्बा आकार का काल्पनिक गद्य कथानक है। इसमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों के कार्यों का चित्रण किया जाता है।"

उपन्यास के तत्व

विद्वानों ने उपन्यास के छः तत्व माने हैं - (1) कथावस्तु या घटनाक्रम, (2) चरित्र-चित्रण या पात्र। (3) कथोपकथन (4) शैली, (5) देशकाल, (6) उद्देश्य। इन छः तत्वों में प्रथम, द्वितीय तथा अंतिम बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

(1) **कथावस्तु (घटनाक्रम)** - मूल कथा ही कथावस्तु कही जाती है। इस कथावस्तु की तीन अवस्थाएँ होती हैं - उदय, विकास और अंत। उपन्यास में वर्णित सभी घटनाएँ एकबद्ध होनी चाहिए। उनमें कहीं भी विश्रृंखला न आ जाए इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कथानक के चुनाव की कोई भी सीमा नियत की जा सकती है। वह इतिहास, पुराण, जीवनी आदि कहीं से उद्धत किया जा सकता है, किंतु इस समय जीवन में स्वाभाविकता होने से जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों को ही अधिक चुना जाता है। इसके साथ ही उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन भी होना चाहिए।

(2) **चरित्र-चित्रण या पात्र** - चरित्र-चित्रण पात्रों के क्रिया कलापों से संबंध रखता है और घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध संयोजन कथावस्तु का रूप ग्रहण करता है। चरित्र की दृष्टि से विद्वानों ने तीन प्रकार के चरित्र माने हैं - उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम पात्र आदर्श पात्र होते हैं। मध्यम पात्र वह होते हैं जो अच्छाई बुराई के बीच झकोले खाते हैं और अच्छाई बुराई से संघर्ष करते हुए अच्छाई की ओर बढ़ते हैं। अधम पात्र वह हैं जो निरंतर बुराई में ही डूबे रहते हैं। उत्तम पात्रों में अच्छाई का अंश अधिक और बुराई का अंश कम होता है।

उपन्यास के पात्र जीवन के विभिन्न वर्गों और स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपनी चारित्रिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

(3) **कथोपकथन** - कथोपकथन कथावस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्ण सहायक होता है। इससे कथावस्तु में नाटकीयता एवं संजीवता आ जाती है। प्रासंगिक घटनाएँ भी इसी के द्वारा प्रकाश में लाई जा सकती हैं। पात्रों की आंतरिक दशा का चित्रण भी इसी के द्वारा सम्भव है। कथोपकथन पात्रों के चरित्र, स्वभाव, देश, शिक्षा, स्थिति आदि के ही अनुकूल होने चाहिए। पात्रों की भाषा में कृत्रिमता का पूर्णतया बहिष्कार कर देना चाहिए अन्यथा कथोपकथन सफल नहीं कहे जा सकेंगे।

(4) **देशकाल** - पात्रों के चित्रण एवं घटनाओं के वर्णन में स्वाभाविकता एवं वास्तविकता बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि उपन्यास में देशकाल या वातावरण का पूर्ण ध्यान रहे। घटना का स्थान, समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान उपन्यासकार के लिए अनिवार्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो वह प्राण ही है। लेकिन देशकाल तथा वातावरण के वर्णन में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं कथा प्रवाह न रुक जाए।

(5) **भाषा-शैली** - भाषा शैली का उपन्यास के तत्वों में अपना प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान होता है। भाषा शैली ही उपन्यास को प्रारम्भ से अंत तक पढ़ जाने की उत्सुकता और उमंग पाठक में जगाती है।

भाषा और शैली यद्यपि अलग-अलग है किंतु भाषा शैली का अंग है और शैली भाषा का प्राण। भाषा कथा और उसके पात्रों को वाणी प्रदान करती है, शैली उस वाणी में अभिप्राय अर्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है। शैली कथा को कहने और प्रस्तुत करने तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और मनोभावों को चित्रित करने के ढंग से सम्बन्ध रखती है। शैली ही वास्तव में उपन्यास में मौलिकता के गुण का समावेश करती है।

भाषा सरल, संजीव, पात्रोनुकूल, रोचक, मर्मस्पर्शी, प्रभावपूर्ण और प्रवाहमयी होनी चाहिए।

शैली अनेक प्रकार की होती है जैसे वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पात्रात्मक शैली, डायरी शैली, जीवन शैली और मिश्रित शैली आदि। अधिकांश उपन्यास में एक साथ कई शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।

भाषा शैली का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने उपन्यास को प्रभावमय और मर्मस्पर्शी बनाता है और उसमें मौलिकता का समावेश करता है।

(6) **उद्देश्य** - उपन्यास का उद्देश्य निस्संदेह कथा के माध्यम से मनोरंजन जुटाना है परंतु गहराई से देखें तो यह मनोरंजन साधन है, साध्य नहीं। उपन्यास का साध्य है जीवन की व्याख्या। समस्त साहित्य का संबंध जीवन से है, जीवन की अभिव्यंजना ही उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। उपन्यासकार जीवन की व्याख्या इस प्रकार सुंदर शैली में करता है कि वह सहज ग्राह्य हो जाती है।

उपन्यास लिखना भी अपने आप में एक उद्देश्य है। कोई लेखक उपन्यास तभी लिखता है जब वह किसी कथा, किन्हीं पात्रों और उनके जीवन रहस्यों से, जिनका परिचय या तो उससे हुआ है, या जिनका उदय जीवन के अनुभवों के आधार पर उसकी कल्पना में हुआ है, परिचय वह अपने से अन्य सबसे कराना चाहता है। उपन्यास की कथा की कल्पना की अपनी भोगी हुई अनुभूतियों का जब वह अन्यों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहता है तो वह उपन्यास के रूप में उसे अभिव्यक्त कर सबके सहयोग योग्य बना देता है। अत: उद्देश्य उपन्यास का एक अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है।

हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास

गद्य की अनेक विधाओं की भाँति हिन्दी उपन्यास भी आधुनिक युग की देन है। कुछ आलोचक संस्कृत के "कादम्बरी" आदि कथा-ग्रंथों को भी उपन्यास कहते हैं और आधुनिक उपन्यासों की परम्परा भी वहीं से मानते हैं। संस्कृत के प्राचीनतम काव्य से लेकर आधुनिक काल तक की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आई है। संस्कृत की कथाओं में आधुनिक उपन्यास के कोई तत्व नहीं मिलते। बंगला के उपन्यासों से पर्याप्त प्रभावित होकर "भारतेन्दु युग" में सर्वप्रथम उपन्यास लिखे गये थे। हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के विकास को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं -

(1) **प्रथम युग** - प्रेमचंद से पूर्व का युग सन् 1870 से 1916 तक माना जाता है। इस युग में हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ बंगला और मराठी भाषा के उपन्यासों के अनुवाद से होता है। यद्यपि बंगला और मराठी भाषा का साहित्य भी हिन्दी साहित्य की ही भाँति आरम्भ में पद्यमय ही था, किंतु उन भाषाओं में हिंदी भाषा की अपेक्षा गद्य-साहित्य का आरम्भ अपेक्षाकृत पहले शुरू हुआ। यही कारण है कि बंगला और मराठी भाषा में उपन्यास पहले शुरू हुए। यद्यपि उन भाषाओं

में भी उपन्यास का आरम्भ पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से आरम्भ हुआ था और हिन्दी की अपेक्षा बंगला और मराठी भाषायें पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में पहले आई। अत: उनमें गद्य की विधाओं का सूत्रपात पहले हुआ। हिन्दी में वह प्रभाव अधिकांशत: बंगला और मराठी साहित्य के माध्यम से हुआ। हिन्दी उपन्यास साहित्य का आरम्भ बंगला और मराठी उपन्यासों के अनुवाद से होता है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने बंगला और मराठी भाषा से अनुवाद करने प्रारम्भ किये। भारतेन्दु एक जागरुक कलाकार थे। राष्ट्रीय जागरण में नाटकों की ही भाँति उपन्यासों की महत्ता को भी उन्होंने समझा था और उसके विकास की ओर भी उनका ध्यान गया था, किंतु साहित्य के अंग का समर्थन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। यद्यपि उन्होंने अनुवाद के अतिरिक्त एक मौलिक उपन्यास "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" भी लिखना प्रारम्भ किया था जो असमय में ही उनकी मृत्यु हो जाने के कारण आरम्भ होकर ही रह गया।

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार होने का श्रेय श्री श्रीनिवासदास को प्राप्त होता है। आपका पहला मौलिक उपन्यास "परीक्षागुरु" सन् 1831 में प्रकाशित हुआ था। श्रीनिवासदास के बाद हिन्दी के अनेक लेखकों ने उपन्यास लिखने आरम्भ किये। बालकृष्ण भट्ट का "नूतन ब्रह्मचारी", किशोरीलाल गोस्वामी का "हृदय हारिणी" लज्जाराम मेहता का "परतंत्र लक्ष्मी", कार्तिकप्रसाद का "दिनानाथ", हनुमंतसिंह का "चंद्रकला", राधाकृष्णनदास का "नि:सहाय हिन्दू" अच्छे सामाजिक उपन्यासों में से थे। इन सभी उपन्यासों में समाज सुधार की भावना निहित है। विधवाओं की दयनीय दशा, सामाजिक कुरीतियों के परिणाम आदि इनके सामान्य विषय हैं। इस युग में ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर भी उपन्यास लिखे गये, जिनमें इतिहास के पृष्ठों से कथा ग्रहण कर लेखकों ने तत्कालीन जीवन पर सुधारवादी प्रभाव डालने के उद्देश्य से उनका सृजन किया है।

इस युग में लिखे गये उपन्यासों की एक दूसरी श्रेणी है - तिलिस्मी और अय्यारी के उपन्यासों की जो सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी का नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। सन् 1891 में देवकीनंदन खत्री ने "चद्रकांता" और "चंद्रकांता संतति" नाम के दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे।

(2) **द्वितीय चरण** - हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में द्वितीय चरण का आरम्भ उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन से माना जाता है। यद्यपि प्रेमचंद के पूर्व से ही हिन्दी उपन्यासों में कथा, गठन, शैली और उद्देश्य आदि की दृष्टि से अंतर आने लगा था, लेकिन वह अंतर इतना स्पष्ट नहीं हो पाता था कि स्पष्ट रूप से उसे विकास के दूसरे चरण का द्योतक मान लिया जाये। उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन से यह अंतर बिल्कुल स्पष्ट हो गया। यही कारण है कि प्रेमचंद से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का दूसरा चरण माना जाता है और विकास के द्वितीय चरण को प्रस्तुत करने का श्रेय प्राप्त है, प्रेमचंद के उपन्यास "सेवासदन" को। यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें सामाजिक संघर्ष को अपने यथार्थ रूप में कथावस्तु का आधार बनाया गया है। इसे हम हिन्दी उपन्यास-साहित्य के विकास का मूल स्तम्भ कह सकते हैं।

प्रेमचंद ने एक नवीन राष्ट्रीय चेतना को लेकर उपन्यास लिखने आरम्भ किये थे। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित शक्ति का रूप ग्रहण कर लिया था। भारतेन्दु काल में जो राष्ट्रीय जागरण केवल सांस्कृतिक सुधार तथा भारतीय गौरव के पुनरुत्थान के रूप में आरम्भ हुआ था, वह स्वराज्य स्थापना का रूप ग्रहण कर चला था। परिणामत: साहित्य में भी हमें वही परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रेचमंद ने अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, विकास वर्ग और मजदूर वर्ग के जीवन की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ उनके संबंधों से उत्पन्न पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन का चित्रण किया है। हमारे समाज का पूरा जीवन उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। उन्होंने हमारी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं

के अतिरिक्त नैतिक, सांस्कृतिक तथा अन्य अनेक व्यक्तिगत जीवन से संबंध रखने वाली समस्याओं का सफल समाधान अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके आरम्भिक उपन्यासों में आदर्श की स्थापना का आग्रह है, ऐसा आदर्श जिसे वह पहले सोचकर और उसे अपनी कथा के विकास के द्वारा स्थापित करने का निश्चय करके चले। लेकिन "प्रेमा" से लेकर "गोदान" तक वह क्रमशः आदर्श से यथार्थवाद की ओर अग्रसर होते हुए जान पड़ते हैं।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के द्वारा उपन्यास साहित्य के विकास का जो दूसरा चरण प्रस्तुत किया है, उसके प्रभाव को लेकर अनेक नये उपन्यासकार उपन्यास के क्षेत्र में आगे आये।

इस युग के उपन्यासकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -

बृजनंदन सहाय (सौंदर्योपासक 1919), जयशंकर प्रसाद (कंकाल, तितली, इरावरी अपूर्ण), अवधनारायण (विमाता 1923), शिव पूजन सहाय (देहाती दुनियाँ 1925), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (हृदय की परख, व्याभिचार, अमर अभिलाषा, आत्मदाह, नीलमती, वैशाली की नगर वधू आदि), विशम्भरनाथ शर्मा "कोशिक" (माँ, भिखारिणी आदि), पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" (दिल्ली का दलाल, चंद हसीनों के खतूत, बुधआ बेटी, शराबी, घटा, सरकार, तुम्हारी आँखों में आदि), चण्डी प्रसाद हृदयेश (मिनोरमा, मंगल प्रभात आदि), प्रतापनारायण श्रीवास्तव (विदा), राधिकारमण प्रसाद सिंह (तरंग, राम रहीम, पुरुष और नारी आदि) , जी. पी. श्रीवास्तव (गंगा जमुना, दिलजले की आह), वृन्दावनलाल वर्मा (गढ़ कुंडार, विराटा की पदमिनी, कुण्डली चक्र, महारानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, माधवजी सिंधिया आदि) भगवती प्रसाद वाजपेयी (मीठी चुटकी, अनाथ पत्नी, त्यागमयी, प्रेम विवाह, पतिता की साधना, दो बहनें, नियंत्रण, चलते-चलते, भूदान, अधिकार का प्रश्न आदि), कृपानाथ मिश्र (प्यास), जैनेन्द्र कुमार (परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा विवर्त, व्यतीत), आदि।

(3) **तृतीय चरण** - प्रेमचंद की सजग, सामाजिक जीवन के चित्रण की परम्परा को अधिक यथार्थ रूप में लेकर लिखे जाने वाले प्रगतिवादी उपन्यासों से हिन्दी उपन्यासों के विकास के तीसरे चरण का आरम्भ माना जाता है। प्रगतिवादी उपन्यासों में मजदूर, किसान और मध्यम वर्ग के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संघर्षों का चित्रण है। इनमें निम्न वर्ग में उभरती शक्ति और चेतना को मुखरित किया गया है। इसी नयी प्रगतिवादी चेतना को लेकर उपन्यास लिखने वालों में प्रमुख हैं - यशपाल, कृष्णचंद्र, उपेन्द्रनाथ "अश्क", नागार्जुन, राँगेयराघव, श्रीकृष्णदास, अमृतराय आदि।

(4) **उपन्यास शैली में नवीन प्रयोग** - इधर उपन्यासों की टेकनीक में भी कई नये प्रयोग सामने आये हैं जिनमें यह उल्लेखनीय हैं - राहुलजी का "सिंह सेनापति", हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास वाणभट्ट की आत्मकथा", शिवकुमार का बहती गंगा, धर्मवीर भारती का सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों का देवता, राजेन्द्र यादव का "प्रेत बोलते हैं।" आदि।

पिछले दशक में हिन्दी उपन्यास ने अभूतपूर्व उन्नति की है। शिल्प तथा चेतना दोनों ही दृष्टियों से अनेक नये उपन्यासकार पिछले दशक में जन्म लेकर ख्याति प्राप्त हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक होने का गौरव प्राप्त कर गये हैं। जैसे-राजेन्द्र यादव, चंद्रमकमल जोशी, यादवेन्द्र शर्मा, गुरुदत्त, फणीश्वरनाथ रेणु आदि। इस युग के प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास हैं - उदयशंकर भट्ट का उपन्यास "सागर लहरे और मनुष्य", इलाचंद्र जोशी का उपन्यास 'जहाज का पंछी', रांघेय राघव का 'काका', राजेन्द्र यादव का उपन्यास "उखड़े हुये लोग" आदि।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अनेक प्रतिभा सम्पन्न नये लेखक भी पदार्पण कर रहे हैं। इन्होंने उसके विविध पक्षों को नये आयाम देने का प्रयत्न किया है। इनमें अधिक उल्लेखनीय हैं - रमेश बक्षी, नरेन्द्र कोहली, निर्मल वर्मा, रामशरद मिश्र, राही मासूम रजा, श्यामसुंदर व्यास, मालती जोशी

आदि। इनके द्वारा समसामयिक शहरी तथा ग्राम्य जीवन का बड़ा सहज और यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी का उपन्यास साहित्य बहुत तेजी से विकास कर रहा है। वास्तव में हिन्दी के उपन्यास के विकास का इतिहास सम्पूर्ण साहित्य के विकास का इतिहास है।

'उपन्यास' शब्द 'उप' तथा 'न्यास' के जुड़ने से बना है। उप का अर्थ है-समीप और न्यास का अर्थ है-थाती या धरोहर। अत: उपन्यास शब्द का मूल अर्थ हुआ-समीप रखी हुई वस्तु। यह एक ऐसी समीप रखी हुई वस्तु है, जिसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। आज, एक विशेष साहित्य-विधा के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग होता है। उपन्यास शब्द अंग्रेजी भाषा के 'नॉवेल' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। गुजराती में उपन्यास के लिए 'नवल कथा' तथा मराठी में 'कादम्बरी' का प्रयोग किया जाता है, लेकिन हिन्दी और बंगला में उसे 'उपन्यास' ही कहते हैं। उपन्यास के बारे में असंख्य परिभाषाएं दी गई हैं, जो इस बात पर बल देती हैं कि इसमें मानव-जीवन का प्रतिनिधित्व होता है, घटनाएं क्रमबद्ध होती हैं और कल्पनाएं भी वास्तविकता का परिचय देती हैं। अन्य शब्दों में, उपन्यास वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कही जा सकती है। 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' में उपन्यास की इस प्रकार की परिभाषा दी गई है, "वृहत् आकार गद्य-आख्यान या वृत्तान्त, जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।" मुन्शी प्रेमचन्द ने उपन्यास के बारे में लिखा है, "मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" फिर भी, उपन्यास के सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं दी जा सकती।

एक अन्य विचार के अनुसार हिन्दी में कथा लिखने की प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य से आई है। हो सकता है कि अंग्रेजी कथा का भी इस पर प्रभाव पड़ा हो। 'ऋग्वेद', ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में कथा का आरम्भिक रूप देखा जा सकता है। आगे चलकर बौद्ध जातक कथाओं और जैन धर्म सम्बन्धी कथाओं में भी इसका समुचित विकास हुआ। कथा की यह प्रवृत्ति 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश', 'सरितसागर', 'वृहत् कथा', 'बैताल पंचविंशति', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि में भी देखी जा सकती है, लेकिन इन कथाओं में उपन्यास के तत्त्व नहीं हैं। फिर भी, बाणभट्ट की 'कादम्बरी' तथा दण्डी की 'दशकुमारचरित' संस्कृत की दो ऐसी गद्य-रचनाएं हैं, जो उपन्यास विधा से मिलती-जुलती हैं। फिर भी, यह कहना उचित नहीं होगा कि हिन्दी की उपन्यास विधा 'कादम्बरी' तथा 'दशकुमारचरित' से विकसित हुई है। वैसे तो इंग्लैण्ड में 17वीं-18वीं शताब्दी में उपन्यासों की रचना होने लग गई थी। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी तथा रूस में असंख्य उपन्यासकार हुए, जिन्होंने उच्चकोटि के उपन्यास लिखे। हिन्दी में उपन्यास का लेखन 19वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। अंग्रेजी के उपन्यासों ने पहले बंगला-साहित्य को प्रभावित किया और फिर हिन्दी को। यों तो हिन्दी में इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल की 'सिंहासन बत्तीसी', 'प्रेम सागर', जटमल की 'गोरा-बादल की कथा' तथा राजा शिवप्रसाद की 'राजा भोज का सपना' 19वीं शताब्दी में रची गई थी, लेकिन इन्हें हम उपन्यास नहीं कह सकते। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मराठी से अनूदित और 'चन्द्रप्रभा' नामक सामाजिक उपन्यास लिखे। हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' है, जिसके लेखक श्रीनिवासदास हैं। यह उपन्यास सन् 1882 में लिखा गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'परीक्षा गुरु' को ही प्रथम उपन्यास माना है। भारतेन्दु युग में कई उपन्यास लिखे गये, जिनमें 'भाग्यवती' (श्रद्धाराम फिल्लौरी), 'नूतन चरित' (रत्नचन्द प्लीडर), 'नूतन ब्रह्मचारी' (बालकृष्ण भट्ट) 'निःसहाय हिन्दू' (राधा कृष्णदास), 'विधवा विपत्ति' (राधाचरण गोस्वामी), 'जया' (कार्तिकप्रसाद खत्री),

'कामिनी' (मुकुन्दलाल गुप्त), 'पुष्पावती' (गोकुलनाथ शर्मा), 'त्रिवेणी' (कुसुम), 'लवंग लता' (किशोरीलाल गोस्वामी), 'नये बाबू' (गोपालराम गहमरी) आदि कुछ आरम्भिक उपन्यास हैं। हिन्दी उपन्यास-साहित्य को विभिन्न उत्थानों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य,

(2) प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास-साहित्य,

(3) प्रेमचन्दोत्तरयुगीन उपन्यास-साहित्य,

(4) आधुनिक उपन्यास-साहित्य,

(1) **प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य-** इस युग का आरम्भ सन् 1877 से सन् 1918 तक माना जाता है। 'भाग्यवती' इस युग का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है। इस युग में सामाजिक, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना हुई। 'भाग्यवती' में जहाँ नारी-जीवन की समस्या को लिया गया है, वहीं 'परीक्षा गुरु' में कुसंगति के दुष्परिणामों पर प्रभाव डाला गया है। इस युग के अन्य उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ आजाद और एक सुजान' नामक दो उपन्यासों की रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी ने भी अनेक सामाजिक उपन्यासों जैसे 'त्रिवेणी', 'आदर्श सती', 'राजकुमारी', 'पुनर्जन्म' आदि अनेक उपन्यासों की रचना की। राधाचरण गोस्वामी ने भी दो उपन्यास लिखे-'विधवा विपत्ति' तथा 'कल्पलता'। 'दीनानाथ' कार्तिकप्रसाद खत्री का प्रसिद्ध उपन्यास है। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी सामाजिक उपन्यास लिखे। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' इनके प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास हैं। सामाजिक उपन्यासों के अतिरिक्त इस युग में जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों की भी रचना हुई। जासूसी उपन्यासकारों में देवकीनन्दन खत्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय था। उनके सुप्रसिद्ध जासूसी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ' आदि उस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय जासूसी उपन्यास थे। इन उपन्यासों को पढ़ते-पढ़ते पाठक में विशेष जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती थी कि आगे क्या होगा? गोपालराम गहमरी भी इसी वर्ग के उपन्यासकार हैं। उपन्यासों के विकास में भी भले ही, इन उपन्यासों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हो, परन्तु उपन्यास-कला की दृष्टि से ये उपन्यास इस युग में महत्त्व नहीं रखते। इस युग में सामाजिक, जासूसी उपन्यासों के अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये। किशोरीलाल गोस्वामी जी ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत समन्वय करके अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं-'हृदयहारिणी', 'लवंगलता', 'ताराबाई', 'कनक कुसुम' आदि। इस युग के अन्य उपन्यास 'गुलबहार', 'रजिया बेगम' आदि मुस्लिम शासन से सम्बन्धित उपन्यास हैं। इस युग के अनेक उपन्यासकारों ने अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि अनेक भाषाओं के उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद भी प्रस्तुत किया। इस युग में अधिकांशत: उपदेशात्मक, आदर्शात्मक और मनोरंजनात्मक उपन्यासों की ही रचना हुई।

2. **प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास-साहित्य-** प्रेमचन्द युग को ही उपन्यासों के विकास का द्वितीय युग माना जाता है। प्रेमचन्द ही प्रथम मौलिक उपन्यासकार और युग प्रवर्त्तक कहलाने के पूर्ण अधिकारी हैं, क्योंकि इन्होंने ही सर्वप्रथम उपन्यास साहित्य-कला की रिक्तता को पूर्ण पूर्ति प्रदान की। प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासकार केवल कथावस्तु को ही उपन्यास में महत्ता प्रदान करते थे। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रथम बार जनसाधारण को वाणी मिली और इस प्रकार उपन्यास-कला मनोरंजन का साधन-मात्र न रहकर जीवन के मर्मस्पर्शी विषयों को उद्‌घाटित करने का साधन बन गई। प्रेमचन्द युग में कथावस्तु के साथ-साथ पात्रों और चरित्र-चित्रण को भी विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। प्रेमचन्द ने ही पहली बार साधारण जनता, विशेषकर, भारतीय किसान के जीवन की समस्याओं को अपने काव्य में इतनी कलात्मकता और व्यापकता के साथ चित्रित किया। उनका यह कार्य हिन्दी

उपन्यास-साहित्य में सदा सराहनीय रहेगा, क्योंकि उनके उपन्यासों जैसी व्यापकता हमें हिन्दी में तो क्या, किसी भी अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यासों में देखने को नहीं मिलती। अपने इसी व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही प्रेमचन्द जी ने साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझा। उन्होंने अपने एक भाषण में स्पष्ट व्यक्त भी किया है, "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" प्रेमचन्द द्वारा लिखित उपन्यास इतने उच्चकोटि के हैं कि मानव-जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक रहस्य बड़ी सहजता के साथ ही, उद्घाटित हो जाता है। उनके उपन्यासों को पढ़ने से हमें प्रतीत होता है कि मानो हम उनके औपन्यासिक जगत में ही विचरण कर रहे हों। प्रेमचन्द जैसे महान उपन्यासकार के बारे में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है, "प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे। परदे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी-जाति की महिमा के ज़बरदस्त वकील थे, गरीबों और बेबसों के महत्त्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोंपड़ियों से लेकर महलों, खोमचे वाले से लेकर बैंकों तथा गाँव से लेकर धारासभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।" इस प्रकार से इस महान् उपन्यासकार ने अनेक उपन्यासों की रचना की। इन्होंने 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) आदि अनेक उपन्यासों की रचना की। प्रेमचन्द जी ने राजनीतिक और सामाजिक, दो प्रकार के उपन्यास लिखे। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समसामयिक समाज की समस्याओं का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया। अपने उपन्यास 'सेवा सदन' में उन्होंने वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास के कथानक में उन्होंने बताया है कि किस प्रकार एक नारी को परिस्थितिवश वैश्या बनने पर विवश होना पड़ता है। इसी प्रकार उन्होंने अपने एक अन्य उपन्यास 'निर्मला' में भी नारी की समस्याओं को चित्रित किया है। अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने भारतीय ग्रामीण किसान के यथार्थ जीवन का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। 'रंगभूमि' इनका सबसे बड़ा उपन्यास है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने शोषकों की अन्याय और अत्याचार-वृत्ति पर प्रकाश डाला है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में उन्होंने विधवा-विवाह की समस्या को उठाया है। 'कर्मभूमि' इनका राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें प्रेमचन्द जी ने शोषकों के प्रति शोषितों की विरोधी भावना को उजागर किया है। 'गबन' में इन्होंने नारी जीवन की आभूषणप्रियता का चित्रण किया है, जो कि उसके परिवार के लिए विपत्तियों कष्टों का कारण बनती है। 'गोदान' इनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस उपन्यास में भारतीय किसान और मजदूर वर्ग के शोषण की कारुणिक कथा वर्णित है। 'गोदान' को केवल मुंशी प्रेमचन्द की ही नहीं, बल्कि हिन्दी उपन्यास-साहित्य की भी सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। 'गोदान' में किसान शोषण के कारण मजदूर बनने को विवश हो जाता है। इससे गाँव के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है, यद्यपि कुछ विद्वानों ने 'गोदान' में कथावस्तु की असम्बद्धता का आरोप लगाया है, लेकिन कुछ अन्य उपन्यासकार इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा भी प्रदान करते हैं। सत्य तो यह है कि 'गोदान' ग्रामीण जीवन और कृषि-संस्कृति का महाकाव्य है। ग्रामीण जीवन का इतना व्यापक एवं प्रभावशाली चित्रण हिन्दी के अन्य किसी उपन्यास में नहीं हुआ।

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद ('कंकाल', 'तितली', 'इरावती'), शिवपूजन सहाय ('देहाती दुनिया'), आचार्य चतुरसेन शास्त्री ('परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा', 'आत्मदाह'), विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ('माँ', 'भिखारिणी', 'संघर्ष'), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ('दिल्ली का दलाल', 'हसीनों के खतूत', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी') आदि के नाम गिनवाए

जा सकते हैं। इनमें कौशिक जी ने लगभग प्रेमचन्द की ही उपन्यास-कला का अनुसरण किया है। रचना-शैली की दृष्टि से प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'निन्दा विजय' उपन्यास भले ही, आदर्शवादी उपन्यास है, लेकिन यह प्रेमचन्द शैली के अधिक निकट है। देवनारायण द्विवेदी ('पश्चात्ताप', 'कर्त्तव्य', 'दहेज') तथा अनूपलाल मण्डल का 'निर्वासिता' उपन्यास भी इसी युग का है। उग्र जी के उपन्यासों में समाज की बुराइयों का यथार्थ देखा जा सकता है। इन्होंने बिना लाग-लपेट के सामाजिक यथार्थ का वर्णन किया है।

जैनेन्द्र कुमार ने इस युग में उपन्यास को सर्वथा नवीन दिशा प्रदान की। 'परख', 'सुनीता' तथा 'त्यागपत्र' इनके सुप्रसिद्ध उपन्यास हैं। जैनेन्द्र ने व्यक्ति-पात्र की मानस-गहराइयों में प्रवेश करने का अधिक प्रयास किया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का श्रीगणेश करने का श्रेय जैनेन्द्र को ही जाता है। प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा, राधिकारमण प्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों ने उपन्यास-साहित्य को जनजीवन से जोड़ने का प्रयास किया। इस काल के उपन्यासों में प्राय: सामाजिक विषयों और समस्याओं को आधार बनाया गया है, लेकिन आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक समस्याएं भी यत्र-तत्र उठाई गई हैं। किसान और मजदूर को विशेष रूप से महत्त्व दिया गया। साथ ही, मध्य वर्ग से जुड़े हुए लोगों का भी यथार्थ वणन किया गया। इस सन्दर्भ में डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने उचित ही लिखा है, "अत: यह मानना सर्वथा उचित है कि इस युग में उपन्यास के मौलिक क्षेत्र स्वरूप और उद्देश्य को न केवल पहचाना गया है, बल्कि उसे समृद्ध भी किया गया है। वास्तव में प्रेमचन्द युग से ही उपन्यास युग आरम्भ हुआ है। कुछ विद्वानों ने इसे उपन्यास का रचनाकाल भी कहा है।"

3. **प्रेमचन्दोत्तरयुगीन उपन्यास-साहित्य-** सन् 1936 में मुंशी प्रेमचन्द जी का निधन हो गया। इसके साथ-साथ हिन्दी उपन्यास-साहित्य के स्थापना-काल का भी अन्त हो गया। प्रेमचन्द के समय में ही मानव-चरित्र को आधार बनाकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाने लगे थे। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया और कुछ सफल मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखे। प्रेमचन्द युग में ही सामाजिक उपन्यासों के दो वर्ग बन गए थे। प्रथम वर्ग में केवल सामाजिक जीवन का यथार्थ वर्णन देखने को मिलता है, लेकिन दूसरे वर्ग में वे उपन्यास आते हैं, जो मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करते हैं। ऐसे उपन्यासों को समाजवादी उपन्यास भी कहा जाता है। फलस्वरूप, प्रेमचन्द युग में उपन्यास-साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। यद्यपि काफी संख्या में सामाजिक उपन्यास लिखे गये, लेकिन ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि आंचलिक उपन्यासों की भी रचना हुई।

(i) **सामाजिक उपन्यास-** प्रेमचन्दोत्तर काल में मुख्य प्रवृत्ति तो सामाजिक उपन्यासों की ही रही। इन उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया, लेकिन भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि कुछ उपन्यासकारों ने प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का अनुसरण किया। भगवतीचरण वाजपेयी ('पतिता की साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें', 'त्यागमयी', नियंत्रण, 'चलते-चलते'), प्रतापनारायण श्रीवास्तव ('विदा', 'विजया', 'बयालीस', 'विसर्जन'), सियारामशरण गुप्त ('गोद', 'अन्तिम आकांक्षा') इसी प्रकार के उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में शिव और मंगल-तत्त्व की प्रधानता है। साथ ही, नवीनता और प्राचीनता का समन्वय भी देखा जा सकता है। इनके उपन्यासों पर गान्धीवादी विचारधारा का प्रभाव भी है। इसलिए इन उपन्यासों में घृणा, प्रतिहिंसा तथा विद्रोह का कोई स्थान नहीं है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासों में नैतिक समस्याओं तथा सामाजिक सीमाओं तथा शक्तियों को समाविष्ट किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में यथार्थ से सीधा और अनिवार्य सम्बन्ध जोड़ा गया है। युग की परिस्थितियों के प्रति उपन्यासकारों की गहरी और तीव्र प्रतिक्रिया देखी जा सकती है। इन सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक दायित्व का बोझ प्रखर बनकर उभरा है। इन्होंने सामाजिक समस्याओं के बारे में चिन्तन करते समय संकीर्ण मान्यताओं पर कटु प्रहार किए हैं। सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'चित्रलेखा', 'आखिरी दाव', 'भूले-बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं', 'रेखा' आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही कन्दील' आदि उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उल्लेखनीय उपन्यास हैं, जिनमें विभिन्न आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। सामाजिक उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर तथा श्रीलाल शुक्ल के नाम विशेष महत्त्व रखते हैं। 'बूँद और समुद्रा', 'अमृत और विष' और 'महाकाल' नागर जी के प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास हैं। उन्होंने प्राय: व्यक्ति और समाज में समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास किया है। 'रागदरबारी' श्रीलाल शुक्ल जी का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें स्वतन्त्र भारत की नवीन व्यवस्थाओं पर तीखा व्यंग्य किया गया है।

सामाजिक उपन्यासकारों की परम्परा में धर्मवीर भारती ('गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'), मोहन राकेश ('अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल', 'अन्तराल'), नरेश मेहता ('यह पथबन्धु था', 'डूबते मस्तूल'), राजेन्द्र यादव ('सारा आकाश', 'एक इंच मुसकान'), निर्मल वर्मा ('वे दिन', 'लाल दिन की छत'), गिरिराज किशोर ('जुगलबन्दी', 'यथा प्रस्तावित'), भीष्म साहनी ('तमस', 'बसन्ती'), जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ('मुर्दाघर', 'कहा हुआ आसमान'), महीप सिंह ('यह भी नहीं'), राही मासूम रजा ('आधा गाँव'), जगदीशचन्द्र वैद्य ('धरती धन न अपना', 'कभी न छोड़ें खेत', 'मुट्ठी भर कांकड़'), मनमोहन सहगल ('एक ओर रक्तबीज', 'नरभेद') आदि कुछ उल्लेखनीय नाम हैं।

सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक उपन्यासों को भी समाहित किया जा सकता है। यों तो सभी सामाजिक उपन्यासों में थोड़ी-बहुत राजनीतिक चेतना देखी जा सकती है, लेकिन कुछ ऐसे भी उपन्यास हैं, जिनमें समकालीन राजनीतिक विसंगतियों का उद्घाटन हुआ है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' (भगवतीचरण वर्मा), 'एक ओर मुख्यमन्त्री' (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र), 'हरा समन्दर गोपीचन्दर' (लक्ष्मीनारायण लाल), 'काली आंधी' (कमलेश्वर), 'हीरक जयन्ती' (नागार्जुन), 'समय साक्षी है' (हिमांशु जोशी) आदि, सभी राजनीतिक उपन्यास हैं।

(ii) **महिला लेखकों द्वारा उचित उपन्यास-** कुछ महिलाओं ने भी अपने उपन्यासों में सामाजिक स्थिति तथा उससे जुड़ी हुई समस्याओं का चित्रण किया है। इन लेखिकाओं में उषा प्रियम्वदा, मन्नू भण्डारी, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, निरुपमा सेवती, कुसुम अन्सल आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त, कृष्णा सोबती और ममता कालिया ने भी कुछ उपन्यास लिखे हैं, जिनमें नारी-जीवन की स्वच्छन्दता का उद्घाटन किया गया है। 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मरजानी', 'जिन्दगीनामा', 'यारों के यार', 'सूरजमुखी अन्धेरे के' आदि उपन्यास कृष्णा सोबती के प्रमुख उपन्यास हैं। इधर, उषा प्रियम्वदा और मन्नू भण्डारी ने नारी की विवशता और पीड़ा का संवेदनशील वर्णन किया है। इस सन्दर्भ में 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' तथा 'शेष यात्रा' कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। नारी लेखिकाओं द्वारा रचित उपन्यासों में 'आपका बण्टी' (मन्नू भण्डारी), 'सूरजमुखी अन्धेरे के' तथा 'जिन्दगीनामा' (कृष्णा सोबती), 'अमलतास के बाद सीढ़ियाँ' (शशिप्रभा शास्त्री), 'अनारो' (मंजुल भगत), 'मेरा नरक अपना है' (निरुपमा सेवती), 'मेरे सन्धि पत्र' (सूर्यबाला), 'बेघर' (ममता कालिया) आदि कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इन सभी लेखिकाओं ने निजी अनुभवों के आधार पर आधुनिक युग की नारी तथा उसकी सामाजिक स्थिति और मानसिकता का सजीव वर्णन किया है।

(iii) **समाजवादी उपन्यास-** प्रेमचन्द और उसके परवर्ती उपन्यासकार मार्क्सवादी दृष्टिकोण से बहुत कम प्रभावित हुए हैं। अधिकांश उपन्यासकार तो गाँधीवादी चेतना को लेकर उपन्यास लिखते रहे, लेकिन प्रेमचन्दोत्तर युग में कुछ उपन्यासकारों को मार्क्सवाद ने अत्यधिक प्रभावित किया। समाजवादी उपन्यासकार कार्ल मार्क्स से प्रभावित होने के कारण पूँजीपतियों और सामंतवादी शक्तियों का विरोध करता है और शोषितों तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करता है। समाजवादी उपन्यासकार समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए साहित्य को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहता है। इन उपन्यासकारों में यशपाल का नाम सर्वाधिक प्रमुख है। 'मनुष्य के रूप', 'झूठा सच', 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'तेरी मेरी उसकी बात' आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं। इन्होंने अपने अधिकांश उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष की चेतना को मुखरित करने का प्रयास किया है। अपने उपन्यासों में इन्होंने वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देने वाले द्वैत और वैषम्यों के प्रति विद्रोह की आवाज उठाई है। अपनी रचनाओं में इन्होंने समाज के खोखलेपन को उघाड़कर उसके यथार्थ स्वरूप से अवगत कराने का सराहनीय कार्य किया है। यशपाल जी के उपन्यास 'झूठा सच' के बारे में डॉ. ओमप्रकाश सिंहल लिखते हैं कि यशपाल जी जीवन के विविध रूपों, आयामों, समस्याओं, जटिलताओं को बहुत ही व्यापक स्तर पर अपने अनुसार निराले ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसी कारण उनके इस उपन्यास को औपन्यासिक महाकाव्य की संज्ञा भी दी गई है।

यशपाल की परम्परा का अनुसरण करने वाले लेखकों में अंचल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं-'चढ़ती धूप नयी इमारत', 'उल्का' और 'मरुप्रदीप' आदि हैं। इन्होंने अपने उपन्यासकारों में समकालीन समाज, संस्कृति, राजनीति आदि के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है।

मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने वाले लेखकों में रांगेय राघव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं-'घरौंदा', 'हुजूर', 'कब तक पुकारूँ' आदि हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में मार्क्सवाद के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक, दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला है। इन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, अमृतराय जी के उपन्यासों में साम्यवादी सिद्धान्तों का खुला व्याख्यान हुआ है। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'बीज', 'हाथी के दाँत', 'नागफनी का देश' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यास अधिक संवेदनशील इसलिए नहीं बन पाए, क्योंकि उनमें सिद्धान्तों की अत्यधिक प्रधानता थी। नागार्जुन ने ही सर्वप्रथम उपन्यासों को सैद्धान्तिक और बौद्धिक मीनार से उतारकर जनता के बीच लाने का प्रयास किया। इनके प्रमुख उपन्यासों में 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुःखमोचन', 'बेलचनामा', 'रतिनाथ की चाची' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ. सावित्री सिन्हा के शब्दों में, "अब तक साम्यवादी चेतना, साहित्य की बौद्धिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि ही बनाती रही है, मिथिला की समस्याओं और संघर्षों के चित्रण में नागार्जुन ने उन्हें जीवन का अंग बना दिया। उनके उपन्यास यद्यपि समाजवादी सिद्धान्तों से आच्छादित हैं, पर उनमें कोरी सैद्धान्तिकता नहीं, व्यावहारिकता भी है।"

(iv) **मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास-** जिस प्रकार कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर समाजवादी उपन्यासों की रचना हुई, उसी प्रकार से मनोविज्ञान से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास भी प्रचुर मात्रा में खोले गए। इन उपन्यासकारों ने मानव के अन्तर्मन की गइराइयों का विश्लेषण किया। फ्रायड, युंग और एडलर के सिद्धान्तों से ये उपन्यासकार अत्यधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। इन्होंने मानव-जीवन की विसंगतियों और समस्याओं के लिए बाह्य परिस्थितियों को दोषी न मानकर अन्तर्मन की प्रवृत्तियों को दोषी माना है।

जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. देवराज आदि, सभी उपन्यासकारों को मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में जैनेन्द्र का नाम तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखकर उसमें भाव-जगत् से सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया। उनके उपन्यासों में मुख्य रूप से अन्तर्द्वन्द्वों, अन्तःसंघर्षों और मानव-हृदय की वेदना और पीड़ा को मुखरित किया गया है। इन्होंने मानव-मन की गहराइयों तक पहुँचने के लिए तथा अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण करने के लिए स्वप्नों, प्रतीकों और प्रत्यक्षीकरणों का भी सहारा लिया है। इलाचन्द्र जोशी एक अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं, जिन पर फ्रायड और युंग का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। जोशी जी ने मानव के अन्तर्मन की वासनाओं और कुण्ठित प्रवृत्तियों को वाणी दी है। 'सन्यासी', 'प्रेत छाया', 'जिप्सी', 'परदे की रानी', 'जहाज का पंछी', 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। अज्ञये हिन्दी के प्रौढ़ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। 'शेखर: एक जीवनी' तथा 'नदी के द्वीप' उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। अज्ञेय के उपन्यासों के पात्र जीवन की अनुभूतियों से लिए गए हैं। 'अपने-अपने अजनबी' उनका महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

इसी परम्परा में डॉ. देवराज, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता, डॉ. रघुवंश, सर्वेश्वरदयाल, भारतभूषण अग्रवाल आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। 'पंथ की खोज', 'बाहर-भीतर' तथा 'अजय की डायरी' डॉ. देवराज के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास हैं। 'गुनाहों का देवता' तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'परन्तु' (प्रभाकर माचवे), 'डूबते मस्तूल' (नरेश मेहता), 'तन्तुजाल' (डॉ. रघुवंश), 'सोया हुआ जल' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), 'लौटती लहरों की बाँसुरी' (भारतभूषण अग्रवाल), 'वे दिन' (निर्मल वर्मा) कुछ अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

(v) **ऐतिहासिक उपन्यास-** यों तो ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा किशोरीलाल गोस्वामी जी से ही आरम्भ हो जाती है, परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा ही ऐतिहासिक उपन्यासों के सफल लेखक कहे जा सकते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में कुतूहल, उत्सुकता, साहसिकता, मनोरंजन और रोमांस आदि को प्रमुखता दी है। इनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का समन्वय दिखाई देता है। 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'लक्ष्मीबाई' तथा 'मृगनयनी' इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। प्रभाकर माचवे ने उनके बारे में लिखा भी है, "उनकी रचनाओं में हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसा वाग्वैदग्ध्य या यशपाल और राहुल का सोद्देश्य मत-प्रचार नहीं मिलता तो भी उनकी सबसे अच्छी विशेषता यह है कि वे अपनी भूमि से निकट का विषय चुनते हैं, उससे बाहर नहीं जाते।" आचार्य चतुरसेन का नाम भी ऐतिहासिक उपन्यासकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा रचित प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं-'रक्त की प्यास', 'मन्दिर की नर्तकी', 'सोमनाथ', 'अमरसिंह', 'आलमगीर', 'वयं रक्षामः', 'सोना और खून' तथा 'सह्याद्रि की चट्टानें' आदि। चतुरसेन जी अपने प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास को 'इतिहास' रस से ओत-प्रोत करने के पक्ष में थे, इन्हें भारतीय संस्कृति और पुरातन इतिहास के प्रति अगाध निष्ठा थी। हमें इनके उपन्यासों में पुरातन युग की सभ्यता और संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार आदि सभी का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। अपने उपन्यास 'सोमनाथ' में चतुरसेन शास्त्री जी ने सोमनाथ मन्दिर पर महमूद गजनवी द्वारा किए गए आक्रमण का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। 'वैशाली की नगरवधू' में इन्होंने आम्रपाली (नगरवधू) का यथातथ्य निरूपण किया है। इसी प्रकार ('वयं रक्षामः') में प्राग्वैदिक नर, नाग, दैत्य तथा दानव आदि का जीवन-चित्रांकन करने के साथ-साथ उस समय की सांस्कृतिक झाँकियों के सजीव चित्र भी अंकित किए हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर काल और आधुनिक काल में ऐतिहासिक उपन्यास-परम्परा का बहुमुखी विकास हुआ। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने भी अपनी ऐतिहासिक रचनाओं के द्वारा हिन्दी उपन्यास-साहित्य को समृद्ध किया। इनके उपन्यासों में इतिहास, कल्पना, धर्म, दर्शन, संस्कृति,

मिथक, प्रतीक, बिम्ब एवं काल्पनिक कथाओं का अनूठा सम्मिश्रण देखने को मिलता है। इन्होंने पुरातन जीवन-सन्दर्भों को वर्तमान जीवन-सन्दर्भों के साथ बड़े ही कलात्मक ढंग से जोड़ने का कार्य किया। इनके इस कार्य में हमें इनके व्यक्तित्व और कृतित्व की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। इस प्रकार अनेक उपन्यासकारों ने विशेष पात्र-जीवन के द्वारा उस समय की संस्कृति-सभ्यता को उजागर करने का कार्य किया है। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये उपन्यास ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करने के साथ-साथ उसे सजीव भी बनाए रखते हैं। हिन्दी उपन्यास-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त मार्क्स के दर्शन पर आधारित प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसी तरह यशपाल जी का 'अमिता' उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिस पर मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला', 'अन्धेरे के जुगनू' आदि ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कुछ उपन्यासकारों ने कृष्ण, महात्मा बुद्ध और गोरखनाथ के जीवन पर आधारित जीवनीपरक उपन्यास भी लिखे हैं। शिवप्रसाद रुद्र का 'बहती गंगा' ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है, जिसमें काशी नगरी के पिछले 200 वर्षों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। वीरेन्द्र कुमार जैन का 'मुक्तिदूत' भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। 'मानस का देश', 'जोगी मत जा', 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'पवन पुत्र', 'पहला सूरज', 'परम पुरुष' आधुनिक युग के उल्लेखनीय उपन्यास है। संक्षेप में, ऐतिहासिक उपन्यासों में भी मानवतावाद, मार्क्सवाद, सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं।

(vi) **आंचलिक उपन्यास-** हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की भी खूब चर्चा होने लगी है। इस प्रकार के उपन्यासों में किसी विशेष प्रदेश की प्रकृति व संस्कृति को सजीव वातावरण में प्रस्तुत किया जाता है। सन् 1950 के बाद आंचलिक उपन्यासों की परम्परा चल निकली। लेकिन इसका श्रेय फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' और 'परती-परिकथा' उपन्यासों को दिया जाना चाहिए। इन दोनों उपन्यासों में बिहार प्रदेश की संस्कृति का आंचलिक भाषा में सजीव चित्रण हुआ है। उदयशंकर भट्ट का 'लोक परलोक', 'सागर और लहरें', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावली', 'नेपाल की बो बेटी', श्यामू संन्यासी का 'उत्थान', तरनतारनका 'हिमालय के अंचल', नागार्जुन के 'बेलचनामा' और 'वरुण के बेटे', रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' और 'काका', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए', रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानी का 'होल्दार', शिवप्रसाद रुद्र का 'बहती गंगा' आदि आंचलिक परम्परा के महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। उपन्यासों की इस परम्परा में 'सूरज किरणों की छाँह' तथा हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली' महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। राजेन्द्र अवस्था ('जल के फूल', 'जाने कितनी आंखें'), विवेकीराय ('बबूल'), उदयराज सिंह ('अन्धेरे के विरुद्ध'), सच्चिदानन्द धूमकेतु ('माटी की महक') ने भी ग्रामांचल को आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं। ग्रामीण अंचल के समान नगरीय अंचल को आधार बनाकर भी उपन्यास लिखने की परम्परा चल निकली है। इस प्रकार के उपन्यासों में स्थानीय रंग और संस्पर्श की प्रमुखता रहती है। आंचलिक उपन्यासों में प्राय: स्थानीय बोली का अधिक प्रयोग होता है। दूसरा, इसमें विघटनात्मक प्रवृत्तियों को भी बल दिया जाता है, विशेषकर, अपनी जाति, धर्म, संस्कृति और वर्ग के प्रति मोह के कारण अंचल-विशेष का ही अधिक वर्णन किया जाता है।

(vii) **प्रयोगशील उपन्यास-परम्परा-** प्रयोगवादी कविता के समान आज उपन्यास के क्षेत्र में भी नवीन प्रयोग होने लगे हैं। उदाहरण के रूप में, धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग कहानियों को जोड़ने का प्रयास किया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह आदि ने इस दिशा में कुछ अभिनव प्रयोग किए हैं। उदाहरण के रूप में, शिवप्रसाद रुद्र ने 'बहती गंगा' में सत्तर कहानियों को समन्वित करके काशी के प्राचीन इतिहास की झाँकी प्रस्तुत की है। इस सन्दर्भ में गिरिधर गोपाल का 'चाँदनी के

खण्डहर' तथा सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' अभिनव प्रयोग हैं। नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' भी एक प्रयोगशील उपन्यास है। यह प्रक्रिया अभी निरन्तर जारी है।

(vii) **आधुनिकता-बोध से सम्बन्धित उपन्यास-** आज विज्ञान का युग है। औद्योगीकरण, बौद्धिक-चिन्तन, यन्त्रीकरण तथा अस्तित्ववादी पाश्चात्य विचारधाराओं ने मानव-जीवन को अत्यधिक जटिल बना दिया है। अत: आधुनिकता-बोध का प्रतिनिधित्व उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' तथा 'आने वाला कल' आधुनिकता-बोध से जुड़े उपन्यास हैं। निर्मल वर्मा का 'वे दिन' आधुनिक संवेदना से जुड़ा हुआ उपन्यास है। इसी प्रकार राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' कथ्य और शैली की दृष्टि से अत्यधिक आधुनिक उपन्यास कहा जाएगा। श्रीकान्त वर्मा का 'दूसरी बार', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर का 'डाक बंगला' तथा 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' तथा गंगाप्रसाद विमल का 'अपने से अलग' उपन्यास भी आधुनिकता-बोध से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार से नरेश मेहता के 'यह पथबन्धु था' तथा 'नदी यशस्वी है', मन्नू भण्डारी का 'आपका बण्टी' भी आधुनिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (उषा प्रियम्वदा) उपन्यास में नौकरीपेशा तथा अविवाहिता नारी के जीवन-संघर्ष का वर्णन किया गया। आधुनिकता-बोध से जुड़े कई उपन्यासकारों-रजनी पनिक्कर, मीरा महादेवन और शशिप्रभा शास्त्री ने भी अपने उपन्यासों में नारी-जीवन की आधुनिक समस्याओं को उठाया है। उपर्युक्त श्रेणी के उपन्यासकारों में भीष्म-साहनी, रामकुमार 'भ्रमर', कृष्ण बलदेव वैद्य, कृष्णा सोबती, गिरिराज किशोर, शिवानी, मधुकर गंगाधर, उदयराज सिंह, आरिगपूडि तथा बालशौरि रेड्डी आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

4. **आधुनिक उपन्यास-साहित्य-** आधुनिक युग में उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के धरातल पर कुछ नवीन प्रयोग हो रहे हैं। मानव-जीवन की परिवर्तन मान्यताएं, पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव, सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था आदि उपन्यास-साहित्य का विषय बन रहे हैं। कहीं-कहीं उपन्यासकारों ने विभिन्न पात्रों के क्रियाकलापों का सतही तौर पर वर्णन किया है और कई मनोविश्लेषणवादों का आश्रय लेते हुए उनकी मन:स्थितियों, अन्तर्द्वन्द्वों और कुण्ठाओं का उद्‌घाटन किया है। आज समाज में दिन-प्रतिदिन सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। राजनीतिक मोहभंग की प्रक्रिया के कारण राजनीतिज्ञों का घिनौना चेहरा लोगों के समक्ष आ गया। उदाहरण के रूप में, भगवतीचरण वर्मा जैने उपन्यासकारों की युग-चेतना पूर्णतया स्पष्ट है। देश में फैले व्यापक भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता तथा अनगिनत विकृतियों को उपन्यासकार ने अपने-अपने उपन्यासों में उद्‌घाटित किया है। 'अमृतलाल नागर', 'अमृत और विष' तथा 'बिखरे तिनके' उपन्यासों में इस मोहभंग को रूपायित किया है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' तथा 'अंगद का पाँव', राजकमल का 'दारुल शफा', फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'जुलूस', कमलेश्वर का 'काली आंधी', गिरिधर गोपाल का 'कन्दील और कुहासे', मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' तथा मधुकर सिंह का 'सीताराम नमस्कार' कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें राजनीतिक मोहभंग तथा भ्रष्ट सामाजिक तथा राजनीतिक विसंगतियों का उद्‌घाटन किया गया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी देश में सामन्तवादी शक्तियाँ बल पकड़ती चली जा रही हैं। सामन्तवादी व्यवस्था नगर और गाँव, दोनों को प्रभावित कर रही है। जुगल किशोर ने 'जुगलबन्दी', गोविन्द मिश्र ने 'हजूर दरबार' तथा भगवतीचरण वर्मा ने 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में सामन्ती व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार से ग्रामीण क्षेत्रों में भी व्यापक सामन्तवाद को आधार बनाकर कुछ उपन्यास लिखे गये हैं। जगदीशचन्द्र का 'धरती धन न अपना' तथा 'कभी न छोड़ें खेत' इसी प्रकार के उपन्यास हैं। मणि मधुकर का 'सफेद मेमने' तथा रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' तथा 'जल टूटता हुआ' ग्रामीण शोषण से सम्बन्धित उपन्यास हैं। स्वतन्त्रता के बाद नगरों और महानगरों में रहने वाले लोगों के जीवन में भी अनेक विकार उत्पन्न हो गए हैं, विशेषकर, नयी पीढ़ी पुराने मूल्यों को अस्वीकार कर रही है तो मध्यम वर्ग अकेलेपन,

परायेपन और कुण्ठाओं से परेशान है। बढ़ती हुई जनसंख्या, आवास की समस्या, यातायात, गन्दगी, प्रदूषण आदि विभिन्न समस्याओं के कारण महानगरीय जीवन नरकतुल्य बन गया है। धर्मेन्द्र गुप्त का 'नगर पुत्र हँसता है' तथा जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें महानगरीय जीवन की समस्याओं को चित्रित किया गया है। इसी प्रकार से श्याम मनोहर जोशी का 'कुरु-कुरु स्वाहा', श्रीलाल शुक्ल का 'मकान' कृष्ण बलदेव वैद्य का 'उसका बचपन', राजेन्द्र यादव का 'सारा आकाश', शिवप्रसाद सिंह का 'गली आगे मुड़ती है' आदि, सभी उपन्यास महानगरीय जीवन की अभिव्यक्ति करने वाले उपन्यास हैं। विभूति नारायण के उपन्यास 'घर' के बारे में डॉ. यश गुलाटी ने उचित ही लिखा है, "एक ही छत के नीचे रहते हुए भी घर के सभी सदस्य एक-दूसरे से पूरी तरह कट गए थे। नदी के अलग-अलग द्वीपों की तरह पड़े हुए वे संवादहीनता की ऐसी अन्धी सुरंग में प्रवेश कर गए थे, जहाँ अपने सिवा परिवार के किसी भी सदस्य का न तो स्वर परिचित थे और न स्पर्श। एक सन्नाटा था, जो भयावह सघनता के साथ चारों प्राणियों के अस्तित्व को पकड़कर बैठ गया था।"

इसी प्रकार से मन्नू भंडारी का 'आपका बण्टी', मोहन राकेश का 'अन्धेरे बन्द कमरे', श्रीलाल शुक्ल का 'सीमाएं टूटती हैं' आदि उपन्यास सोबती का 'सूरजमुखी अन्धेरे का', उषा प्रियम्वदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' आदि उपन्यास आधुनिक नारी से सम्बद्ध उपन्यास हैं। इस सन्दर्भ में अमृतलाल नागर का 'अग्निगर्भ', मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा तथा अनित्य' तथा ममता कालिया का 'बेघर' नारी-समस्याओं पर आधारित है।

स्वतन्त्रता-प्राप्त के बाद हिन्दी में अनेक उपन्यासों की रचना हुई है। इनमें आधुनिक युगबोध को आधार बनाया गया है। रमेशचन्द्र शाह का 'गोबर गणेश', नरेन्द्र कोहली का 'चौखट', आशिष सिन्हा का 'समय बीतता हुआ', श्रवणकुमार का 'जंगल तन्त्रम्', यशपाल वैद्य का 'समय के सांथ-साथ', तीस जमाती का 'प्रतिबद्ध', डॉ. हेमराज निर्मम का 'बसन्त फिर आएगा', मनमोहन सहगल का 'मानव छला गया', सूर्यकान्त नागर का 'यह जारी रहे', दिनेश ठाकुर का 'प्रियशरणम्', शिवानी का 'काला जल', मार्कण्डेय का 'सेंमर का फूल', रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानवे', संजीव का 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' आदि कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं। वस्तुतः स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी भाषा में भारतीय समाज की बदलती हुई परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। यह विधा समाज और आधुनिकता से जुड़ी होने के कारण आज भी काफी लोकप्रिय बनी हुई है।

इकाई-चार

लघुउत्तरीय प्रश्न

भारतेंदु की भाषा संस्कृत, उर्दू एवं अवधी मिश्रित खड़ी बोली है। उनकी भाषा में खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप मिलता है। भाषा में दीआसलाई, कारासीस, लंकिलाट, झगरते हैं, बल रही है, नोन, अंगा आदि अमानक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उसमें एक तरफ उर्दू के निकम्मापन, अमीर, दलाली, मुसाहबी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं तो दूसरी ओर संस्कृत के आयुष्य, वीर्य, पुष्ट, भ्रष्टाचार, बालक, वृद्ध, व्यभिचार, आग्रह आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं भाषा में अवधी तथा भोजपुरी के शब्द भी मिलते हैं। भारतेंदु ने भाषा में सहजता तथा प्रवाह लाने तथा अपनी बात को चुटीली व प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा में

छाती ठंडी करना, आँख उठाकर देखना, कमर कसना, सुख का होम करना, अमीरों की मुसाहबी, कुल की लाजवंती बहू आदि मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं।

प्रश्न भारतेन्दु हरिशचन्द्र के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- भारतेन्दु के सभी लेखों, नाटकों तथा कविताओं में राष्ट्र भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी है। प्रस्तुत निबन्ध में भी लेखक ने राष्ट्र की उन्नति पर ही चर्चा की है। उन्होंने इस निबन्ध के अंत में यही उपदेश दिया है कि हमें विदेशी भाषा का मोह छोड़ देना चाहिए और आपसी भाई-चारे के साथ धार्मिक एकता को निभाते हुए परिश्रम और ईमानदारी से अपने देश के विकास में लगना चाहिए। लेखक ने देश की आर्थिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रगति के लिए कुछ ठोस उपाय भी बताने का प्रयत्न किया है।

प्रश्न भारतेन्दु हरिशचन्द्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- जीवन-परिचय- भारतेंदु का जन्म सन् 1907 में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीरचंद अग्रवाल के वंश में काशी में हुआ। इनके पिता बाबू गोपाल चंद (उपनाम गिरधर दास) हिन्दी के एक प्रौढ़ कवि एवं नाटककार थे। बचपन में ही माता-पिता के संरक्षण से वंचित हो जाने के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा विधिवत न हो सकी। घर पर ही इन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी की शिक्षा प्राप्त की। तेरह वर्ष की आयु में मन्नोदेवी के साथ विवाह हुआ। इसके बाद तो इनका संपूर्ण जीवन साहित्य सेवा में ही बीता। केवल 34 वर्ष की आयु में सन् 1941 में हिन्दी के इस युग-निर्माता का देहावसान हो गया।

रचनाएं- भारतेंदु जी ने सन् 1924 में हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका 'कवि वचन सुधा' प्रकाशित की और 1925 में 'विधा सुन्दर' नाटक की रचना की। इनके रचित और अनुदित नाटकों की संख्या 18 है।

भाषा शैली- भारतेन्दु जी ने हिन्दी के स्वरूप को निश्चित किया। उन्होंने राजा शिव प्रसाद एवं राजा लक्ष्मण सिंह की शैलियों के बीच का मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली और उर्दू में भी कुछ रचनाएं कीं। इन्होंने उर्दू के प्रचलित शब्दों के साथ संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्दों को भी अपनी भाषा में स्थान दिया। आगे चलकर यही शैली मान्य हुई।

साहित्य में स्थान- हिन्दी साहित्य के निर्माण और प्रचार में इन्होंने अपना तन-मन-धन अर्पण कर दिया था। इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दी के समाचार पत्रों ने इन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि दी थी। हिन्दी साहित्य में भारतेंदु जी का स्थान कवि, नाटककार एवं आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में सदैव बना रहेगा।

प्रश्न भारतेन्दु की कृतियों का परिचय दीजिए।

उत्तर- भारतेन्दु की साहित्य के सभी क्षेत्रों में पैठ थी। उसका कोई भी कोना उनसे अछूता नहीं था। उनकी रचनाएं इस तरह हैं-

(i) **नाटक-** भारतेन्दुजी ने निम्न अनुवादित, रूपांतरित तथा मौलिक नाटक लिखे हैं-

अनुवादित- रत्नावली नाटिका, पाखंड-विडम्बना, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस, दुर्लभ बंधु।

रूपांतरित- विद्या-सुंदर, सत्य हरिश्चंद्र।

मौलिक- (अ) **नाटक-** प्रेमजोगिनी, चंद्रावली, भारत-जननी, नील देवी, सती प्रताप।

(ब) **प्रहसन-** वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, अंधेर नगरी।

(ii) **काव्य-** भारतेन्दु प्राचीन तथा नवीन कड़ियों को जोड़ने वाली कड़ी थे। उनका काव्य दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है-1. परंपरागत तथा 2. नवीनोन्मुख।

भारतेन्दुजी की सभी रचनाएं काव्यात्मक हैं, लेकिन कुछ रचनाएं विशुद्ध काव्य के अंतर्गत हैं। भारतेन्दु का जीवन प्रेममय था। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम को प्रधानता दी। प्रेम फुलवारी, प्रेम योगिनी, प्रेम प्रलाप, प्रेम माधुरी, प्रेम वाटिका, प्रेम तरंग आदि पुस्तकें प्रेम पर ही आधारित हैं। होली, मधुमुकुल, वर्षा-विनोद आदि में भगवान की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन है।

(iii) **धर्म-ग्रंथ-** भारतेन्दुजी वैष्णव भक्त थे। आप प्रेम-लक्षणा-भक्ति में विश्वास करते थे। आपकी सभी रचनाओं में भक्ति का यह रूप मिलता है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने भक्त-सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, तदीय सर्वस्व, भक्ति-सूत्र वैजयंती, सर्वोत्तम स्रोत भाषा, उत्तरार्द्ध, भक्तमाल, उत्सवावली, वैशाख माहात्म्य तथा अष्टादश पुराणोपक्रमणिका की रचना की।

(iv) **राज-भक्ति संबंधी ग्रंथ-** भारतेन्दु ने राजभक्तिपूर्ण रचनाएं भी कीं। उनकी राजभक्ति अंध राजभक्ति न होकर स्वस्थ आधार पर थी। ब्रिटिश राज्य की भलाई और बुराई दोनों पर उनकी दृष्टि थी। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो उन्नति हुई, उसके वे प्रशंसक रहे, पर अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने सदैव क्षोभ ही व्यक्त किया। ड्यूक के सम्मान में समर्पित कृति सुमनांजलि राजभक्ति से पूर्ण है। इसके अलावा भारत वीरत्व, विजय-वल्लरी, रिपुनाष्टक, विजयति विजय वैजयंती आदि कृतियां भी इसी प्रकार की हैं।

(v) **इतिहास-** भारतेन्दुजी इतिहास के प्रेमी थे। उन्होंने सर्वप्रथम खोजपूर्ण इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। आपके इतिहास संबंधी कितने ही लेख एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुए। भारत के गौरव पूर्ण अतीत को चित्रित करने के साथ-साथ आपने मुहम्मद साहब तथा फ्रांस, जर्मनी आदि के ऐतिहासिक पुरुषों का भी वर्णन किया है। काश्मीर कुसुम, बूंदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, क्षत्रियों की उत्पत्ति तथा उदयपुरोदय आदि आपके खोजपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ हैं।

(vi) **कथा साहित्य-** रामलीला, हमीर हठ, राजसिंह, एक कहानी, कुछ आप-बीती, जगनी सुलोचन आदि।

(vii) **निबंध-** भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम निबंधकार कहे जा सकते हैं-उन्होंने धार्मिक साहित्यिक, राजनीतिक इत्यादि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाचार पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से देश सेवा की। उन्होंने कविवचन सुधा नामक मासिक पत्र निकाला। फिर हरिश्चंद्र मैगजीन या हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालवोधिरी का प्रकाशन किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुल 14 नाटक लिखे-5 अनूदित, 7 मौलिक तथा 2 अपूर्ण। अनूदित नाटकों में एक नाटक 'विद्या-सुन्दर' बंगला का अनुवाद है। चार संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं-'विडम्बन', 'धनंजय-विजय', 'कर्पूर-मंजरी' और 'मुद्राराक्षस'। इनमें सबसे अच्छा अनुवाद 'कर्पूर-मंजरी' का हुआ है। इनके अनन्तर 'मुद्राराक्षस' का स्थान है। 'विद्या-सुन्दर' नाटक का अनुवाद तब हुआ जब भारतेन्दुजी की अवस्था केवल 18 वर्ष थी।

मौलिक नाटक 7 हैं-(i) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, (ii) सत्य हरिश्चन्द्र, (iii) भारत-दुर्दशा, (iv) नीलदेवी, (v) चन्द्रावली (नाटिका), (vi) विषस्य विषमौषधम् तथा (vii) अंधेर नगरी।

अपूर्ण नाटक दो हैं-(i) प्रेमजोगिनी तथा (ii) सती प्रताप। भारतेन्दु का पहला मौलिक नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' है। यह नाटक सन् 1903 में लिखा गया, जब भारतेन्दु की अवस्था 23 वर्ष थी। यह एक प्रहसन है। इसमें माँस-मदिरा सेवन करने की पोल खोली गई है

और विधवा विवाह आदि के सम्बन्ध में व्यंग्य-शैली पर टीका टिप्पणी की गई है। इसमें उस समय के समाज-सुधारकों, धर्म-प्रचारकों, विधवा-विवाह के पक्षपातियों और पण्डितों की खिल्ली उड़ाई गई है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, पण्डित ईश्वरचन्द विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, राजा राजेन्द्रलाल मित्र आदि सब पर व्यंग्य किये गये हैं।

भारतेन्दु का सबसे प्रसिद्ध नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' है। कुछ लोगों का कहना है कि यह नाटक क्षेमेश्वर के नाटक 'चण्ड-कौशिक' का छायानुवाद है, किन्तु अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि 'चण्ड-कौशिक' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' में बहुत अन्तर है। फिर भी 'चण्ड-कौशिक' की कई बातों का प्रयोग सत्य हरिश्चन्द्र के निर्माण में किया गया है। इस नाटक का उद्देश्य राजा हरिश्चन्द्र की सत्य-प्रतिज्ञा की महिमा को रेखांकित करना है।

इस नाटक से विदित होता है कि इसके निर्माण में भारतेन्दु ने पूर्वी या पश्चिमी नाटकों की किसी शैली विशेष का अनुगमन नहीं किया। भारतीय और यूरोपीय नाट्यशास्त्रों में जो बात उन्हें सही एवं अच्छी लगी, उन्होंने ग्रहण की और अपने ढंग से उसका प्रयोग किया। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक बहुत-कुछ यूरोपीय ढंग के अनुसार है। भारतीय नाट्यशास्त्र में वर्णित अवस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों आदि का उसमें अभाव है।

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में भावों का संघर्ष यूनानी ट्रेजेडी के तत्त्वों के अनुकूल है। यह नाटक करुण रस-प्रधान है।

(1) **विषस्य विषमौधम्** - यह एक भाण (नाटक का ही एक प्रकार) है। इस नाटक में ब्रिटिश सरकार की अत्यंत प्रशंसा की गई है। यह नाटक भारतेन्दु के स्वभाव के प्रतिकूल है, क्योंकि भारतेन्दु तो ऐसे व्यक्ति थे, जिनके मस्तिष्क में देश-प्रेम हर घड़ी छाया रहता था। इसकी कथा-वस्तु के सम्बन्ध में बाबू शिवनन्दन सहाय ने लिखा है-"श्री महाराज मल्हारराव गायकवाड़, बड़ोदाधीश ने अपने किसी प्रसंगगत एवं कुत्सित व्यभिचार के उजागर हो जाने पर रुष्ट होकर रेजिडेंट के साथ अनुचित व्यवहार किया था। सरकार ने एक कमीशन द्वारा उसका अनुसंधान करके महाराज को राज्यच्युत होने की आज्ञा दी थी।" यही इस भाण में वर्णन किया गया है। यह भाण पढ़ने योग्य है। इसके सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दर दास का कथन है-"इस भाण से जो दो छंद उद्धृत किए गए हैं, उनकी श्लेषयुक्त भाषा में जो अश्लील भाव छिपे हैं, वे केवल निन्दनीय ही नहीं, प्रत्युत्त कवि के रुचि-विपर्यय के स्पष्ट प्रमाण भी हैं। भारतेन्दुजी इस रचना में अपने उच्च स्थान से बहुत नीचे गिर गये हैं।"

(2) **विद्यासुन्दर**- यह चौर कवि की 'चोर पंचाशिका' नाम की रचना के आधार पर लिखे हुए बंगला नाटक का छायानुवाद है। इसमे राजकुमारी विद्या और राजकुमार सुन्दर के प्रेम का वर्णन है।

(3) **रत्नावली**- यह अपूर्ण है। इसमें केवल प्रस्तावना और विषकम्भक है। यह अनूदित ग्रन्थ है।

(4) **पाखण्ड-विडम्बन**- यह 'प्रबोध चन्द्रोदय' के अंक का भाषान्तर है।

(5) **धनंजय-विजय**- यह कांचन कवि रचित 'व्यायोग' का भाषान्तर है। इसमें राजा विराट के यहाँ रहते हुए अर्जुन की कौरवों पर विजय और चुराई हुई गायों के वापस ले जाने का वर्णन है।

जीवन परिचय:- वर्मा जी का जन्म 15 नवम्बर सन् 1905 ई. को सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा सागर में हुई तत्पश्चात् इलाहाबाद, नागपुर आदि स्थानों में अध्ययन किया। उद्‌भट विद्वान होने के कारण राष्ट्रपति ने इन्हें "पदमभूषण" सम्मान से अलंकृत किया। उ.प्र. सरकार ने इन्हें भारत-भारती पुरस्कार से सम्मानित किया। 15 अक्टूबर 1990 को ये परलोक सिधारे।

रचनायें:- बादल की मृत्यु, पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा, रेशमी टाई, दीपदान आदि।

भाषा:- इनकी भाषा मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। कवि हृदय होने के कारण भाषा में सरसता है। ऐतिहासिक नाटकों में संस्कृतनिष्ठ भाषा है। तत्सम प्रधान भाषा में भी सहजता एवं सुबोधता पाई जाती है। हास्य तथा व्यंग्य का पुट भाषा को सजीवता प्रदान करता है। यथा स्थान मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रभावशाली हो गई है।

शैली:- वर्माजी की रचनात्मक प्रतिभा बहुमुखी हैं। अत: प्रसंग तथा भावों के अनुसार शैली का रूप परिवर्तित होता रहता है। गद्य शैली में नाटकीयता तथा सरसता है। कहीं-कहीं वर्णनात्मक एवं विचारात्मक शैली का प्रयोग भी हुआ है।

हिन्दी साहित्य में स्थान:- हिन्दी एकांकी और ध्वनि रूपक में लेखन में वर्मा जी का विशिष्ट स्थान है। नाटकीय शैली पर कवित्व की झलक उनकी विशिष्टता है। हिन्दी नाटककारों में उनका विशिष्ट स्थान है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी कला के लिए प्रसिद्ध एकांकीकारों में शीर्ष स्थान है। उन्होंने सामाजिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, पौराणिक, समस्या प्रधान, मौलिक तथा हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकी लिखी हैं। ऐतिहासिक विषयों में उनकी ख्याति अधिक है। उन्होंने चार मित्र, पृथ्वीराज की आंखें, तैमूर की हार, औरंगजेब की आखिरी रात, शिवाजी इत्यादि एकांकी लिखे हैं। उनके नाटकों का अभिनय अत्यंत सफलतापूर्वक हुआ है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म सन् 1905 में मध्यप्रदेश के सागर जिले में हुआ। इनके पिता लक्ष्मीप्रसाद डिप्टी कलेक्टर थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। वे कक्षा में सदा प्रथम आते थे। सन् 1932 ई. में दसवीं कक्षा में आए, तभी राष्ट्र सेवा करने लगे। प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम.ए. हिन्दी परीक्षा उत्तीर्ण की तथा नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दी साहित्यकार आलोचनात्मक इतिहास पर डाक्टरेट की उपाधि दी गई। उन्होंने विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। वे प्रसिद्ध आलोचक, कवि एवं एकांकीकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। आपको चित्र रेखा काव्य संग्रह पर देव पुरस्कार प्राप्त हुआ, इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन पुरस्कार तथा मध्यप्रदेश शासन द्वारा विजय पर्व नाटक पर पुरस्कृत हुए। रूसी सरकार के निमंत्रण पर मास्को विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य कर चुके हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने कुछ नाटक भी लिखे हैं, पर उनकी प्रसिद्धि एकांकी-लेखक के रूप में ही अधिक है। आपको एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रवक्ता थे और छायावादी कविताएं लिखते थे। सन् 1930 में आपका पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' प्रकाशित हुआ। डॉ. सत्येन्द्र ने इसे प्रसादजी के 'एक घूँघट' के बाद दूसरा

स्थान दिया है। यह एकांकी कला की दृष्टि से सफल एकांकी नहीं था, पर प्रयोग की दृष्टि से एकांकी के इतिहास में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'भगवान बुद्ध', 'अग्नि शिखा', 'वत्सराज उदयन' आदि पूर्ण नाटकों की रचना की है। ये सभी नाटक ऐतिहासिक परिवेश को लेकर लिखे गये हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक परिवेश में वर्तमान की समस्याएं एवं उनका समाधान प्रस्तुत किया है। आपने जीवन की तात्कालिक यथार्थता के नाम पर चिरन्तन सत्य का वर्णन किया है। आपका दृष्टिकोण आदर्शवादी है। इसी कारण आपकी रचनाओं में महत्त्वपूर्ण संदेश की अभिव्यक्ति हुई है।

जगदीशचंद्र माथुर के एकांकियों को दो वर्गों में रखा जाता है-1. व्यंग्यात्मक, 2. ऐतिहासिक। व्यंग्यात्मक नाटकों में इन्होंने आज के तथाकथित सभ्य समाज पर कई व्यंग्य किये हैं। इनके एकांकी अभिनय के योग्य हैं ध्वनि, संवाद, पात्र चरित्र चित्रण, दृश्य, प्रकाश इत्यादि की दृष्टि से वे रंगमंच के अनुकूल हैं। उन्होंने स्वयं रंग निर्देशन किया है। उन्होंने ग्रामीण जीवन एवं राजनीतिक दांव पेचों का वर्णन किया है। ग्रामीण तथा शहरी जीवन के वातावरण, क्रियाकलाप इत्यादि पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है। इनके संवाद चुटीले, वातावरण एवं पात्र के अनुकूल हैं। वे छोटे-छोटे तथा प्रभावशाली हैं। इनकी भाषा सपाट, चलती हुई व्यावहारिक खड़ी बोली या हिन्दी है। उसमें तत्सम, तद्भव, देशज शब्द तो है ही, अरबी, फारसी, अंग्रेजी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। ग्रामीण भाषा के शब्दों का भी समायोजन है।

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर, 1926 में प्रयाग में हुआ। उन्होंने साहित्य की सेवा काफी पहले से कर दी। उन्होंने धर्मयुग में संपादन का कार्य किया। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध और आलोचना के क्षेत्र में रचनाएं प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त अनुवाद कार्य के साथ रपटों या रिपोर्ताज भी लिखे उन्हें उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत किया एवं पद्मश्री की उपाधि से विभूषित किया गया। गुनाहों का देवता तथा सूरज का सातवां घोड़ा उपन्यासों पर फिल्मांकन का कार्य भी किया है।

धर्मवीर भारती द्वारा निम्न लिखित रचनाएं प्रकाशित हुई हैं-

1. **उपन्यास-** गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा।
2. **कविता-** खंड लोहा, अंधा युग, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया।
3. **कहानी-** मुर्दों का गांव, चांद तथा टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान।
4. **नाटक-** नदी प्यासी थी
5. **निबंध-** खेंगले पर हिमालय, कहानी अनकही, पश्यंती।
6. **आलोचना-** प्रगतिवाद एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य, सिद्धांत साहित्य
7. **अनुवाद-** आस्कर वाइल्ड की कहानियां।
8. **विविध-** युद्ध यात्रा (रिपोर्ताज)

धर्मवीर भारती ने विविध विधाओं पर कार्य किया है, जैसे-उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक इत्यादि उनका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उसमें राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक वस्तुओं का विवेचन किया गया है। समाज के विभिन्न वर्गों के चरित्र, घटनाएं, वातावरण इत्यादि का चित्रण है। अंधा

युग में पौराणिक संदर्भ पर नयी विवेचना की गई है तथा समाज के अंधत्व पर व्यंग्य किया गया है। वहां की वीभत्स कुचक्र, हिंसा, हिंसा जन्य दु:ख इत्यादि का विशद वर्णन है-उपन्यास तथा कहानियों में देश, काल, वातावरण के अनुसार चित्रण किया गया है। उनमें आधुनिकता का बोध है। नई कविता के क्षेत्र में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। पौराणिक कथा की नई कविता के गुणों से सुसज्जित करना उनका विशेष योगदान है।

लक्ष्मीनारायण अत्यंत प्रसिद्ध एकांकीकार हैं। उन्होंने सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एकांकी लिखे हैं। उन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक रचनाओं में तात्कालिक व्यवस्था का परिचय दिया है तो सामाजिक नाटकों में समाज की कई समस्याओं का विवेचन किया है। उनके एकांकी संकलन हैं- पर्वत के पीछे, आंसू, नाटक, बहुरंगी, ताजमहल, नाटक बहुरूपी, दूसरा दरवाजा, खेल नहीं नाटक इत्यादि। उनके सामाजिक नाटकों में-सुबह होगी, मड़वे का मोर, घुरों के नीचे, कैद से पहले, मम्मी ठकुराइन, चौथा आदमी आदि हैं। पारिवारिक नाटकों में मैं आइना हूं, ठंडी छाया, नई इमारतें, काल पुरुष इत्यादि प्रमुख हैं। लोक संस्कृति के क्षेत्र में जादू बंगला का तथा ऐतिहासिक नाटकों में शरणागत, रावण, उर्वशी, ताजमहल, जहांआरा, नूरजहां की एक रात आदि प्रसिद्ध हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल की विशेषताओं के लिए निम्न तत्वों पर विचार करेंगे- 1. विषयवस्तु, 2. पात्र एवं चरित्र चित्रण, 3. संवाद, 4. भाषा शैली, 5. अभिनेयता एवं रंगमंच की अनुकूलता।

1. लक्ष्मीनारायण लाल की विषय वस्तु बहुत विस्तृत है- उन्होंने पुराण इतिहास समाज के विविध क्षेत्रों को चुना है। उसमें कई भाव एवं विचार हैं एवं अनेक समस्याओं का संयोजन है। 2. उनके पात्र समाज तथा इतिहास के पात्र हैं, वे अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके चरित्रों में संघर्ष है। वे मानवीय संघर्षों से ओतप्रोत है। 3. इनके संवाद अत्यंत मार्मिक हैं, वे छोटे-छोटे तथा प्रभावोत्पादक हैं। उनकी भाषा पात्र, वातावरण तथा देश के अनुकूल है, बोलचाल की भाषा का प्रयोग ज्यादा है। 4. भाषा शैली, श्री लाल के नाटकों की भाषा व्यंग्य प्रधान, तीक्ष्ण तथा प्रतीकात्मक है। वह सशक्त है उसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी तरह के शब्द हैं। उसमें लाक्षणिकता है। 5. अभिनेयता तथा रंग की अनुकूलता के प्रसंग में बहुत सफल हैं, संवाद, पात्र, भाषा की दृष्टि से वे अभिनेय हैं। उनके पात्र सामान्य वर्ग के हैं अत: उनका चरित्र दुष्कर नहीं है। रंगभूषा पात्र, दृश्य, प्रकाश इत्यादि की दृष्टि से उनके नाटक रंगमंच के अनुकूल हैं।

साहित्यकारों में शीर्ष स्थान प्राप्त करने वालों में से एक प्रमुख नाम जैनेन्द्र कुमार का है। जैनेन्द्र जी का जन्म सन् 1905 में हुआ था। मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि लेकर लिखने वाले उपन्यासकारों में जैनेन्द्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। साहित्यिक रचनाएँ तथा उनकी विविधता की दृष्टि से जैनेन्द्र की तुलना प्रेमचंद जी से की जा सकती है, लेकिन जहाँ प्रेमचन्द का साहित्यिक क्षेत्र ग्रामीण समाज तथा उसके शोषण से था, वहीं जैनेन्द्र ने आज के शहरी-समाज की मनोवैज्ञानिक गुत्थियों पर कलम चलाई है। इस क्षेत्र में श्रेष्ठ उन्यासकार तथा कहानीकार जैनेन्द्र एक सशक्त प्रतिभा के धनी थे। उनका निधन 24 दिसम्बर 1988 को हुआ।

जैनेन्द्र जी एक सफल मनोवैज्ञानिक, सशक्त कथाकार थे। कहानी के मूलतत्वों की कसौटी के आधार पर इन्हें सहज ही उच्च कोटि के कथाकारों में रखा जा सकता है। जीवन के संघर्षों, वय:संधि की कोमल भावनाओं तथा घटनाओं के यथातथ्य वर्णन के माध्यम से पात्रों का चरित्र चित्रण, देश-काल का संयोजन, अपनी भाषा शैली तथा सहज चुटीले कथोपकथन में इस प्रकार सँजोते थे

कि मानव-जीवन के संदर्भ में उनकी गहरी पैठ एवं उसे प्रकट करने का उनका शैली वैशिष्ट्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

जैनेन्द्र जी एक ऐसे दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक साहित्यकार थे जो मन की कोमल भावनाओं के संवेदन से ओत-प्रोत हैं। उनका तर्कसंगत चिंतन तथा सरल सुबोध एवं प्रभावी अभिव्यक्ति इन्हें सहज ही उच्चकोटि के साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान दिलाने में समर्थ है।

जैनेन्द्र जी के अन्य सफल कहानी संग्रह हैं-पाजेब, एक रात, दो चिड़ियाँ, वातायन, फाँसी, स्पर्धा।

जैनेन्द्र मात्र कहानीकार ही नहीं थे वे उपन्यास लेखन में भी विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुके थे। कल्याणी, सुखदा, सुनीता, त्यागपत्र व्यतीत, विवर्त एवं मुक्तिबोध इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

प्रेमचंदजी के बाद हिन्दी कहानी साहित्य ने संक्रांति युग में प्रवेश किया। इस संक्रांति युग को कथा साहित्य में लाने का बहुत कुछ श्रेय जैनेन्द्र को दिया जाता है। आपने साहित्यिक जगत में एक क्रांति उपस्थित कर दी। शिल्प-विधान की दृष्टि से आपकी प्रत्येक कहानी में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। आप एक युग परिवर्तनकारी कहानीकार हैं। आपने अपनी कुछ कहानियों में दार्शनिक पृष्ठभूमि की भी प्राण प्रतिष्ठा की है।

इनका जन्म सन् 1905 में हुआ। इनकी मुख्य देन कहानी तथा उपन्यास है। सन् 1912 तक वे गुरुकुल में पढ़े। 1921 में व्यापार किया। इनका प्रथम उपन्यास 1929 में प्रकाशित हुआ। सुनीता, त्यागपत्र इन उपन्यासों ने इन्हें प्रसिद्ध किया। फिर कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत तथा उनकी नवीन कृति जयवर्धन है। प्रेम चंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। इनकी कहानियां सात भागों में प्रकाशित हुई। कई निबंध संग्रह प्रकाशित हुए। उन्होंने कई अनुवाद भी किए हैं जिनमें कहानी तथा नाटक हैं।

कथावस्तु- आपकी कहानियों की कथावस्तु भौतिक जगत की होती है। आपकी कला पाठकों को बरबस अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। जैन मत में विश्वास होने के कारण आप स्वभावत: अहिंसावादी हैं। आपका हृदय करुणा से ओत-प्रोत है। अत: कुल मिलाकर आप गांधीवाद के अधिक निकट हैं। जैनेन्द्र व्यक्ति के अंत:करण को ही स्पर्श करके रह जाते हैं। बाल सामाजिक जीवन को आपने बहुत ही हल्के हाथों से छुआ है।

चरित्र-चित्रण- आपके पात्र वर्ग-प्रतिनिधि न होकर अपने तक ही सीमित हैं। अज्ञेय की भांति नारी पात्रों का चरित्र आपने विशेष सहानुभूति के साथ अंकित किया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में आप भावुक बन जाते हैं।

कथोपकथन- आपके संवाद सर्वथा मौलिक हैं। आपके कथोपकथन संक्षिप्त पर प्रभावपूर्ण हैं। कथोपकथन सरल, स्वाभाविक तथा सजीव बन पड़े हैं। संवादों के माध्यम से कथावस्तु का विकास होता है तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं भी प्रकाश में आती हैं।

भाषा-शैली- आपकी रचनाओं की भाषा मंजी हुई है एवं भावों का अनुगमन करने वाली हैं। आपने उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा में कलात्मकता और अर्थ व्यंजकता है। आपने संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। आपने स्थान-स्थान पर आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने आपकी शैली के रूप निर्धारित किए हैं।

1. पत्रात्मक शैली, 2. आत्मकथात्मक शैली, 3. संवादात्मक शैली, 4. स्वगत भाषण, शैली, 5. नाटक शैली, 6. ऐतिहासिक शैली।

हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों के आधार पर अपने पात्रों की मानसिक प्रवृत्तियों-विशेष रूप से यौन प्रवृत्तियों, दमित वासनाओं, कुण्ठाओं, ग्रन्थ्यायों आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन्हें 'मनोविश्लेषणवादी परम्परा' में स्थान दिया जा सकता है। इनमें जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, देवराज प्रभृति के नाम विशेष रूप से लिये जाते हैं।

जैनेन्द्र कुमार के प्रकाशित उपन्यासों की सूची उनके प्रकाशन वर्ष के साथ इस प्रकार हैं- (1) परख (सन् 1929), (2) सुनीता (सन् 1936), (3) त्यागपत्र (सन् 1937), (4) कल्याणी (सन् 1939), (5) सुखदा (सन् 1952), (6) विवर्त (सन् 1953), (7) व्यतीत (सन् 1953), (8) जयवर्धन (सन् 1956)।

जैनेन्द्रजी ने इन उपन्यासों में अपने विभिन्न पात्रों की मानसिक प्रवृत्तियों एवं अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण अत्यंत सूक्ष्म रूप में किया है। जैनेन्द्रजी के उपन्यासों का प्रमुख तत्त्व-कथावस्तु, वातावरण, शैली आदि गौण है। सामान्यत: इनमें नारी और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण हुआ है, किन्तु इनकी नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और सशक्त दिखाई देती है।

जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों की नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं सशक्त हैं। इसी आधार पर जैनेन्द्र के उपन्यासों को नायिका-प्रधान माना जाता है। इन उपन्यासों की नायिकाएं भी प्राय: एक जैसे व्यक्तित्व वाली हैं। वे विवाहित हैं, किन्तु विवाह के अनन्तर पति के मित्र, भाई या किसी अन्य सामाजिक कार्यकर्ता के सम्पर्क में आती हैं और उसे अपने हृदय का स्नेह, सच्ची सहानुभूति और कभी-कभी अपना सर्वस्व भी समर्पित करती हुई उसके चरित्र को ऊँचा उठाने या उसकी पीड़ा को कम करने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार जैनेन्द्र की नायिकाएं बहुत उदार और स्वच्छन्द हैं, पर पतित नहीं हैं, वे-अन्य व्यक्ति से सम्पर्क रखती हुई भी पति के प्रति प्राय: समर्पित रहती हैं। वे पत्नी और प्रेमिका दोनों के कर्त्तव्य का निर्वाह करती हुई पत्नीत्व और सतीत्व, प्रेम और मर्यादा दोनों संभाले रखती हैं। अनेक उपन्यासों में आधुनिक समाज में नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए उनके दु:ख-दर्द को भी पूरी सहानुभूति से चित्रित किया गया है। जैनेन्द्र के पात्र कई बार स्वयं लेखक की ही भाँति अत्यंत अस्पष्ट, अस्वाभाविक एवं विचित्र हो जाते हैं, अत: उनकी भावनाओं के साथ सभी परिस्थितियों में तादात्म्य नहीं हो पाता।

जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी उपन्यास को प्रेमचन्द युग में ही नयी दिशा देने का सफल प्रयास किया। इनका स्थिति-काल सन् 1905 से 1988 तक है। छायावाद युग में जैनेन्द्र कुमार के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए-परख (सन् 1929 में), सुनीता (सन् 1935 में) और त्यागपत्र (सन् 1937 में)। हिन्दी उपन्यास को जैनेन्द्र जी से जो पाना था, वह इन्हीं कृतियों में मिल गया। 'परख' में समकालीन सामाजिक उपन्यासों की परम्परा से अलग लीक पर हटने का प्रयास किया गया है। सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में प्रेमचन्द सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। जैनेन्द्रजी ने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों का कथानक अधिकतर एक परिवार की कहानी होती है और वे शहर की गली और कोठारी की सभ्यता में ही सिमटकर व्यक्ति पात्रों की मानसिक गहराइयों में प्रवेश की कोशिश करते हैं। जैनेन्द्रजी की अगर कोई त्रुटि है तो यह कि वे अपने पात्रों को पहेली

बनाकर छोड़ देते हैं और पाठक इस मनोवैज्ञानिक पहली को सुलझाने के असफल प्रयास में उलझकर रह जाता है।

अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 में आगरा में हुआ। इन्होंने इंटर तक की शिक्षा ग्रहण की। इनका विवाह श्रीमती प्रतिभा से 1931 में हुआ। इन्होंने 1935 में एक बीमा कंपनी में नौकरी की पर वह उन्हें रास नहीं आयी। 1940 में बम्बई गये। फिर 1947 में लखनऊ आ गए। 1953 में आकाशवाणी में कार्य किया एवं अंत में स्वतंत्र लेखन शुरू किया। तेरह वर्ष की आयु में उनकी प्रथम कहानी प्रकाशित हुई एवं सन् 1935 में वाटिका नाम का प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। साथ ही उन्होंने 12 उपन्यास लिखे।

अमृतलाल नागर का कहानी संग्रह वाटिका है। उनके उपन्यास निम्न हैं- 1. महाकाल, 2. सेठ बांके मल, 3. बूंद और समुद्र, 4. गदर के फूल, 5. शतरंज के मोहरे, 6. सुहाग के नूपुर, 7. अमृत और विष, 8. सात घूंघट वाला मुखड़ा, 9. ये कोठेवालियां, 10. पांचवां दस्ता, 11. एकदा नैमिशारण्ये, 12. मानस का हंस।

नागरजी का स्थान हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में बहुत ऊंचा है। सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास ये हैं-महाकाल, बूंद तथा समुद्र, सुहाग के नूपुर तथा अमृत और विष। क्षुद्र स्वार्थों तथा भ्रष्ट आचरणों ने आज के समाज को इतना विश्रृंखलित और दिशाहीन कर दिया है कि युवा वर्ग अपने आपको नि:सहाय और एकाकी अनुभव करता है। नागरजी ने 'अमृत और विष' में अपने समाज का अत्यंत विषद विवेचन करने का प्रयत्न किया है।

उपन्यास के मान्य तत्व छ: हैं। इनके आधार पर नागरजी की उपन्यास कला का विवेचन प्रस्तुत है-

कथावस्तु- नागरजी ने सामाजिक तथा ऐतिहासिक दोनों तरह के उपन्यास लिखे हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी तत्कालीन समाज का चित्रण ही विषद रूप में मिलता है। जैसे 'शतरंज के मोहरे' में अवध के नवाबों के तत्कालीन अत्याचारों का यथार्थ चित्रण मिलता है। नागरजी ने 'महाकाल' में बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। 'अमृत और विष' में आपने अपने समाज का अत्यंत विषद विवेचन करने का प्रयत्न किया है।

शीर्षक- उनके शीर्षक उपयुक्त हैं, कथा वस्तु तथा गुंफन की दृष्टि से वे श्रेष्ठ उपन्यास हैं।

पात्र-योजना एवं चरित्र-चित्रण- उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व पात्र योजना है। नागरजी ने अपने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाले उपन्यासों के पात्र यथार्थ जीवन से लिए हैं।

यथार्थ के प्रतीक होते हुए काल्पनिक पात्र- अमृतलाल नागर ने उपन्यास की भूमिका 'कथनीय' के अंतर्गत यह स्पष्ट कर दिया है कि उपन्यास के सभी पात्र यथार्थ के प्रतीत होते हुए भी काल्पनिक हैं।

प्रकार- अमृतलाल नागर ने महाकाव्यत्व के उपन्यास लिखे हैं।

चरित्र चित्रण में उन्होंने संवाद, विवरणात्मक, व्यंग्यात्मक, डायरी, इत्यादि शैलियों का प्रयोग किया है।

संवाद- उनके संवाद देशकाल, पात्र तथा वातावरण के अनुकूल एवं छोटे-छोटे मर्म स्पर्शी हैं।

भाषा-शैली- नागरजी यथार्थवादी सामाजिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक परिस्थितियों तथा घटनाओं के चित्रोपम वर्णन किये हैं। उनकी दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म तथा भाषा समर्थ है। उन्होंने अनुभूत्यात्मक चित्रण के द्वारा अपने वर्णों को सजीवता प्रदान की है। आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के वातावरण का उन्होंने सूक्ष्मता एवं गहराई से चित्रण किया है। उन्होंने भावात्मक, व्यंग्यात्मक, हास्यात्मक शैली का प्रयोग किया है।

उद्देश्य- नागरजी जनचेतना के सजग कलाकार हैं। उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों के द्वारा जनमानस को झकझोरकर जाग्रत किया है। उन्होंने वैयक्तिक तथा सामाजिक हितों के द्वंद्व का चित्रण करके इनके सामंजस्य से विश्व-कल्याण की कामना की है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति तथा समाज दोनों का अपना-अपना महत्व है। 'अमृत और विष' हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें भारत की तरुण पीढ़ी की भावनाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों का इतने विस्तार से चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष- नागरजी की उपन्यास कला प्रौढ़, सक्षम अभिव्यक्ति, उत्तम वस्तु संगठन एवं सुनियोजित पात्र योजना एवं चित्रोपम एवं सजीव वातावरण-अंकन तथा सामाजिक यथार्थ की भूमि पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा आदि विशिष्ट उपलब्धियों के साथ हमारे समक्ष आती है। सामाजिक उपन्यासकारों में उनका स्थान बहुत ऊंचा है तथा 'अमृत और विष' हिन्दी का एक अनुपम सामाजिक उपन्यास है।

निर्मल वर्मा नई कहानी के श्रेष्ठ कलाकार हैं, उन्होंने स्थूल यथार्थ की सीमा पार करने का प्रयत्न किया, निर्मल वर्मा के कहानी संग्रह हैं- परिन्दे, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच में बहस, मेरी प्रिय कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, कव्वे तथा काला पानी इत्यादि। निर्मल वर्मा की कहानियाँ विदेशी भावभूमि पर आधारित हैं जो विशेषकर लड़की एवं मदिरा के वातावरण का प्रदर्शन है। वे वैयक्तिक कहानीकार हैं। उनके पात्र कामवासना की तीव्रता से युक्त हैं, उनकी कहानियों में सामाजिक कर्तव्यों तथा सम्बन्धों का मामूली सा चित्रण है, वे कला के लिए कला के समर्थक हैं।

विषयवस्तु- निर्मल वर्मा ने सामान्य जीवन का वर्णन किया है। उन्होंने पर्याप्त चित्रण की पराकाष्ठा की है। उनके पात्र कहीं कहीं अतिकामुक एवं उच्छृखल हो गये हैं। उनकी विषयवस्तु विदेशी धरातल की समर्थक है अत: खाओ पियो तथा मौज करो वाला वातावरण है जिसमें मद्य, मांस को खुली छूट एवं कथित अधुनातन सामाजिक चित्रण उन्होंने अधिक किया है।

पात्र- उनके पात्र स्त्री पुरुष अधिकतर उन्मत्त हैं। वे सीमित सम्बन्धों वाले हैं। उनके चरित्र का विकास घटनाक्रम के अनुसार होता रहता है।

संवाद- निर्मल वर्मा के संवाद संक्षिप्त, सुगठित, पैने तथा सटीक होते हैं। उनके संवाद नाटकीय हैं।

भाषा- निर्मल वर्मा की भाषा व्यंजक है, भावनाओं से ओतप्रोत है, उसमें आधुनिकता की भावना व्यक्त होती है। शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग है तथा चित्रात्मक एवं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है। उन्होंने देशकाल वातावरण का समुचित निर्वाह किया है।

भीष्म साहनी का जन्म सन् 1931 में हुआ। उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. किया। वे दिल्ली में साहित्य गोष्ठियों में जाने लगे, वे कोमल मृदुभाषी तथा मितभाषी हैं। उन्होंने अनेक यात्राएं कीं तथा अपने लेखन द्वारा अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। कुछ इस प्रकार हैं-साहित्य अकादमी पुरस्कार,

प्रेमचंद पुरस्कार, लोटस पुरस्कार, हिन्दी उर्दू साहित्य पुरस्कार इत्यादि उनके कई उपन्यास दूरदर्शन पर प्रसारित हुए। उनमें तमस तथा बसंती प्रमुख हैं। उन्होंने कई कहानियां एवं उपन्यास लिखे। उनके कहानी संग्रहों में भाग्य रेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियां इत्यादि प्रमुख हैं। उपन्यासों में तमस, बसंती, मायादास की माड़ी, कुंती आदि प्रमुख हैं। इनमें प्रथम तीन उपन्यास पुरस्कृत हुए हैं। उनमें नाटकों में हानूश, कबीरा खड़ा बाजार में इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने संपादन का कार्य भी किया है। इसके अलावा जीवनी, निबंध, बाल साहित्य भी लिखा है।

भीष्म साहनी उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखते हैं। उनके उपन्यासों में तमस-बसंती इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने कई कहानियों की रचना की है। विभाजन पर आधारित कई लेखकों ने उपन्यास तथा कहानियां लिखी हैं। तमस भीष्म साहनी का इसी पर आधारित उपन्यास है एवं अमृतसर आ गया है इसी क्रम की एक कड़ी है।

विषयवस्तु- उन्होंने समाज, सत्य घटनाओं पर आधारित कहानी लिखी है। विभाजन के आधार पर बसंती जैसे उपन्यास लिखे हैं। समाज की समस्याओं, वर्गों पर उपन्यास लिखे हैं।

पात्र एवं चरित्र चित्रण- उनके उपन्यासों में सामान्य जीवन के पात्र, शरणार्थी, व्यापारी, किसान, मजदूर, मिल मालिक, राजनीतिज्ञ इत्यादि सभी हैं। उनका चरित्र, अत्यंत व्यापक एवं उनकी स्थिति के अनुसार है। वे धूर्त, चालाक, पंडित व्यापारी सभी हैं तथा उनका चित्रण घटनानुसार होता रहता है।

भीष्म साहनी ने सशक्त भाषा का प्रयोग किया है-कहीं कहीं मुहावरों इत्यादि का प्रयोग भी एवं अमिधा, लक्षणा तथा व्यंजन तीनों शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है। कहानी में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है- (1) विवरणात्मक या वर्णनात्मक शैली, (2) भावात्मक शैली, (3) व्यंग्यात्मक शैली, (4) चित्रात्मक शैली।

उनकी भाषा सरल खड़ी बोली है जो पात्रों तथा वातावरण के अनुकूल है। उनमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी तरह के शब्दों का प्रयोग है। अवसर के अनुकूल वह भावात्मक एवं व्यंग्यात्मक हो जाती है।

मनोरंजकता एवं समस्याएं- कहानी की भाषा, वर्णन विषय वस्तु, संवाद एवं पात्रों की प्रतिक्रिया के कारण बहुत रोचक बन गयी है। यथार्थ का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से किया गया-यात्रियों की हलचल, उनका भय, दो संप्रदाय के लोगों की मनोवृत्ति का परिचायक विभाजन से उत्पन्न समस्याओं को प्रकट किया गया है-अप्रत्यक्ष रूप से कई समस्याओं की हम कल्पना कर लेते हैं।

देशकाल वातावरण- उनके साहित्य में संयुक्त भारत एवं पाकिस्तान के क्षेत्र की कई कहानी हैं तथा वह विभाजन की घोषणा के बाद की कहानी है जिसका काल हम सन् 1946-47 का मान सकते हैं। कहानी में होने वाली कठिनाइयां, यात्रियों की समस्या एवं दंगे के कारण उत्पन्न स्थिति के वातावरण का निर्माण अत्यंत कुशलता पूर्वक किया गया है। लगता है हम स्वयं यात्रा कर रहे हैं तथा उसकी कठिनाइयों को भोग रहे हैं। उस समय के वातावरण का अत्यंत मार्मिक चित्रण है।

संवाद- कहानी में कई संवाद हैं जिनकी भाषा पात्रों के अनुकूल है। वे लंबे नहीं हैं, हां, उनके हास्य, व्यंग्य, भय-आक्रोश सभी को अत्यंत सहजता तथा सबलता से व्यक्त किया है। संवादों में मार्मिकता एवं गांभीर्य है। प्रसंग के अनुकूल ही संवाद है।

उद्देश्य- उनके उपन्यासों के उद्देश्य विभाजन के बाद ही विभीषिकाओं एवं रेल यात्रा में होने वाली घटनाओं का प्रकाशन है। लेखक लोगों के बदहवासीपन और वहशीपन को उजागर करना चाहता है।

मन्नू भंडारी का जन्म 1931 ई. में हुआ। उन्हें परिवार में साहित्यिक वातावरण मिला उन्होंने हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। महिला साहित्यकारों में उनका स्थान उच्च है। उन्होंने उपन्यास, कहानियां तथा रिपोर्ताज लिखे हैं। उन्होंने राजेन्द्र यादव के साथ सहलेखन किया है। उनके कहानी संग्रह हैं- मैं हार गई, तीन सिपाही एक तस्वीर, यही सच है, बिना विचारों का घर। महाभोज उनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

उनके उपन्यास एवं कहानियां घटना प्रधान हैं। उन्होंने राजनीतिक कुचक्रों, नेताओं का रंग बदलना, धूर्तता इत्यादि का पर्दाफाश किया है। कथावस्तु की दृष्टि से मन्नू भंडारी के उपन्यास, सुगठित, सुगुम्फित, रोचक, विचारपूर्ण एवं जीवन के निकट हैं। इनमें संगठनात्मक भी हैं और विविधता भी। कथा को मूल लक्ष्य की ओर पहुंचाने की ओर लेखिका का सदैव ध्यान रहता है, इसलिए कथासूत्र विश्वृंखलित नहीं हो पाते। राजनीति में आज जितनी भी विकृतियां व्याप्त हैं, कथावस्तु उन सबको उजागर करती हुई स्वाभाविक गति में अग्रसर होती है। किसी आदर्श की पुष्टि करना ध्येय न होने के कारण कथावस्तु वास्तविकता का दिग्दर्शन कराके पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड़ देती है।

भाषा एवं शैली- उपन्यास की भाषा सशक्त तथा प्रभावोत्पादक है उसमें गति एवं भाव सबलता है।

संवादों की भाषा में- देशकाल का रंग है ही, कथा वर्णन एवं पात्रों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में भी उनकी भाषा देशकाल से प्रभावित तथा परिस्थितियों के अनुरूप है।

मन्नू भंडारी की औपन्यासिक भाषा में प्रवाहमयता, सजीवता एवं रोचकता है। करारे व्यंग्य एवं तीखी चोट करने की विशेषता भाषा में प्रचुरता से है पर व्यंग्य तीखे होते हुए भी उनकी प्रस्तुति ऐसी है कि वे भद्देपन या अश्लीलता से सर्वथा मुक्त हैं।

मन्नू भंडारी की भाषा न तो क्लिष्ट है न शिथिल-हिन्दी, उर्दू में आम बोलचाल के प्रचलित सामान्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। शिक्षित पात्रों की भाषा में यत्र-तत्र अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी आ जाते हैं तथा अशिक्षित ग्रामीण पात्रों की भाषा पर आंचलिकता का प्रभाव है। मुहावरों की सुंदर छटा भी अति आकर्षक बन पड़ी है जो उनके भाषा-सौष्ठव का अन्यतम सजीव उदाहरण है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज सभी प्रकार के शब्द हैं। उसमें लोकोक्ति, मुहावरों कहावतों की भरमार है।

मन्नू भंडारी की शैली मिश्रित है। इसमें वर्णनात्मक, संवादात्मक, विश्लेषणात्मक शैली को अपनाया है। महाभोज में संवादों के माध्यम से कथाविकास, पात्र-योजना, वातावरण का चित्रण किया गया है। सीधी सरल शैली में वह दृढ़तम तथ्य को उद्घाटित करता है। चित्रात्मक शैली के अनेक चित्रण भी उनके इस उपन्यास में पात्रों में कथानुरूप व्याप्त कुटिलता तथा धूर्तता राजनीति के विकृत रूप को स्पष्ट करने में सक्षम हैं।

पात्रों के चरित्र-चित्रण की यह विशेषता है कि चरित्र-चित्रण में मौलिकता, स्वाभाविकता, गतिशीलता, रोचकता तथा प्रभावात्मकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उनके संवाद मोहक, मार्मिक एवं छोटे-छोटे होते हैं। उनकी भाषा देश, काल, पात्र तथा वातावरण के अनुकूल होती है।

मन्नू भण्डारी विगत 15 वर्षों से कहानियाँ लिख रही हैं। श्रीमती मन्नू भंडारी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। आपके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं-(1) मैं हार गई, (2) तीन निगाहों की एक तस्वीर, (3) यह सच है, (4) एक प्लेट सैलाव तथा (5) एक पुरुष।

आपने उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें प्रमुख हैं-'आपका बंटी' तथा 'एक इंच मुस्कान'।

आपकी कहानियाँ प्राय: स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध को गति प्रदान करने वाली रहती हैं। आपकी कहानियों का वातावरण प्राय: घुटन-भरी एवं विवादपूर्ण रहता है।

अन्तर्जगत के मार्मिक चित्रण में आपकी तुलना में कोई अन्य महिला कहानीकार नहीं आती है। नये कहानीकारों में आपको विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

मानव मन की गुत्थियों को सुलझाना आपकी कहानी का लक्ष्य रहता है।

इकाई-पाँच

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न जैनेन्द्र कुमार किस विधा के लिए प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- जैनेन्द्र कुमार उपन्यास एवं कहानी कला के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न जैनेन्द्र के चार प्रसिद्ध उपन्यासों का नाम लिखिए।

उत्तर- परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी।

प्रश्न जैनेन्द्र के तीन कहानी संग्रहों के नाम लिखिए।

उत्तर- फांसी, वातायन, एक रात।

प्रश्न यशपाल का जन्म कब और कहां हुआ?

उत्तर- यशपाल का जन्म सन् 1903 में फिरोजपुरी छावनी में हुआ।

प्रश्न यशपाल के चार उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर- दादा कामरेड, देशद्रोही, दिव्या, झूठा सच।

प्रश्न यशपाल के तीन कहानी संग्रह बताइए।

उत्तर- ज्ञानदान, तर्क का तूफान, धर्मयुद्ध।

प्रश्न अमृतलाल नागर का जन्म कब हुआ?

उत्तर- अमृतलाल नागर का जन्म संवत् 1973 में हुआ।

प्रश्न नागरजी के दो उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर- अमृत और विष, बूंद और समुद्र।

प्रश्न भीष्म साहनी का जन्म कब एवं कहां हुआ?

उत्तर- भीष्म साहनी का जन्म 1931 में रावलपिंडी में हुआ।

प्रश्न भीष्म साहनी के तीन प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर- तमस, बसंती, मायादास की माड़ी।

प्रश्न भारतेन्दु का जन्म कब एवं कहां हुआ?

उत्तर- भारतेन्दु का जन्म सन् 1907 में काशी के शिवाला मोहल्ले में हुआ।

प्रश्न भारतेन्दु का वास्तविक नाम क्या है?

उत्तर- भारतेन्दु का वास्तविक नाम हरिश्चंद्र है।

प्रश्न उनका नाम भारतेन्दु क्यों पड़ा?

उत्तर- जब अंग्रेजों ने राजा शिवप्रसाद को सितारे हिन्द की उपाधि प्रदान की तो भारतीय साहित्यकारों ने हरिश्चंद्र को भारतेन्दु की उपाधि दी।

प्रश्न भारतेन्दु ने किस प्रकार की रचना की?

उत्तर- भारतेन्दु ने निबंध, नाटक, एकांकी, काव्य, धर्मग्रंथ, कथा साहित्य इत्यादि सभी काव्य विधाओं की रचना की।

प्रश्न प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, सुदर्शन आदि प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकार हैं।

प्रश्न हिन्दी के किन्हीं दो कहानीकारों के नाम लिखिए तथा उनकी एक-एक कहानी का नाम लिखिए।

उत्तर- हिन्दी में प्रेमचंद की 'मंत्र' एवं जयशंकर प्रसाद की 'ममता' कहानी प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न द्विवेदी युग के दो कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- माधव प्रसाद मिश्र तथा किशोरीलाल गोस्वामी द्विवेदी युग के प्रमुख कहानीकार हैं।

प्रश्न आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा क्या है? उसके एक लेखक का नाम लिखिए।

उत्तर- आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा कहानी है। उसके प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद हैं।

प्रश्न द्विवेदी युग के दो सामाजिक कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', द्विवेदी युग के दो सामाजिक कहानीकार हैं।

प्रश्न हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी एवं उसके लेखक का नाम बताइए।

उत्तर- हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' है। इसकी रचना सन् 1915 ई. में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने की थी।

प्रश्न डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म कहां और कब हुआ?

उत्तर- डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म 15 नवंबर सन् 1905 में सागर जिले में हुआ।

प्रश्न डॉ. रामकुमार वर्मा किसलिए प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- डॉ. रामकुमार वर्मा एकांकी नाटकों के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न उपेन्द्रनाथ अश्क का जन्म कब हुआ?

उत्तर- उपेन्द्रनाथ अश्क का जन्म सन् 1910 में हुआ।

प्रश्न उपेन्द्रनाथ अश्क के पांच प्रसिद्ध एकांकियों के नाम लिखिए।

उत्तर- लक्ष्मी का स्वागत, उड़न भंवर, पानी, पर्दा हटाओ, पर्दा गिराओ।

प्रश्न मन्नू भंडारी का जन्म कब और कहां हुआ?

उत्तर- मन्नू भंडारी का जन्म सन् 1931 में राजस्थान में हुआ।

प्रश्न मन्नू भंडारी के तीन कहानी संग्रहों का नाम लिखिए।

उत्तर- मैं हार गई, तीन सिपाही एक तस्वीर, यही सच है।

प्रश्न **मन्नू भंडारी के प्रसिद्ध उपन्यास का नाम लिखिए।**

उत्तर- मन्नू भंडारी के प्रसिद्ध उपन्यास का नाम है महाभोज।

महत्त्वपूर्ण वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न **उपन्यास का अर्थ है-**

(अ) समीप में रखना *(ब) दूर रखना*

(स) हाथ में रखना *(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **उपन्यास के तत्त्व हैं-**

(अ) दो *(ब) चार* *(स) छह* *(द) आठ* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न **उपन्यास लेखन की कितनी शैलियाँ प्रचलित हैं-**

(अ) दो *(ब) चार* *(स) छह* *(द) आठ* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न **द्वितीय उत्थान काल को कहते हैं-**

(अ) द्विवेदी युग *(ब) भारतेन्दु युग*

(स) प्रेमचन्द युग *(द) उपर्युक्त सभी* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **उपन्यास 'आखिरी दाँव' लिखा है-**

(अ) भगवतीचरण वर्मा *(ब) यशपाल*

(स) धर्मवीर भारती *(द) अमृतलाल नागर* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **उपन्यास 'परती परिकथा' के लेखक हैं-**

(अ) देवेन्द्र सत्यार्थी *(ब) फणीश्वरनाथ रेणु*

(स) शिवप्रसाद मिश्र *(द) उदयशंकर भट्ट* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न **कथावस्तु की अवस्थाएं होती हैं-**

(अ) एक *(ब) दो* *(स) तीन* *(द) चार* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न **पात्रों के चरित्र-चित्रण की प्रणालियाँ हैं-**

(अ) तीन *(ब) सात* *(स) नौ* *(द) दो* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न **हिन्दी उपन्यास के विकास का अध्ययन करने के लिए हम उसको कितने भागों में बाँट सकते हैं?**

(अ) दो *(ब) तीन* *(स) चार* *(द) पाँच* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न **वर्तमान काल में हमें उपन्यास मिलते हैं-**

(अ) दो प्रकार के *(ब) तीन प्रकार के*

(स) पाँच प्रकार के *(द) दस प्रकार के* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न **सामाजिक उपन्यास के कितने वर्ग हैं?**

(अ) एक *(ब) दो* *(स) तीन* *(द) चार* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न **उपन्यास 'गोदान' के लेखक हैं-**

(अ) प्रेमचन्द (ब) जैनेन्द्र (स) अज्ञेय (द) रांगेय राघव **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न प्रेमचन्द का उपन्यास-सृजन प्रारम्भ हो जाता है सन्-

(अ) 1902 में (ब) 1908 में (स) 1906 में (द) 1914 में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न प्रेमचन्दजी का प्रथम उपन्यास है-

(अ) प्रतिज्ञा (ब) सेवासदन (स) प्रतिमा (द) रूठी रानी **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न 'गोदान' प्रकाशित हुआ-

(अ) 1936 में (ब) 1937 में (स) 1938 में (द) 1939 में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न गोदान का नायक है-

(अ) राम (ब) घनश्याम (स) कबीर (द) होरी **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न होरी की पत्नी है-

(अ) धनिया (ब) निरुपा (स) रोहिणी (द) रामकली **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न होरी है एक-

(अ) अध्यापक (ब) वकील (स) किसान (द) पंडित **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न प्रेमचन्द के सुपुत्र-

(अ) कन्हैयालाल (ब) अमृतराज (स) रवीन्द्र (द) देवेन्द्र **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न 'आधे-अधूरे' नाटक के रचनाकार हैं-

(अ) हरिशंकर परसाई (ब) जैनेन्द्र कुमार

(स) मोहन राकेश (द) प्रेमचन्द **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न 'आधे-अधूरे' प्रकाशित हुआ सन् -

(अ) 1960 में (ब) 1968 में (स) 1967 में (द) 1966 में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न नाटक के नायक का नाम है-

(अ) सुरेन्द्र (ब) महेन्द्र (स) उपेन्द्र (द) देवेन्द्र **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न नाटककार मोहन राकेश का जन्म हुआ-

(अ) 9 जनवरी, 1925 ई. (ब) 10 जून, 1925 ई.

(स) 4 अगस्त, 1925 ई. (द) 8 मई, 1925 ई. **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न मोहन राकेश की पहली रचना थी-

(अ) भिक्षु (ब) लड़ाई

(स) दोराहा (द) मलबे का मालिक **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न मोहन जी की कहानी 'लहरों के राजहंस' प्रकाशित हुई-

(अ) 1966 में (ब) 1988 में (स) 1968 में (द) 1992 में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न मोहन राकेश जी का स्वर्गवास हो गया सन् -

(अ) 1973 में (ब) 1977 में (स) 1980 में (द) 1984 में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न नामकरण किया जा सकता है-

(अ) चार प्रकार से (ब) दो प्रकार से

(स) नौ प्रकार से (द) बारह प्रकार से **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न महेन्द्र की लड़की का नाम है-

(अ) सविता (ब) बिन्नी (स) राधा (द) गीता **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न 'आधे-अधूरे' नाटक है-

(अ) सामाजिक (ब) धार्मिक (स) राजनीतिक (द) कोई नहीं **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न बिन्नी का पति है-

(अ) मनोज (ब) राहुल (स) सौरव (द) गौतम **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न नाटक 'आधे-अधूरे' में पात्र संख्या है-

(अ) 7 *(ब)* 12 *(स)* 5 *(द)* 10 **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न सावित्री का अफसर है-

(अ) जुनेजा (ब) महेन्द्र (स) सिंघानिया (द) जगमोहन **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न महेन्द्रनाथ की आयु है लगभग

(अ) 70 *वर्ष (ब)* 50 *वर्ष (स)* 45 *वर्ष (द)* 50 *वर्ष* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न महेन्द्र की छोटी पुत्री बिन्नी की आयु है-

(अ) 10 *वर्ष (ब)* 12 *वर्ष (स)* 7 *वर्ष (द)* 2 *वर्ष* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न महेन्द्र एक है-

(अ) बेरोजगार (ब) धनाढ्य (स) व्यापारी (द) वकील **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न सावित्री की आयु लगभग है-

(अ) 50 *वर्ष (ब)* 40 *वर्ष (स)* 30 *वर्ष (द)* 70 *वर्ष* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के रचयिता कौन हैं?

(अ) हरिकृष्ण प्रेमी (ब) लक्ष्मीनारायण मिश्र

(स) जयशंकर प्रसाद (द) गोविन्दवल्लभ पंत **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक में कितने अंक हैं?

(अ) चार (ब) पाँच (स) छः (द) सात **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक में कितने पात्र हैं?

(अ) चौबीस (ब) पच्चीस (स) छब्बीस (द) सत्ताईस **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के स्त्री-पात्रों की संख्या कितनी है?

(ब) छः (ब) सात (स) आठ (द) नौ **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त का दूसरा नाम क्या है?

(अ) विक्रमादित्य(ब) विक्रमार्क (स) विक्रमदेव (द) विक्रमसिंह **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त का पद क्या है?

(अ) सेनापति (ब) मन्त्री (स) युवराज (द) सम्राट **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न मगध के सम्राट कौन हैं?

(अ) कुमारगुप्त (ब) रामगुप्त (स) चन्द्रगुप्त (द) भद्रगुप्त **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न गोविन्दगुप्त कौन हैं?

(अ) मन्त्री (ब) सेनापति

(स) युवराज *(द) कुमारगुप्त के भाई* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न पर्णदत्त कौन हैं?

(अ) सेनापति (ब) युवराज (स) मंत्री (द) द्वारपाल **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न चक्रपालित कौन है?

(अ) मंत्री *(ब) सेनानायक*

(स) पर्णदत्त का पुत्र *(द) पर्णदत्त का भाई* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त किनके युद्ध को देखकर वृद्ध सेनापति के चकित होने की बात कहते हैं?

(अ) कुमारगुप्त (ब) स्कंदगुप्त (स) गोविन्दगुप्त (द) मातृगुप्त **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य के अनुसार पर्णदत्त किससे पूछता है कि क्या समाचार है?

(अ) चर से (ब) दूत से (स) सैनिक से (द) दण्डनायक से **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न दूत पर्णदत्त को कहाँ का पतन होने का समाचार होता है?

(अ) काशी का *(ब) मथुरा का*

(स) बलभी का *(द) कन्नौज का* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के अनुसार "भगवान सब मंगल करेगा"-कौन कहता है?

(अ) स्कन्दगुप्त (ब) पर्णदत्ता (स) मुद्गल (द) धातुसेन **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न बन्धुवर्मा कौन है?

(अ) मालव का मंत्री *(ब) मगध का मंत्री*

(स) मालव का राजा *(द) मगध का युवराज* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न भीमवर्मा कौन है?

(अ) मालव का सेनापति *(ब) मालव का मंत्री*

(स) मालव का राजा *(द) बन्धुवर्मा का भाई* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक में कितने दृश्य हैं?

(अ) पाँच (ब) छः (स) सात (द) आठ **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) उज्जयिनी के गुप्त साम्राज्य का महल

(ब) उज्जयिनी के गुप्त साम्राज्य का स्कन्धावर

(स) उज्जयिनी के गुप्त साम्राज्य की राजसभा

(द) उज्जयिनी के गुप्त साम्राज्य का उपवन **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में पहला संवाद किसने बोला है?

(अ) स्कन्दगुप्त ने *(ब) कुमारगुप्त ने*

(स) गोविन्दगुप्त ने *(द) मातृगुप्त ने* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'स्कन्दगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में दूसरा संवाद किसने बोला है?

(अ) बन्धुवर्मा ने *(ब) भीमवर्मा ने*

(स) पर्णदत्त ने *(द) मातृगुप्त ने* उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के पहले दृश्य में कितने पात्रों का अभिनय है?

(अ) पाँच का (ब) छः का (स) सात का (द) आठ का उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य के अन्त का संवाद किसका है?

(अ) स्कन्दगुप्त का (ब) पर्णदत्त का (स) चर का (द) दूर का उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य का पहला संवाद किसके द्वारा बोला गया है?

(अ) कुमारगुप्त द्वारा *(ब) धातुसेन द्वारा*

(स) भट्टार्क द्वारा *(द) मुद्गल द्वारा* उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) कुमारगुप्त के राजमन्दिर के सरोवर में

(ब) कुमारगुप्त के राजमन्दिर में

(स) कुमारगुप्त के राजमन्दिर की राज्यपरिषद में

(द) इनमें से कोई नहीं उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में दूसरा संवाद किसका है?

(अ) धातुसेन का *(ब) कुमारगुप्त का*

(स) पृथ्वीसेन का *(द) भट्टार्क का* उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में कितने पात्रों ने अभिनय किया है?

(अ) पाँच *(ब) पाँच से अधिक*

(स) चार *(द) चार से कम* उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में अन्तिम कथन किसका है?

(अ) धातुसेन का *(ब) कुमारगुप्त का*

(स) अनन्तदेवी का *(द) नर्तकियों का* उत्तर- *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में किसके कथन के बाद नर्तकियाँ गाते हुए प्रवेश करती हैं?

(अ) धातुसेन के *(ब) कुमारगुप्त के*

(स) मुद्गल के *(द) भट्टार्क के* उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) राजमहल में *(ब) राजपरिषद में*

(स) पथ में *(द) स्कन्धावर में* उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में पहला संवाद कौन बोलता है?

(अ) धातुसेन (ब) मुद्गल (स) मातृगुप्त (द) स्कन्दगुप्त उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में मातृगुप्त के बाद कौन प्रवेश करता है?

(अ) मुद्गल (ब) भट्टार्क (स) धातुसेन (द) कुमारदास उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में अन्तिम संवाद किसका है?

(अ) मुद्गल का *(ब) मातृगुप्त का*

(स) कुमारदास का *(द) स्कन्दगुप्त का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) मगध के राजमन्दिर में *(ब) अनन्तदेवी के प्रकोष्ठ में*

(स) देवकी के प्रकोष्ठ में *(द) मगध के स्कन्धावार में* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में पहला संवाद किसका है?

(अ) कमला का *(ब) विजया का*

(स) अनन्तदेवी का *(द) देवकी का* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में दूसरा संवाद किसका है?

(अ) विजया का *(ब) अनन्तदेवी का*

(स) देवकी का *(द) जयमाला का* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में कितने पात्रों ने अभिनय किया है?

(अ) दो ने *(ब) तीन ने* *(स) चार ने* *(द) पाँच ने* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य का अन्तिम कथन किसका है?

(अ) प्रपंचबुद्धि का *(ब) भट्टार्क का*

(स) अनन्तदेवी का *(द) विजया का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक के पंचम दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) अन्तःपुर में *(ब) अन्तःपुर के द्वार पर*

(स) राजमहल में *(द) राजमहल के द्वार पर* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के पंचम दृश्य में पहला संवाद किसका है?

(अ) भट्टार्क का *(ब) शर्वनाग का*

(स) रामा का *(द) सैनिक का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के पंचम दृश्य में दूसरा संवाद किसका है?

(अ) भट्टार्क का *(ब) शर्वनाग का*

(स) रामा का *(द) सैनिक का* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के पंचम दृश्य में कितने पात्रों ने अभिनय किया है?

(अ) सात ने *(ब) आठ ने* *(स) नौ ने* *(द) दस ने* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के षष्ठ दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) नगर प्रान्त में *(ब) नगर प्रान्त के पथ में*

(स) स्कन्धावार में *(द) राजमहल में* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के छठे दृश्य में पहला संवाद किसका है?

(अ) मुद्गल का *(ब) मातृगुप्त का*

(स) हूण सैनिक का *(द) नागरिक का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के सप्तम दृश्य में जयमाला के कथन के बाद कौन प्रवेश करता है?

(अ) मुद्गल (ब) बन्धुवर्मा (स) भीमवर्मा (द) भट्टार्क उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक के सप्तम दृश्य में गीत किसने गाये हैं?

(अ) जयमाला ने (ब) देवसेना ने (स) विजया ने (द) देवकी ने उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के दूसरे अंक में कितने दृश्य हैं?

(अ) सात (ब) आठ (स) नौ (द) दस उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य का अभिनय कहाँ होता है?

(अ) मालव में (ब) मालव में शिप्रा तट पर

(स) मालव में शिप्रा तट पर कुंज में (द) पथ में उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में प्रपंचबुद्धि के साथ कौन बैठे हैं?

(अ) भट्टार्क-शर्वनाग (ब) भट्टार्क-पृथ्वीसेन

(स) पृथ्वीसेन-मुद्गल (द) मुद्गल-पर्णदत्त उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में मदिरा का पात्र भरकर कौन पीता और पिलाता है?

(अ) शर्वनाग (ब) चक्रपालित (स) प्रपंचबुद्धि (द) चक्रपालित उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में कुमारदास धातुसेन के रूप में कौन प्रवेश करता है?

(अ) शर्वनाग (ब) प्रपंचबुद्धि (स) धातुसेन (द) चक्रपालित उत्तर- *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में रामा का प्रवेश किसके कथन के बाद होता है?

(अ) चक्रमपालित के (ब) शर्वनाग के

(स) भट्टार्क (द) पर्णदत्त के उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य के आरम्भ में कौनसे दो पात्र हैं?

(अ) देवकी और रामा (ब) अनन्तदेवी और विजया

(स) चक्रपालित और पर्णदत्त (द) मुद्गल और मातृगुप्त उत्तर- *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के पंचम दृश्य में भीमवर्मा किसको जाने से रोकता है?

(अ) पर्णदत्त को (ब) चक्रपालित को

(स) शर्वनाग को (द) बन्धुवर्मा को उत्तर- *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के द्वितीय अंक के छठे दृश्य में भट्टार्क के साथ कौनसी दो स्त्रियाँ बात करती हैं?

(अ) देवकी और विजया (ब) कमला और विजया

(स) विजया और अनन्तदेवी (द) देवकी और अनन्तदेवी उत्तर- *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के सप्तम दृश्य में स्कन्दगुप्त किसकी चरण-वन्दना करता है?

(अ) देवकी की *(ब) अनन्तदेवी की*

(स) गोविन्दगुप्त की *(द) कुमारगुप्त की* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कंदगुप्त नाटक के तृतीय अंक में कितने दृश्य हैं?

(अ) चार *(ब) पाँच* *(स) छः* *(द) सात* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त के तृतीय अंक का प्रथम दृश्य कहाँ अभिनीत होता है?

(अ) मगध में *(ब) मालव में* *(स) मार्ग में* *(द) शिप्रा तट पर* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में पहला संवाद किसका है?

(अ) कुमारगुप्त का *(ब) गोविन्दगुप्त का*

(स) स्कन्दगुप्त का *(द) मातृगुप्त का* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के तृतीय दृश्य के अन्त में किसका संवाद है?

(अ) देवकी का *(ब) अनन्तदेवी का*

(स) कमला का *(द) जयमाला का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में कितने पात्रों का अभिनय है?

(अ) पाँच *(ब) छः* *(स) सात* *(द) आठ* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के पंचम दृश्य में स्कन्दगुप्त से 'परम भट्टारक की जय हो' कौन कहता है?

(अ) सैनिक *(ब) चर* *(द) मुद्गल* *(द) मगधी* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के छठे दृश्य में दुर्ग के सामने क्या है?

(अ) रणक्षेत्र *(ब) कुभा का रणक्षेत्र*

(स) सरोवर *(द) उपवन* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के तृतीय अंक के छठे दृश्य के अनुसार गांधार युद्ध में कौन नहीं रहा?

(अ) बन्धुवर्मा *(ब) भीमवर्मा* *(स) चक्रपालित* *(द) भट्टार्क* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक में कितने दृश्य थे?

(अ) चार *(ब) पाँच* *(स) छः* *(द) सात* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में पहला कथन किसका है?

(अ) विजया का *(ब) कमला का*

(स) अनन्तदेवी का *(द) देवकी का* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के अनुसार दण्डनायक देवनन्द कहाँ का है?

(अ) नन्द ग्राम का *(ब) नन्दी ग्राम का*

(स) विमल ग्राम का *(द) कुशल ग्राम का* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक के तृतीय दृश्य के अनुसार मालिनी किसके कथन के बाद प्रस्थान करती है?

(अ) स्कन्दगुप्त के *(ब) कुमारगुप्त के*

(स) मातृगुप्त के *(द) गोविन्दगुप्त के* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ दृश्य के अनुसार नगर प्रान्त के पथ में कौन बात करते हैं?

(अ) मातृगुप्त और मुद्गल *(ब) धातुसेन और प्रख्यातकीर्ति*

(स) मुद्गल और रामगुप्त *(द) रामगुप्त और पर्णदत्त* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक के पाँचवें दृश्य के अनुसार श्रमण और ब्राह्मणों में किस बात पर झगड़ा हो रहा था?

(अ) भवन को लेकर *(ब) भूमि को लेकर*

(स) पुत्र को लेकर *(द) पशुबलि को लेकर* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक के सप्तम दृश्य के अनुसार प्रार्थना कौन करता है?

(अ) स्कन्दगुप्त (ब) कुमारगुप्त (स) मातृगुप्त (द) गोविन्दगुप्त **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के प्रथम अंक में कितने दृश्य हैं?

(अ) चार (ब) पाँच (स) छः (द) सात **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के पंचम अंक के द्वितीय दृश्य के अनुसार कौन भीख माँगता है?

(अ) पर्णदत्त (ब) चक्रपालित (स) मुद्गल (द) धातुसेन **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्कन्दगुप्त नाटक के पंचम अंक के तृतीय दृश्य के अनुसरर कौन गाती है?

(अ) देवसेना (ब) कमला (स) मालिनी (द) देवकी **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'अंधा युग' के लेखक हैं-

(अ) धर्मवीर भारती *(ब) अशोक वाजपेयी*

(स) दुष्यंत कुमार *(द) श्रीकांत वर्मा* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न अंधेर नगरी के लेखक हैं-

(अ) भवानी प्रसाद मिश्र *(ब) नागार्जुन*

(स) हरि औध *(द) भारतेन्दु* **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न अमृत और विष के लेखक हैं-

(अ) अमृतलाल नागर *(ब) धर्मवीर भारती*

(स) भारतेन्दु *(द) भारतेन्दु* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न उपन्यासों का आधुनिक युग प्रारंभ होता है-

(अ) प्रेमचंद से *(ब) जयशंकर प्रसाद से*

(स) जैनेन्द्र से *(द) फणीश्वरनाथ रेणु से* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न किसानों की दशा का चित्रण करने वाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है-

(अ) गोदान *(ब) परती परिकथा*

(स) शेखर : एक जीवनी *(द) सारा आकाश* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न "...के उपन्यासों में सारे जन-जीवन और समाज की यथार्थ झांकी मिलती है।" यह कथन है-

(अ) प्रेमचंद के उपन्यासों के लिए *(ब) प्रसाद के उपन्यासों के लिए*

(स) अज्ञेय के उपन्यासों के लिए *(द) जैनेन्द्र के उपन्यासों के लिए* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न उपन्यास के विकास का द्वितीय चरण आरंभ होता है-

(अ) प्रेमचंद से *(ब) ज्वालाप्रसाद खत्री से*

(स) लाल श्रीनिवासनदास से *(द) जयशंकर प्रसाद से* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है-

(अ) बंग महिला की दुलाई वाली *(ब) रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'*

(स) मास्टर भगवानदीन की 'प्लेग की चुड़ैल'

(द) गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित पंडितानी' **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न दुलाई वाली कहानी प्रकाशित हुई-

(अ) सन् 1907 ई. में *(ब) सन् 1903 में*

(स) सन् 1902 में *(द) सन् 1900 ई. में* **उत्तर-** *(अ)*